राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का अनुशीलन

RAHUL SANKRITYAYAN KI KAHANIYOM KA ANUSEELAN

thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

AMBILI. T

DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF LANGUAGES
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI – 682 022

2002

स्व. महापंडित राहुल सांकृत्यायन
(जन्म - सन् 09.04.1893 ई. - मृत्यु - सन् 14.04.1963 ई.)

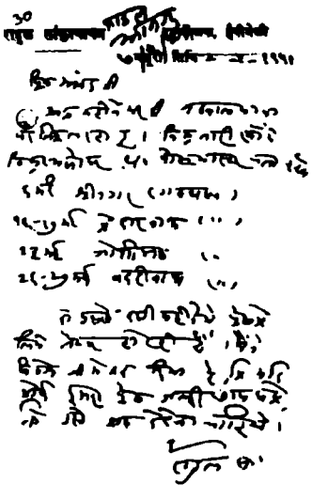

"इन कहानियों को रोचक ढंग से लिखा
इतिहास मानने में कोई आपत्ति नहीं"

राहुल सांकृत्यायन - "वोल्गा से गंगा"

DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled **"RAHUL SANKRITYAYAN KI KAHANIYOM KA ANUSEELAN"** *is an authentic record of the research carried out by me under the supervision of Professor* **Dr. N. G. DEVAKI,** *Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and that no part of it has been previously formed the basis for the award of any degree, diploma, associateship, fellowship or similar title or recognition in any other University.*

(AMBILI. T)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
Kochi – 682 022.

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **"RAHUL SANKRITYAYAN KI KAHANIYOM KA ANUSEELAN"** *is a bonafide record of work carried out by* **AMBILI. T** *under my supervision for the award of the Degree of Doctor of Philosophy and that no part of this thesis hitherto has been submitted for a degree in any other University.*

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
Kochi – 682 022.

Devaki
26-6-2002

(Dr. N. G. DEVAKI)
Supervising Teacher

Prof. N.G. DEVAKI
DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022, KERALA

भूमिका

भूमिका

इतिहास में सामाजिक यथार्थ की पारदर्शिता झलकती है । एक ही विधा में अनेक पहलुओं को समाविष्ट करने की महापंडित राहुल सांकृत्यायन की साहित्य शैली विलक्षण ही है । बहुमुखी प्रतिभावान्,अपार ज्ञानी राहुल सांकृत्यायन की जिन्दगी ही मानवता एवं मानव की मुक्ति चाहनेवाले साहित्य के लिए समर्पित थी । राहुल का ऐसा व्यक्तित्व विश्व में भी विरल है । वे जिन्दगी भर विभिन्न विषयों पर लिखते रहे । दलितों,पीड़ितों और शोषितों के पक्षधर इस साहित्यकार ने समस्त रचनाओं को अपनी विचारधाराओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । ऐसा आरोप लगाया गया है कि राहुल सांकृत्यायन की संपूर्ण रचनाएँ विशेषकर कहानियाँ रचनाकौशल की दृष्टि से असफल हैं । इसका कारण यह था कि राहुल ने अपनी कहानियों के लिए एक मौलिक शिल्प की उद्भावना की । इसलिए उन्हें वह स्थान नहीं मिला, जिसके लिए वे योग्य थे । इस सच्चाई को देखते हुए राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का विश्लेषण करने का एक विनम्र प्रयास यहाँ किया गया है । इतिहास की उलझनों में पड़ने के लिए संकोच करनेवाले जन सामान्य को आसानी से समझने के लिए राहुल ने कहानी जैसे सरल माध्यम द्वारा मानव जाति के विकासेतिहास को प्रस्तुत किया एवं अछूते स्थानों का स्पर्श किया ।

शोधछात्रा ने ''राहुल सांकृत्यायन का कहानीसंग्रह 'वोल्गा से गंगा' का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' विषय को एम.फिल. के लघुशोध प्रबन्ध के लिए चुन लिया था । इस लोकप्रिय साहित्यकृति को पढ़कर राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व विशेषतया उनकी संपूर्ण कहानियों के गहन अध्ययन की उत्कट इच्छा हुई ।

राहुल सांकृत्यायन का कार्यक्षेत्र इतना विशाल एवं परस्पर विरोधी था कि अकेले एक व्यक्ति के लिए निर्धारित समय के अन्तर्गत संपूर्ण रचना संसार पर शोधकार्य करना कठिन है । शोध छात्रा तो उनके संपूर्ण कथा साहित्य पर काम करना चाहती थी । पर देखा गया कि अपेक्षित गहराई एवं व्यापकता से निर्धारित अवधि के अन्तर्गत इसे पूरा करना असंभव होगा । अतः सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन के लिए प्रस्तुत विषय को कहानी तक ही सीमित रखना उचित

समझा और "राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का अनुशीलन" शीर्षक विषय पर शौधकार्य करने का निश्चय किया गया ।

राहुल सांकृत्यायन पर अद्यावधि कम शोधकार्य हुए हैं । इनमें प्रकाशित शोध प्रबन्धों की संख्या तो और भी विरल ही है । प्रभाशंकर मिश्र कृत 'राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य', डा. सुदेशधाम द्वारा लिखित "राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य", दिनेश कुशवाह कृत "राहुल का कथा साहित्यः प्रगतिशील संदर्भ" आदि प्रकाशित शोध प्रबन्धों में उल्लेखनीय हैं । उपर्युक्त लेखकों ने अपने शोध को संपूर्ण कथा साहित्य पर केन्द्रित किया है । किसी ने मात्र उनकी कहानियों पर गहन अध्ययन नहीं किया है । राहुल की कहानियाँ उनके समकालिन कहानीकारों की कहानियों के ढाँचे में न होने के कारण आलोचकों की उपेक्षा का पात्र बनीं । इस सच्चाई को देखते हुए राहुल की संपूर्ण कहानियों का शैल्पिक विश्लेषण करके उनकी खूबियों को उजागर करने का मौलिक प्रयास किया गया है ।

राहुल जी के चारों कहानी संकलनों का विशद एवं गहन अध्ययन करना शोधार्थिनी का उद्देश्य रहा । परंतु शुरू में ही एक अप्रत्याशित कठिनाई उपस्थित हुई । उनका "सतमी के बच्चे" नामक संकलन दुलर्भ था । बहुत प्रयास करने के बाद केन्द्रीय पुस्तकालय, दिल्ली से वह प्राप्त हुआ । उसकी प्रतिलिपि करवाकर शोधछात्रा ने अपना शोधकार्य प्रारंभ किया । राहुल के अन्य साहित्य संबंधी रचनाएँ एवं पत्रिकाएँ शोध के लिए सहायक रहीं । उनकी आत्मकथा एवं उनकी जीवनी ने शोधछात्रा की सहायता में बड़ी भूमिका निभाई ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है । पहले अध्याय का शीर्षक "हिन्दी कहानी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन का स्थान" है । इस अध्याय को दो खंडों में विभक्त किया गया है । प्रथम खंड में हिन्दी कहानी साहित्य को राहुल सांकृत्यायन के योगदान का अध्ययन है । इस खंड में राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती हिन्दी कहानीकार और उनकी कहानियों का सामान्य परिचय, हिन्दी कहानीक्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का आविर्भाव, राहुल सांकृत्यायन के समकालीन कहानीकार, राहुल और उनके समानधर्मी कहानीकार, राहुल की कहानियों का श्रेणी विभाजन और हिन्दी कहानी साहित्य के लिए उनकी विशेष देन पर विचार किया गया है । विश्लेषण से विदित हुआ कि राहुल ने अपने समकालीन कहानीकारों से भिन्न एक अलग आयाम को स्वीकार किया है । उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ एक नया मोड़ देनेवाली

हैं । हिन्दी कहानी साहित्य के लिए उनकी विशेष देन यह है कि उन्होंने कहानी साहित्य को कल्पना से ऊपर उठाकर यथार्थ से परिपुष्ट किया । प्रथम अध्याय का दूसरा खंड राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व और उनकी कहानियों पर उसके प्रभाव पर केन्द्रित है । इसके अन्तर्गत उनका जन्म, शिक्षा-दीक्षा, विवाह एवं पारिवारिक जीवन, व्यवसाय तथा उनके बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व पर विचार किया गया है । इसके बाद उनका साहित्यिक व्यक्तित्व, यायावरी वृत्ति, राजनीतिक व्यक्तित्व, धार्मिक व्यक्तित्व, कार्यक्षेत्र एवं सम्मान, इतिहास दृष्टि एवं अनुसंधानवृत्ति, स्वतंत्र भावना, दार्शनिक चिन्तन, उनकी प्रगतिशीलता, भारतीय नवजागरण में उनका योगदान, बिहार के किसान आंदोलन में उनका हाथ, प्रगतिवादी आंदोलन में उनकी भूमिका एवं उनके व्यक्तित्व की अन्य विशेषताओं पर भी विचार किया गया है । यहाँ उनकी रचनाओं पर संक्षिप्त विचार भी किया गया है । कहानियों पर कहानीकार के व्यक्तित्व का प्रभाव परखने से ज्ञात हुआ कि राहुल की कहानियाँ उनकी जिन्दगी ही हैं ।

"कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से 'सतमी के बच्चे' का विश्लेषण" शीर्षक दूसरा अध्याय भी दो खंडों में विभक्त है - कथ्यगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण और शिल्पगत दृष्टि से "सतीम के बच्चे" का विश्लेषण ।" प्रथम खंड में शोधछात्रा ने पहले कुल दस कहानियों की संक्षिप्त कथावस्तु का परिचय दिया है, ताकि पाठक के अध्ययन में सुविधा हो जाए । आगे के अध्यायों में भी इसी प्रविधि को अपनाई गई है । फिर इन कहानियों की कथ्यगत विशेषताओं पर नज़र डालने की कोशिश है । तब विदित हुआ कि राहुल ने इनमें अपने विचारों का खुल्लमखुल्ला प्रदर्शन किया है और जीवन का यथार्थचित्र इसमें मिलता है । दूसरे खंड का शीर्षक 'शिल्पगत दृष्टि से 'सतमी के बच्चे' का विश्लेषण है । इसमें कहानियों के कथाशिल्प, पात्र और चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषाशैली एवं उद्देश्य पर विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँच गई कि शिल्प की दृष्टि से ये कहानियाँ सशक्त नहीं ।

तीसरे अध्याय का शीर्षक "कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से 'वोल्गा से गंगा' का विश्लेषण" है । प्रथम खंड 'कथ्यगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा का विश्लेषण" में इसकी बीस कहानियों का विश्लेषण करके कथ्यगत विशेषताओं पर शोधछात्रा ने विचार किया है । इसका कथ्य अन्य संकलित कहानियों के कथ्य से अधिक सशक्त है । एक दार्शनिक की हैसियत से इतिहास संबंधी अपने दृष्टिकोण को उन्होंने व्यक्त किया है । दूसरे खंड में शिल्पगत दृष्टि से

"वोल्गा से गंगा" को परखने का प्रयास है । कथाशिल्प, पात्र और चरित्र चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य पर विचार करते समय मालूम हुआ कि 'साहित्य में समय और दूरी' के संकल्प को इसमें कार्यान्वित किया गया है ।

चौथे अध्याय का नाम "कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से 'बहुरंगी मधुपुरी' का विश्लेषण" है । इसके भी दो खंड हैं । प्रथम खंड में कथ्यगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण है। यहाँ भी कहानियों की कथ्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । यहाँ कल्पना की अपेक्षा सत्य ही अधिक सशक्त हो उठा है । दूसरे खंड का नाम शिल्पगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण है । कहानीकला के आधार पर विश्लेषण करने से पता चला कि इसका शिल्प अविकसित है ।

पाँचवें अध्याय को "कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से 'कनौला की कथा' का विश्लेषण नाम दिया गया है । इस अंतिम अध्याय को भी दो खंडों में विभाजित करके विश्लेषण करने की कोशिश की गई है । प्रथम खंड का शीर्षक रखा गया है, "कथ्यगत दृष्टि से 'कनौला की कथा' का विश्लेषण" । यहाँ भी कथ्य पर विचार किया गया है । ये कहानियाँ मात्र कहानीकार के विचारों के वाहक हैं । दूसरे खंड का नाम "शिल्पगत दृष्टि से 'कनैला की कथा' का विश्लेषण" है । कहानीकला के आधार पर परखने से स्पष्ट हुआ कि ये कहानियाँ इस दृष्टि से असफल हैं ।

उपसंहार के रूप में राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का मूल्यांकन एवं इन कहानियों के शिल्पगत और कथ्यगत वैशिष्ट्य को व्यक्त करने की कोशिश है । राहुल की कहानियों के संबध में यह बताना उचित होगा कि इनमें शिल्प की अपेक्षा कथ्य अधिक सजीव हो उठा है । कहानीकला की दृष्टि से नहीं, उनकी कहानियों के महत्व के कारण अन्य अनेक तत्व हैं । वस्तुतः राहुल की कहानियाँ वर्गभेद को मिटाकर, स्त्री-पुरूष भेद का उन्मूलन कर अन्धविश्वास एवं धार्मिक भिन्नता को मिटाकर, सर्वांगीण समता स्थापित करने पर बल देती हैं । वे अपनी कहानियों द्वारा सभी स्तरों पर अर्थात् सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक एवं वैचारिक स्तरों पर प्रगति की ओर अग्रसर होनेवाले मनुष्य के चित्र खींचते हैं । ये कहानियाँ अपनी जीवनदृष्टि का द्योतक हैं और ये शोषित जनता के जीवन, भविष्य एवं संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध हैं । इनमें व्यक्त विचार हमेशा जीवित रहेंगे । ये विभिन्न संस्कृतियों का संगमस्थल हैं । अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर

लिखी ये कहानियाँ लंबे काल को समेटती हैं । ये राहुल जी के बौद्धिक ज्ञान के परिचायक हैं । ये हमेशा के लिए प्रासंगिक भी हैं । "राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का अनुशीलन" पुनर्मूल्यांकन का एक ऐसा विनम्र प्रयास है जो राहुल साहित्य की अवहेलना करनेवालों के लिए एक चुनौती है ।

परिशिष्ट (एक) में सर्जनात्मक एवं ज्ञानात्मक श्रेणियों के अन्तर्गत राहुल की समस्त रचनाओं की सूची दी गई है, जिससे उनके रचना संसार का आभास मिल जाता है । इसके बाद परिशिष्ट (दो) में राहुल जी की पत्नी डा. कमला सांकृत्यायन एवं बेटी जया सांकृत्यायन से शोधार्थिनी की मुलाकात भी दी गई है । अंत में शोध की पंचसूत्री कार्यक्रमानुसार सहायक ग्रंथ सूची भी प्रस्तुत की गई है ।

सामग्री संकलन के अवसर पर राहुल के व्यक्तित्व और रचना संबंधी जो चित्र उपलब्ध हुए, उनको यथास्थान लगाया गया है, जिससे उनकी रचनाधर्मिता का ठोस प्रमाण प्राप्त होता है।

हिन्दीतर क्षेत्र की हिन्दी शोधछात्रा के नाते, प्रस्तुत कार्य में कहीं त्रुटियाँ या कमियाँ आ गई हों तो शोधछात्रा उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ । राहुल सांकृत्यायन के कथासाहित्य के प्रति रूचि रखनेवाले अध्येताओं एवं अनुसंधाताओं को प्रस्तुत अध्ययन से किंचित प्रयोजन मिलेगा तो शोधार्थिनी अपने को धन्य मानूँगी ।

हिन्दी विभाग,
विज्ञान-व-प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोचिन ।

विनम्र
अंबिली. टी

06.06.2002

कृतज्ञताज्ञापन

कृतज्ञताज्ञापन

प्रस्तुत शेध प्रबन्ध "राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का अनुशीलन" आपके सम्मुख है। शोधकार्य के पूर्ण होने तक शोधार्थिनी उन सभी व्यक्तियों का आभारी हुँ, जिन्होंने अपना किंचित स्नेह दान भी देकर मेरा उत्साह बढ़ाया तथा इसे पूर्ण करने की प्रेरणा दी। प्रस्तुत शोध प्रबंध की रूपरेखा के अनुसार यथासाध्य उपलब्ध सामग्रियों का संकलन कर मैंने शोघ प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।

मैं सर्वप्रथम आभारी हूँ अपने शोध निर्देशिका परम आदरणीया गुरुवर प्रो. डा. एन. जी. देवकी (हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय) के प्रति, जिन्होंने कार्य व्यस्तता के क्षणों से समय निकालकर न केवल निर्देशन का काम किया है, वरन् आवश्यक संशोधन एवं सुझाव के साथ ही साथ आद्योपान्त शोध प्रबन्ध को पढ़ा भी है। उनका परम स्नेह, सतत् प्रेरणा और सहायता से ही यह कार्य पूरा हुआ है, इसलिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई उनके आशीष हेतु विनम्र निवेदन प्रस्तुत करती हुँ।

इनके पति आदरणीय डॉ. वी.पी.एन. नंबूतिरि, प्रफेसर, इन्टरनाशनल स्कुल आंफ फोटोणिक्स, कोचिन विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं कुतज्ञ हुँ, जिन्होंने मुझे शोध-प्रबन्ध संबन्धी अनेक सुझाव दिए।

हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय के लाईब्रेरी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने अध्ययन विषयक जो सुविधाएँ एवं सहयोग मुझे प्रदान किया, उनके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

श्रीमती कमला सांकृत्यायन एवं जया सांकृत्यायन को मैं कैसे धन्यवाद दूँ, जिन्होंने अत्यधिक आत्मीयता से हमारा आदर-सत्कार किया।

कनैला एवं पन्दहा गाँव के राहुलजी के रिश्तेदारों के प्यार के सामने मैं सिर नवाती हूँ।

केरल विश्वविद्यालय एवं केरल हिन्दी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपूरम, केन्द्रीय पुस्तकालय दिल्ली, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, दिल्ली आदि संस्थाओं से मुझे सामग्री संकलन में सहायता मिली। इन संस्थाओं के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

डा. ओमप्रकाश पांडेयजी (संचालक, राहुलकक्ष, पटना म्यूजियम) के प्रति भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी व्यस्तता में भी समय निकालकर हमारी मदद करने में तत्परता दिखाई।

डा. प्रभुल्लकुमार सिंह 'मौन' जी सेवामुक्त प्रोफेसर हैं एवं राहुल साहित्य पर काम करनेवाले हैं । उन्होंने अपने संपादकत्व में तैयार की गई राहुल संबंधी एक पुस्तक भेंट देकर मुझे अत्यधिक प्रोत्साहित किया है। उन्हें कैसे भूला जा सकता है।

श्री पी.एम.नायर (आई.पी.एस, दिल्ली), सुधीर जी (पब्लिक रिलेशन अफसर, केरलाहाउस), केन्द्र साहित्य अकादमी सेक्रेटरी एवं मलयालम साहित्यकार श्री. सच्चिदानन्दन जी- सबको मैं इस क्षण में याद करती हूँ।

उन सभी गुरूजनों, सहयोगियों एवं मित्रों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस शोधकार्य को पूरा करने में जाने अनजाने में सहयोग दिया है।

उन ज्ञात-अज्ञात लेखकों के प्रति भी शोधछात्रा आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं से शोध की नई दिशाओं का संकेत मिला है।

मेरे देवरजी श्री. पी. सुरेश कुमार और उनके दोस्त अशोक कुमार जी और देवकी नन्दन जी के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जो दिन-रात एक करके इस शोध प्रबन्ध को लिपिबद्ध करने में व्यस्त रहे।

मेरे पति ने निरन्तर कार्य करते रहने के लिए मुझे प्रोत्साहित न किया होता तो शायद यह कार्य पूरा न हो पाता। उन्हें मैं क्या धन्यवाद दूँ, यह तो उन्हीं के त्याग का फल है।

अंबिली. टी

हिन्दी विभाग,

कोचिन यूनिवर्सिटी आफ साइन्स एण्ड टेक्नालाजी,

कोचिन - 22

शोधछात्रा द्वारा प्रकाशित शोध प्रपत्र

विषय	पत्रिका	वर्ष	अंक
''वोल्गा से गंगा'' और ''महायात्रा गाथा'' तुलनात्मक अध्ययन	भाषा (द्वैमासिक)	४० नवंबर-दिसंबर २०००	२

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

विषयः राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का अनुशीलन

पहला अध्याय — प्रष्ठ संख्या

"हिन्दी कहानी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन का स्थान" 01

खंड- कः हिन्दी कहानी साहित्य को राहुल सांकृत्यायन का योगदान

राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती हिन्दी कहानीकार और उनकी कहानियों का सामान्य परिचय - हिन्दी कहानी क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का आविर्भाव - राहुल सांकृत्यायन के समकालीन कहानिकार - राहुल सांकृत्यायन और उनके समानधर्मी कहानीकार- राहुल सांकृत्यायन की कहान्रियों का श्रेणी विभाजन - ऐतिहासिक - सांस्कृतिक कहानियाँ - सामाजिक कहानियाँ - हिन्दी कहानी साहित्य के लिए राहुल सांकृत्यायन की विशेष देन।

खंड- खः राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व और उनकी कहानियों पर उसका प्रभाव

जन्म-शिक्षा-दीक्षा-विवाह एवं पारिवारिक जीवन-व्यवसाय-बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व साहित्यिक व्यक्तित्व-यायावरी वृत्ति-राजनीतिक व्यक्तित्व-धार्मिक व्यक्तित्व-कार्यक्षेत्र एवं सम्मान-इतिहास दृष्टि एवं अनुसंधान वृत्ति-स्वतंत्र भावना-दार्शनिक चिन्तन - प्रगतिशीलता - भारतीय नवजागरण और राहुल सांकृत्यायन-राहुल सांकृत्यायन और बिहार का किसान आंदोलन-प्रगतिवादी आंदोलन और राहुल सांकृत्यायन-व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएँ-रचनाएँ-कहानियों पर व्यक्तित्व का प्रभाव।

दूसरा अध्याय — 54

"कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण"

खंड- कः कथ्यगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण

'सतमी के बच्चे' - 'डीहबाबा' - 'पाठकजी' - 'पुजारी' - 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' - 'जैसिरी' - 'राजबली' - 'रामगोपाल' - 'घुरबिन' - 'दलसिंगार' - कथ्यगत विशेषताएँ

खंड- खः शिल्पगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण

"कथाशिल्प-पात्र और चरित्र चित्रण-संवाद- वातावरण-भाषा-उद्देश्य।"

तीसरा अध्याय 86

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

खंड- कः कथ्यगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

'निशा'- 'दिवा'- 'अमृताश्व'-'पुरूहूत'- 'पुरूधान'- 'अंगिरा'- 'सुदास'- 'प्रवाहण'- 'बन्धुलमल्ल'- 'नागदत्त'- 'प्रभा'- 'सुवर्ण यौधेय'- 'चक्रपाणि'- 'दुर्मुख'- 'बाबा नूरदीन'- 'सुरैया'- 'मंगलसिंह'- 'रेखाभगत'- 'सफदर'- 'सुमेर'- कथ्यगत विशेषताएँ।

खंड- खः शिल्पगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

कथाशिल्प- पात्र और चरित्र चित्रण-संवाद-वातावरण-भाषा- 'साहित्य में समय और दूरी का संकल्प'-उद्देश्य।

चौथा अध्याय 134

"कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण"

खंड- कः कथ्यगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण

'बूढे लाला'- 'हाय बुढापा'- 'कुमार दुरंजय'- 'मेम साहब'- 'महाप्रभु'- 'लिप्स्टिक'- 'ठाकुरजी'- 'रायबहादुर'- 'गुरूजी'- 'मीनाक्षी'- 'गोलू'- 'रूपी'- 'राउत'- 'कमलसिंह'- 'डोरा'- 'बिसुन'- 'पेड़बाबा'- 'सुलतान'- 'मास्टरजी'- 'चम्पो'- 'काठ' का साहब'- कथ्यगत विशेषताएँ

खंड- खः शिल्पगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण

कथानक- पात्र और चरित्र चित्रण-संवाद-वातावरण-भाषा-उद्देश्य।

पांचवाँ अध्याय 172

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

खंड- कः कथ्यगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

'त्रीवेणी'-'काशीग्राम'-'बड़ी रानी' - 'देवपुत्र' - 'कलाकार' -'सैयदबाबा'- 'सन् 57'-'स्वराज्य'-'नरमेध'-कथ्यगत विशेषताएँ

खंड- खः शिल्पगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

कथानक - पात्र और चरित्र चित्रण-संवाद-वातावरण-भाषा-उद्देश्य।

उपसंहार 201

राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का वैशिष्ट्य और मूल्यांकन

परिशिष्ट 208

एक - राहुल की रचनाओं की सूची

दो - (क) श्रीमती डा. कमला सांकृत्यायन से मुलाकात

(ख) श्रीमती जया सांकृत्यायन से मुलाकात

सहायक ग्रंथ सूची

शोधछात्रा की प्रकाशित रचनाएँ

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जीवन से संबद्ध-स्थलों की यात्रा का मानचित्र

पहला अध्याय

हिन्दी कहानी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन का स्थान

सारांश

इसमें हिन्दी कहानी साहित्य को महापंडित राहुल सांकृत्यायन के योगदान पर विचार किया गया है। राहुलजी का व्यक्तित्व, कहानियों पर उसका प्रभाव आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ऐसे साहित्यकार थे, जो साहित्यिक दायरे से बाहर निकलकर जनता के बीच में रहे। उनका जन्म ९ अप्रैल सन् १८९३ ई को उत्तरप्रदेश के आज़मगढ़ जिले के पन्दहा गाँव में हुआ और मृत्यु १४ अप्रैल सन् १९६३ ई में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग में हुई। यद्यपि उनकी स्कूली शिक्षा बहुत कम थी, तो भी उनकी यायावरी वृत्ति, अनुसंधान वृत्ति, जिज्ञासा आदि ने उन्हे बहुमुखी प्रतिभाशाली बनाया। आपके गतिशील व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रभाव पूरे साहित्य पर पड़ा है, विशेषतया कहानियों पर।

पहला अध्याय

हिन्दी कहानी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन का स्थान

महापंडित राहुल सांकृत्यायन (स्थितिकाल सन् 1893ई से सन् 1963ई तक) बीसवीं शताब्दी के ऐसे सशक्त साहित्यकार थे, जिन्होंने अमूल्य बहुसंख्यक रचनाओं से हिन्दी साहित्य को संवर्द्धित किया। हिन्दी में ऐसी कोई विधा नहीं, जिसमें आपकी लेखनी ने विचरण न किया हो । आलोचना के प्रतिमानों से उन्हें नापा नहीं जा सकता । बौद्ध भिक्षु बनने पर उन्होंने 'राहुल सांकृत्यायन' नाम स्वीकार किया । 'राहुल' बुद्ध के पुत्र का नाम और 'सांकृत्य' गोत्र का नाम था । अन्य साहित्यकारों की तुलना में राहुल सांकृत्यायन की विलक्षणता यह है कि वे मात्र साहित्यिक दायरे के अन्दर रहने वाले साहित्यकार नहीं थे । भारत की आजादी के लिए की गई लड़ाई में शोषित – पीड़ित जनता के साथ ये साहित्यकार भी शामिल थे । राहुलजी न केवल हिन्दी साहित्य, अपितु समूचे भारतीय वाङमय के एक ऐसे महारथी हैं, जिन्होंने प्राचीन और नवीन, पौर्वात्य और पाश्चात्य दर्शन एवं राजनीति और जीवन के उन अछूते तथ्यों पर प्रकाश डाला है, जिनकी ओर साधारणतः लोगों की दृष्टि नहीं गई थी।[1] हिन्दी उन्हें ज़मीन से, बडी व्यापक ज़मीन से जोड़े रही। जो भी उन्होंने सीखा-पढ़ा, जहाँ भी गए, जो भी देखा-सुना, जो भी उन्हें रमा सका, सबका सत्य उन्होंने हिन्दी को दिया। हिन्दी ही उनकी अविचल निष्ठा थी। वे एक व्यक्ति ही नहीं, एक संस्था थे। भिन्न भिन्न भाषा साहित्य एवं प्राचीन, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं का अनवरत अध्ययन-मनन करने का अपूर्व वैशिष्ट्य उनमें था। प्राचीन और नवीन साहित्यदृष्टि की जितनी पकड़ और गहरी पैठ राहुलजी की थी, ऐसा योग

---

1. "कनैला की कथा" – प्रकाशकीय से

कम ही देखने को मिलता है । जिस प्रकार उनके पाँव नहीं रुके, उसी प्रकार उनकी लेखनी भी निरन्तर चलती रही। इस प्रकार अनोखे व्यक्तित्व वाले साहित्यकार थे महापंडित राहुल सांकृत्यायन।

इस अध्याय में हिन्दी कहानी साहित्य में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के योगदान की ओर प्रकाश डाला गया है ।

खंड कः हिन्दी कहानी साहित्य को राहुल सांकृत्यायन का योगदान

वास्तव में यह कहना कठिन है कि राहुल सांकृत्यायन मूलतः कौन थे? राहुल ने हमारी भाषा और संस्कृति के उद्धार के लिए जितना कार्य अपने जीवनकाल में किया, उतना शायद ही किसी अन्य व्यक्ति ने किया हो । विश्वसाहित्य में जो कुछ नवीन, स्वस्थ एवं श्रेष्ठ है, उसकी ओर तो हिन्दीवालों का ध्यान आकर्षित किया ही नहीं, अपितु इतिहास, दर्शन और पुरातत्व के गहन अध्ययन द्वारा अतीत की स्वस्थ सशक्त परंपराओं का भी उद्घाटन किया । एक क्रांतिकारी किसान नेता, जिसने शोषित किसानों की व्यथा को समझा, स्वर दिया, जेलों की यात्राएँ कीं, वर्षों तक साधु परिवेश में रहते हुए भी नई पीढ़ी को समाजवादी क्रांतिकारी विचारधारा से अनुप्रमाणित किया। कलम के जादूगर राहुलजी की कल्पना में भविष्य के शानदार सपने थे। वे प्रगतिशील साहित्यान्दोलन के संस्थापक, प्रेरक एवं विस्तारक थे। दर्शन, इतिहास, विज्ञान, भाषा-विज्ञान, राजनीति, बौद्ध धर्म, संस्कृति, साहित्य-सभी में अपार पांडित्य रखनेवाले राहुल को बहुमुखी पंडित कहा जा सकता है ।

राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती हिन्दी कहानीकार और उनकी कहानियों का सामान्य परिचय

हिन्दी भाषा जब अपने अस्तित्व में आई, उसके साथ ही साथ कहानी का भी आविर्भाव हुआ । उस समय वह लोककथाओं तथा नीतिकथाओं के रूप में थी । परन्तु हिन्दी में साहित्यिक कहानी का जन्म तो सर्वप्रथम उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ । आधुनिक हिन्दी कहानी को जन्म देने का श्रेय 'सरस्वती' पत्रिका को है ही । इसमें सबसे पहले सन् 1900ई में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' नामक कहानी प्रकाशित हुई । आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने इसे हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी कहा। इसके बाद शुक्लजी ने अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' और बंगमहिला की 'दुलाईवाली' का उल्लेख किया है ।

हिन्दी के प्रारंभिक कहानी साहित्य को 'सरस्वती' के अलावा काशी की 'इन्दु' पत्रिका से भी प्रोत्साहन मिला । 'सरस्वती' के संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी यथार्थवादी थे, जिसके कारण उसमें यथार्थवादी कहानियाँ प्रकाशित होती रहती थीं । यथार्थवादी कहानीकारों में प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि आते हैं । 'इन्दु' के संपादक जयशंकर प्रसाद आदर्शवादी थे, जिसके कारण उसमें आदर्शवादी कहानियाँ छपती थीं । इस परंपरा में चंडीप्रसाद-हृदयेश, राधिकारमणसिंह जैसे कहानीकार आते हैं । इस प्रकार कहानी के क्षेत्र में दो भिन्न स्रोत फूट पड़े । इन कहानीकारों में प्रमचन्द और प्रसाद उन्नति के शिखर पर पहुँचे । पहली बार प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी क्षेत्र में कुछ जीवन्त समस्याओं का चित्रण किया। उनकी कहानियों में समाज का यथार्थ चित्र मिलता है । प्रसाद की कहानियों में उनके कवि व्यक्तित्व और नाटककार व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है । उनकी 'आँधी' एवं 'इन्द्रजाल' कहानियाँ ऐसी हैं । चन्दधरशर्मा गुलरी की 'उसने कहा था' कहानी यथार्थवादी एवं जनवादी चेतना का सच्चा मसलन है ।

उपर्युक्त तीनों कहानीकारों के बाद जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय तथा इलाचन्द्रजोशी जैसे कहानीकार आए, जो हिन्दी कहानी को एक नई दिशा की ओर ले गए । जीवन की द्रुत झाँकी को एकाएक आलोकित करनेवाली घटना को उन्होंने विषय के रुप में स्वीकृत किया । हिन्दी कहानी को जैनेन्द्र का प्रदेय मुख्यतया शिल्पगत है । प्रेमचन्द की तुलना में उनका कथाशिल्प नया तथा ताज़ा प्रतीत होता है । अज्ञेय की मनोवैज्ञानिक कहानियों में एक आभिजात वर्ग की बौद्धिकता मिलती है । कथ्यगत वैविध्य के बावजूद इन कहानियों का अनुभव संसार निजी और सीमित है ।

सामाजिकता से जूझने की जो परंपरा, प्रेमचन्द से शुरु हुई थी, उसे यशपाल, बेचन शर्मा उग्र जैसे कहानीकारों ने आगे बढाई । सन् 1936ई में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद रचनाकारों पर माक्र्सवाद का प्रभाव पड़ने लगा और इस तरह हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील रचनाएँ प्रतिष्ठित हुईं । लेकिन राहुल सांकृत्यायन ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पहले ही प्रगतिशील कहानियाँ लिखकर कहानीक्षेत्र में ख्याति प्राप्त की ।

हिन्दी कहानी क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का आविर्भाव

हिन्दी कथाक्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का पदार्पण चौथे दशक में हुआ । चौथा दशक तो संक्रांतिकाल था । उस समय के बारे में डॉ. नामवरसिंह का कथन है – "भारतीय इतिहास का यह चौथा दशक अनेक दृष्टियों से संक्रांतिकाल के रुप में स्मरण किया जाता है । स्वतंत्रता संग्राम ने इस दौर में एक नया मोड़ लिया । राजनीति में यह युग वामपंथी रुझानों की शुरुआत का द्योतक है, बौद्धिक वातावरण माक्र्स तथा फ्रायड के विचारों से आन्दोलित दिखाई पड़ता है । इस काल की पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्यिक कृतियों से नैतिक मूल्यों और मान्यताओं की गहरी कशमकश का एहसास होता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि कहानी इस वातावरण से अप्रभावित नहीं रह

सकती थी "।[1] नामवरसिंहजी का उक्त कथन यह साबित करता है कि इस युग में साहित्य के क्षेत्र में परस्पर विरोधी विभिन्न धाराएँ प्रवाहित होती रही थीं । इसी अवसर पर हिन्दी कहानी क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का आगमन हुआ ।

जब राहुलजी हिन्दी कहानी क्षेत्र में आए, तब उनके सामने प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद जैसे समृद्ध पूर्ववर्ती रचनाकार थे । राहुल ने दोनों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए कहानियाँ लिखने की शुरुआत की । विषयवस्तु के स्तर पर उन्होंने प्रेमचन्द का रास्ता पकड़ा । प्रेमचन्द की तरह राहुलजी ने भी जीवन के यथार्थ को कहानियों में आंकने की कोशिश की । प्रेमचन्द की 'पूस की रात' कहानी की तरह, राहुल के "सतमी के बच्चे" की कहानियों में भी समाज व्यवस्था के क्रूर दमनकारी चरित्र के विरुद्ध तीव्र घृणा प्रकट की गई है । राहुल, प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों से भी प्रभावित थे, विशेषकर 'सालवती' कहानी से। प्रेमचन्द की तरह राहुलजी ने भी तत्कालीन भारतीय समाज को नज़दीकी से देखा । उनकी वामपंथी विचारधारा, केवल वामपंथी रुझान तक सीमित न रही । उन्होंने अपनी कहानियों में जीवन के साथ साथ इतिहास की गतिशीलता तथा समाज की विकास प्रक्रिया को भी रेखांकित किया।

राहुलजी कैसे कहानीलेखक बने, इस संदर्भ में स्वयं राहुलजी का वक्तव्य है – "यात्राओं के लिखते सन् 1935ई. या सन् 1934ई. में कुछ वास्तविक घटनाओं को लेकर कहानियाँ लिखने की इच्छा हुई और एक एक करके मैंने उन कहानियों को लिखकर पत्रिकाओं में भेजा, जोकि "सतमी के बच्चे" में संग्रहीत है । इस प्रकार "बाईसवीं सदी" के बाद "सतमी के बच्चे" और उसके साथ की और कहानियों को लिखकर मैंने कथाक्षेत्र में प्रवेश किया "।[2]

---

1. डॉ. नामवरसिंह – "हिन्दी प्रतिनिधि कहानियां" की भूमिका – पृ 15
2. राहुल सांकृत्यायन – "राहुल निबन्धावली" – पृ 2

राहुलजी के इन शब्दों से यह पता चलता है कि उनकी कहानियों में केवल सच्चाई का चित्रण है ।

हिन्दी कहानी में प्रगतिशील आन्दोलन सन् 1936 ई. के बाद आरंभ होता है । उल्लेखनीय बात यह है कि सन् 1935ई. में राहुल का पहला कहानीसंकलन प्रकाशित हुआ । इसमें प्रगतिशीलता के तत्व बड़ी मात्रा में मिलते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के संगठित रुप में आरंभ होने से पहले ही राहुल ने हिन्दी में प्रगतिशील कहानी के लिए जमीन तैयार की । राहुल ने उस समय लिखना प्रारंभ किया, जब गांधीजी राजनीति में सशक्त थे। व्यापक जन-उभार की असफलता के बाद पक्का कांग्रेसी राहुल भी सन् 1935 ई. में आते आते कम्यूनिस्ट हो गए । उन्होंने साठ कहानियाँ लिखकर हिन्दी कहानी क्षेत्र को संपुष्ट किया । ये कहानियां चार संग्रहों में संकलित हैं जैसे "सतमी के बच्चे" (सन् 1935 ई.) "वोल्गा से गंगा" (सन् 1942ई.), "बहुरंगी मधुपुरी" (सन् 1954ई.) तथा "कनैला की कथा" (सन् 1957ई.) ।

राहुल सांकृत्यायन के समकालीन कहानीकार

राहुल सांकृत्यायन के समकालीन कहानीकारों में मुख्य रुप से यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क और अमृतराय आते हैं ।

पुरातन मूल्य, अप्रासंगिक रुढियाँ और नैतिक भ्रष्टाचारों को तिरस्कृत करने के राहुल और यशपाल के रास्ते अलग-अलग हैं । यशपाल की अपेक्षा व्यंग्य की मात्रा राहुल में कम है । यशपाल ने वर्तमान वातावरण में सामाजिक आन्दोलनों के साथ माकर्सवाद का प्रतिपादन किया । किन्तु राहुल ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत माक्र्सवादी सिद्धांतो का उद्घाटन किया । उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन को अपने देश की परिस्थितियों से जोड़कर देखा है । यशपाल ने माक्र्सवाद के आधार पर नैतिक मूल्यों को नकारा एंव बौद्ध धर्म की कटु आलोचना की । उनका साहित्य में आगमन सक्रिय क्रांतिकारी पृष्ठभूमि से हुआ । उनके मन में गाँधीजी के प्रति वैचारिक

मतभेद अंत तक रहा । उन्होंने सेक्स को फ्रायडवादी सिद्धांतों के आधार पर आवश्यक समझा, प्रचीन मूल्यों को नकारा एवं शोषित वर्ग को साम्यवादी चेतना के स्तर पर उभारने की कोशिश की । राहुल ने प्राचीन मूल्यों को पूर्णतया नहीं छोड़ा, उनके सही मूल्य को पहचाना । उन्होंने बौद्ध धर्म तथा साम्यवाद का सुन्दर समन्वय स्थापित करते हुए राजनीति में साम्यवाद तथा बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा की । उनकी कहानियों में दया, करुणा, त्याग, भोग तथा सेक्स के साथ साथ मानव-समानता, दायित्वबोध, स्वतंत्र्य की भावना तथा स्वच्छन्द भोग का समर्थन है ।

अमृतराय यशपाल के अधिक निकट आते हैं । उन्होंने कार्ल-माक्र्स लेनिन आदि के विचारों को लेकर हिन्दी में एक नया वाद खड़ा किया, जिसमें साहित्य की अपेक्षा राजनीतिक ज़ोर अधिक है ।

जैनेन्द्र, प्रेमचन्द की परंपरा में आनेवाले कहानीकार हैं । उनकी कहानियों में मनोविष्लेषणवादी विदेशी विद्वानों के मतों तथा भारतीय दर्शन का समन्वय हम पा सकते हैं । राहुल, गाँधी तथा कांग्रेस की राजनीति का विरोध करते थे, यद्यपि वे उनके व्यक्तिगत आचरण से प्रभावित थे । जैनेन्द्र ने राहुल के समान प्रेमचन्द की ओर मुडकर शोषित जनता को केन्द्र बनाकर सामाजिक विषमताओं को भी विषय बनाया । उपेन्द्रनाथ अश्क, व्यक्ति की मानसिकता को समाज के आधार पर परखते हुए, समाज के बिना व्यक्ति के अस्तित्व को नहीं स्वीकारते हैं । इलाचन्द्र जोशी मनोविष्लेषणवादी कहानियों के आधार पर नैतिक मूल्यो की चर्चा करते हुए मध्यवर्ग पर नैतिकता का प्रहार करते हैं । अज्ञेय की कहानियों में जीवन के बाह्य एवं आंतरिक पक्ष की विसंगतियों का चित्रण है । लेकिन वे यह स्पष्ट नहीं करते कि कोई असंगत तथा विसंगत जीवन की स्थिति मूल रुप में किस तरह सामाजिक राजनीतिक ढाँचे से जुड़ी हुई है । दृष्टि की अस्पष्टता तथा सामाजिक बोध के अभाव के कारण इनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिकता अधिक मात्रा में है । इनकी कहानियों में केवल मध्यवर्गीय व्यक्ति

का बिंब उभरता है, पूरा यथार्थ नहीं । लेकिन राहुल की दृष्टि संपन्न है ।

होने के नाते वे सामंतवादी तथा साम्राज्यवादी व्यवस्थाओं पर एक साथ चोट

जैनेन्द्र और अज्ञेय अमानवीय सामाजिक ढाँचे पर कहीं कहीं अमूर्त हमले तो ... ९,

पर वे राहुल की तरह जड़ पर प्रहार नहीं कर पाते । राहुलजी में अस्पष्टता, अराजकता या निराशा नहीं । उनकी कहानियों में केवल दुःखों की दुनिया से साक्षात्कार ही नहीं, बल्कि उनके कारणों की जानकारी प्राप्त कर व्यवस्था के विरुद्ध ज़ोर की आवाज है । वे आशावादी थे। लेकिन उनके समकालीन कहानीकारों में आशावादी दृष्टि का अभाव था । राहुल की कहानियाँ फार्मूले के बन्द कठघरों से अलग, जीवन के आयाम को रुपायित करती हैं । उनके समकालीन कहानीकार सामाजिक असंगतियों के स्थान पर जीवन की असंगतियों को अधिक महत्व देते थे । लेकिन राहुलजी का मुख्य विषय सामाजिक असंगतियाँ थीं । वे अपने समकालीन कहानीकारों की तरह समाज की तटस्थ आलोचना करनेवाले नहीं थे । वे शोषित जनता के पक्षधर कहानीकार थे वे आन्दोलनों में भाग लेकर साहित्य रचना करते थे। ऐसे एक साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञ थे केरल के ई.एम.एस, जो राहुलजी के परम मित्र थे। इस प्रकार राहुल अपने समकालीन कहानीकारों से अलग खड़े होकर एक विशेष उद्देश्य से कहानियाँ लिखते थे । राहुलजी ने हिन्दी को एक परंपरा दी है, लेकिन उन्हें किसी एक परंपरा में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। एक परंपरा को पहचानने के लिए राहुलजी ने दूसरी परंपरा को झकझोर दिया । उनके पास एक स्पष्ट दृष्टि थी, जो मार्क्सवादी थी । शायद यही कारण होगा कि आलोचकों ने दिन्दी कहानी साहित्य के विकास में योग देनेवालों में प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र और अज्ञेय को उच्चस्थान पर प्रतिष्ठित किया । यह पक्षधरता ही है कि कहानी क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन के योगदान को वे भूल-सा गए।

राहुल सांकृत्यायन और उनके समानधर्मी कहानीकार

विकास काल में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विकास की कहानियाँ बहुत कम लिखी गईं । वे भाव अथवा घटना-प्रधान थीं । उत्कर्षकाल में सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विकास की कहानियाँ केवल घटनाप्रधान थीं, जिनमें विषयवस्तु की प्रधानता है । रचनाकला की दृष्टि से इनका मूल्य अधिक नहीं । इनमें केवल वातावरण तत्व की प्रधानता है । ऐतिहासिक – सांस्कृतिक कहानियाँ लिखनेवालों की कोटि में जयशंकरप्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, उषादेवी मित्रा, कमलादेवी चौधरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

प्रसाद की कहानियों में अतीत के प्रति गहन आस्था है । इन कहानियों में वर्तमान से पलायन है । उनकी 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'स्वर्ग के खंडहर', देवरथ जैसी कहानियों में जातीय गौरव और आदर्श की स्थापना है । लेकिन राहुल की ऐतिहासिक कहानियाँ अतीत की परंपरा का वस्तुगत मूल्यांकन करते हुए वर्तमान की वास्तविकता से हमारा परिचय कराती हैं और हमें भविष्य की ओर भी ले जाती हैं । ये कहानियाँ केवल इतिहास ही नहीं, मानव समाज की संपूर्ण प्रगति का चित्र अंकित करती हैं । प्रसाद की अपेक्षा राहुल में विस्तृत ऐतिहासिक दृष्टि है । राहुल की एक-एक ऐतिहासिक कथा के भीतर पूरे युग का चित्र प्रस्तुत है । वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियाँ मुगल भारत से संबन्धित हैं । वर्माजी की कहानियों में वातावरण चित्रण राहुल की अपेक्षा कम है । श्री चतुरसेनशास्त्री की ऐतिहासिक कहानियाँ हैं 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'सिंहगढ़ विजय' आदि । शास्त्रीजी की ऐतिहासिक कहानियों का निर्माण, कल्पना एवं इतिहास के सम्मेलन द्वारा हुआ है । राहुल की कहानियों में यथार्थ अधिक मुखर हो उठा है । श्री भगवतशरण उपाध्याय की मानव-विकास से संबन्धित कहानियाँ "सवेरा संघर्ष गर्जन" में संकलित हैं । लेकिन उनकी कहानियों में आभिजात्य वर्ग के पात्र ही अधिक संख्या में मिलते हैं । राहुल ने सामान्य जन को

कहानियों का विषय बनाया । उन्होंने तत्कालीन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों पर ज्यादा ध्यान दिया । उषादेवी मित्रा की कहानियों में मानवता के विकास को लक्ष्य बनाया गया है । उनमें विकासोन्मुख और ह्रासोन्मुख समाज के दोनों रुपों का चित्रण मिलता है । इन्होंने मानव समाज के बहिरंग और अंतरंग वातावरण को उपस्थित करते हुए आदर्श मार्ग की ओर संकेत किया है । इनकी कहानियों में 'महान की पूजा', 'चम्मच भर आँसू', 'मन का यौवन' आदि इस कोटि में आती हैं । कमलादेवी चौधरी की ऐतिहासिक कहानियों के विषय महत्वपूर्ण हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति पग-पग पर प्रतिबिंबित हुई है । 'बलिदान', 'अधूरा चित्र', 'टेक की रक्षा', 'पराजय', 'सुधिया' जैसी कहानियों का इस दृष्टि से विशेष स्थान है । राहुल की कहानियों में विभिन्न प्राचीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक युगों में मनुष्य के विकासेतिहास का चित्रण है । इनकी ऐतिहासिक कहानियों के बारे में डॉ. प्रभाकर माचवे का वक्तव्य यहाँ प्रासंगिक होगा – "राहुल की कहानियों का आरंभ प्रायः इतिहास के किसी-न-किसी कालखंड की घटना से होता है । राहुल अपने इतिहास चिन्तन का अपनी रचनाओं और वैचारिक लेखों में विशेष रुप से समावेश करते हैं । यही कारण है कि उनकी कहानी की अन्तर्वस्तु इतिहास का किसी-न-किसी रुप में साक्षात्कार करती है । कहानी के बीच बीच में ऐसे घटनाक्रम का उल्लेख कर राहुल यह स्मरण दिलाना चाहते हैं कि उनकी कहानी के पात्र जिस काल के समाज में रहते आए है, वे कहीं-न-कहीं इतिहास की अनिवार्य नियति से बंध हुए हैं तथा उनके भीतर इतिहास की चेतना हो या न हो, लेकिन वे इतिहास के विषय जरुर हैं ।"[1] यह उद्धरण कहता है कि राहुल की संपूर्ण कहानियों का मूल विषय इतिहास ही है ।

---

1. डॉ. प्रभाकर माचवे – "राहुल सांकृत्यायन" – पृ 30

राहुल ने अपनी सामाजिक कहानियों में प्रेमचन्द के समान समाज की अनेक समस्याओं को उठाया है । समाज के जड-संस्कार, व्यक्ति की पाखंडता, सामाजिक शोषण आदि पर उन्होंने चोट की है । "सतमी के बच्चे" की कहानियाँ गाँव पर आधारित हैं । "बहुरंगी मधुपुरी" में विलासपुरी मसूरी पर केन्द्रित कहानियाँ हैं । इनमें लेखक के अनुभव भी शामिल हैं । "बहुरंगी मधुपुरी" में व्यंग्य और विडंबनाओं का चित्रण है तो "सतमी के बच्चे" में करुणा और विद्रोह का स्वर है । राहुल की सामाजिक कहानियाँ जीवन के अधिक निकट हैं । हिन्दी में ऐतिहासिक यथार्थवादी परंपर के निर्माण का श्रेय राहुल को है ।

राहुल सांकृत्यायन की कहानियों का श्रेणी विभाजन

यद्यपि राहुल की सभी कहानियों का आधार समाज है, तो भी अध्ययन की सुविधा के लिए राहुल की कहानियों को ऐतिहासिक-सांस्कृतिक, एवं सामाजिक कोटि में रखा जा सकता है ।

ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कहानियाँ – ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कहानियों का आधार इतिहास है । इनकी घटनाएँ एवं पात्र इतिहास से सम्बद्ध हैं । वार्तालाप जैसे शेष भाग स्वयं कहानीकार का होता है । इस श्रेणी के अन्तर्गत "वोल्गा से गंगा" एवं "कलैला की कथा" की सारी कहानियाँ और "सतमी के बच्चे" की "डीहबाबा" और 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' कहानियाँ आती हैं । ये कहानियाँ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के तन्दुओं से अनुस्यूत हैं, जिनका पृष्ठाधार मानवीय इतिहास एवं संस्कृति है । राहुल ने इतिहास के जर्जर एवं विस्मृत खंडहरों का पैनी दृष्टि से अनुसंधान कर अपने कथा साहित्य की पृष्ठभूमि का अन्वेषण किया है । "वोल्गा से गंगा" में कहानीकार ने रूस के वोल्गा नदी-तट से, भारत के गंगा नदी तट तक की आदि मानवीय सभ्यता के

पूर्ण उत्थान को 8000 वर्षों तक की क्रमिक परिसीमा में चित्रित किया है । इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर स्वयं राहुल का मंतव्य इस प्रकार है – "लेखक की एक एक कहानी के पीछे उस युग के संबन्ध की वह भारी सामग्री है, जो दुनिया की कितनी ही भाषाओं, तुलनात्मक भाषा – विज्ञान, मिट्टी, पत्थर, तांबे, पीतल, लोहे पर सांकेतिक-व-लिखित साहित्य अथवा अलिखित गीतों, कहानियों, रीति-रिवाजों टोटके-टोनों में पाई जाती हैं ।"[1] ऐतिहासिकता के अनुरुप "वोल्गा से गंगा" की बीस कहानियों को तीन उपवर्गों में रखा जा सकता है – प्रागैतिहासिक युग, ऐतिहासिक युग और आधुनिक युग । प्रागैतिहासिक युग में इस संग्रह की प्रथम आठ कहानियाँ आती हैं । ये ई.पू. 6000 से ई.पू. 700 तक के समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं । ऐतिहासिक युग में आगे की आठ कहानियाँ आती हैं । इनमें ई.पू.490 से सन् 1600ई. तक के समाज का चित्रण है । ये सभी सूत्र इतिहास की शृंखला में आबद्ध हैं। आधुनिक युग में अंतिम चार कहानियां आती हैं, जो अंग्रेजी शासनकाल के भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों का सच्चा चित्र अंकित करती हैं। "वोल्गा से गंगा" में ऐतिहासिकता के तत्व ही अधिक मात्रा में आए हैं । श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने इन कहानियों में कहानीपन कम और ऐतिहासिकता को अधिक उभरा हुआ पाया ।[2] स्वयं राहुल ने भी इससे सहमत होकर कहा – "इन कहानियों को रोचक ढंग से लिखा इतिहास मानने में कोई आपत्ति नहीं ।"[3] उपर्युक्त बातें यह साबित करती हैं कि कहानी कहने की अपेक्षा इतिहास बताना राहुल का लक्ष्य था ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – "द्वितीय संस्करण पर दो शब्द" – पृ 5
2. श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन – "वोल्गा से गंगा" – 'परिशिष्ट' पृ 383
3. राहुल सांस्कृत्यान – "वोल्गा से गंगा" – 'परिशिष्ट'

ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कहानियों के द्वितीय संग्रह "कनैला की कथा" में कनैला ग्राम विशेष का 1300 ई.पू से लेकर सन् 1957ई तक का चित्रण है । "वोल्गा से गंगा" के समान इसमें भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता मिलती है । लेकिन दोनों की परिसीमा में अन्तर है । "वोल्गा से गंगा" का विस्तार रूस की वोल्गा नदी से भारत की गंगा नदी तक है । जबकि "कनैला की कथा" में केवल कनैला ग्राम विशेष के विकास का अंकन है । ऐतिहासिकता के अनुरूप इसकी नौ कहानियों को भी प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक और आधुनिक युग जैसी कोटियों में रखा जा सकता है । प्रागैतिहासिक युग के अन्तर्गत इसकी प्रथम दो कहानियाँ आती हैं । ऐतिहासिक युग में आगे की पाँच कहानियाँ आती हैं । आधुनिक युग में अंतिम दो कहानियाँ आती हैं। "कनैला की कथा" की ऐतिहासिकता भी असंदिग्ध है । इसका प्रमाण राहुलजी के ही शब्द हैं – "कनैला मेरा पितृग्रम है, मैं ननिहाल (पन्दहा) में पैदा हुआ और वहीं पला पढा भी, इसलिए जन्मग्राम वही है । हर गांव की आपबीती रोचक कथाएँ होती हैं, जिनको बाल्यकल्पना और भी मोहक बना दैती है । हो सकता है, मेरे लिए भी कनैला की कथाएँ आकर्षक मालूम हुई हों । पर सत्य कल्पना से भी अधिक सुन्दर होता है।"[1] इससे मालूम होता है कि इसमें तथ्यों पर आधारित कहानियाँ ही हैं ।

उपर्युक्त कहानियों के अलावा "सतमी के बच्चे" की 'डीहवाबा' और 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है । ये कहानियाँ भी ऐतिहासिकता के अनुकूल हैं ।

"कनैला की कथा" – 'प्राक्कथन' – पृ 1

सामाजिक कहानियाँ – साहित्य का लक्ष्य समाज की स्थिति का यथार्थवादी अंकन है। सामाजिक कहानी का उपजीव्य भी समाज है । इसमें संपूर्ण समाज की समस्याएँ छिपी रहती हैं । इस कोटि के अन्तर्गत "सतमी के बच्चे" में संकलित आठ कहानियाँ और "बहुरंगी मधुपुरी" की सभी कहानियाँ आती हैं । "सतमी के बच्चे" की आठ कहानियों में सम-सामयिक समाज की आर्थिक-व-सामाजिक परिस्थितियों से पीड़ित व्यक्तियों का जीवन चित्र है । "बहुरंगी मधुपुरी" में विलासपुरी मसूरी के जीवन से जुड़े हुए इक्कीस व्यक्तियों के जीवन चित्र द्वारा राहुल ने मंसूरी के बदले हुए समाज का चित्रण किया है।

हिन्दी कहानी साहित्य के लिए राहुल सांकृत्यायन की विशेष देन

प्रेमचन्द के बाद व्यापक संवेदनाओं से युक्त यथार्थवादी कहानियों का प्रणयन राहुल सांकृत्यायन की बड़ी उपलब्धि है । उन्होंने यथार्थवादी कहानीकार के रुप में प्रेमचन्द परंपरा को अपनाया और नए युग संदर्भों के साथ उसे जोड़ा । राहुल का यह यथार्थवाद उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता को सूचित करता है । कहानी क्षेत्र में उनकी विशेष देन वस्तु या विचार-पक्ष की संपन्नता है । उनकी कहानियों का वस्तुगत वैशिष्ट्य यह है कि इनका केन्द्र शोषित तथा उपेक्षित जनता है । इनमें समाज तथा मानव जीवन से संबन्धित अनेक प्रश्नों को उठाया गया है । वे युगसत्य को समझनेवाले साहित्यकार थे । वे उच्चस्तरीय विचारों को सरल भाषा में प्रस्तुत कर साधारण जनता के बीच में आए । उन्होंने कहानियों को राजप्रासादों से निकालकर झोंपडियों तक पहुँचा दिया तथा दुःख-दर्द से पाठकों को अवगत कराया । राहुलजी ने उस समय लिखना प्रारंभ किया, जब भारत का स्वाधीनता आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था । भारतीय साहित्य में, विशेषकर हिन्दी साहित्य में, यथार्थवाद का विकास स्वाधीनता आन्दोलन के साथ हुआ । राहुल ने पश्चिमी कथा साहित्य को ठीक तौर से

पढा और पाश्चात्य एवं भारतीय परंपरा से कुछ ग्रहणकर उसे नए रुप में प्रस्तुत किया। राहुल की कहानियों की भीतरी दुनिया पश्चिमी कहानीकारों से भिन्न है । पाश्चात्य कहानियों के नायक मध्यवर्ग, सामन्तवर्ग या बुर्जुआ वर्ग ही मिलते हैं । उनकी कहानियों में पतनशील सामंती समाज और उत्थानशील बुर्जुआवर्ग का संघर्ष नहीं । उनमें किसानों एवं मजदूरों का चित्रण भी अधिक नहीं । पर राहुल की कहानियों का केन्द्र मजदूर एवं सामान्य जनता ही है । मानव विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया को लेकर कहानियाँ रचना उतना आसान नहीं । राहुल ने इस चुनौती को स्वीकार किया । उन्होंने केवल सम्राटों को केन्द्र में न रखकर तत्कालीन सामान्य जनता, लोक-परंपरा और ललित कलाओं पर भी प्रकाश डाला । साधारणतः विश्व साहित्य में भी प्रायः कहानीकार सीमित भूगोल पर आधारित कहानियाँ रचते हैं । पर राहुल ने देशकाल एवं भूगोल की सीमाओं को तोड़कर, कहानियां रचकर अन्तर्राष्ट्रीयवादी कहानीकार का स्थान प्राप्त किया । राहुलजी ने प्रेमचन्द के समान ऐतिहासिक-व-सामाजिक दोनों प्रकार की कहानियां लिखी हैं, पर ऐतिहासिक कहानियों के क्षेत्र में विविधता, यथार्थता एवं ऐतिहासिक तत्व की अधिकता राहुल में है । इनकी कहानियां में सुलझी हुई जीवनदृष्टि, व्यापक ऐतिहासिक ज्ञान, पुरातात्विक पकड़, प्रगतिशील विचार, वातावरण की सजीवता आदि हैं । उनकी एक बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने पुरातात्विक एवं उग्र समाज चिन्तन को कहानियों का विषय बनाया ।

संक्षेप में कहें तो राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी कहानी साहित्य को कल्पना के क्षेत्र से निकालकर यथार्थ जीवन से जोड़ा। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नया आयाम प्रदान किया । इतना होने पर भी हिन्दी कहानी साहित्य में राहुलजी को वह प्रतिष्ठा नहीं मिली, जिसके लिए वे योग्य थे । राहुल को समय के दायरे में बंधे साहित्यकार के रुप में नहीं, प्रेमचन्द और प्रसाद की तरह कालजयी साहित्यकार के रुप में प्रतिष्ठित करना समीचीन होगा । निरन्तर विश्व भ्रमण करनेवाले राहुल हमसे

दूर नहीं जा सकते । वे हमेशा हमारे साथ रहेंगे, अपने साहित्य के माध्यम से । वे तो अमर हैं । वे आनेवाली पीढ़ियों के साथ साथ चलकर उनका मार्गदर्शन करेंगे ।

खंड. ख. राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व और उनकी कहानियों पर उसका प्रभाव

बहुमुखी प्रतिभासंपन्न महापंडित राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम, हमें जरूर आश्चर्य में डाल देंगे । बौद्ध, कम्यूनिस्ट, आर्यसमाजी, यायावर, इतिहासज्ञ, भाषा-वैज्ञानिक, साहित्यकार, धर्म-प्रचारक, सनातनी हिन्दू, किसान नेता, कांग्रेसी, शिक्षक, बहुभाषाविद्, जिज्ञासु, पुरातत्ववेत्ता, वैज्ञानिक, शोध-निदेशक – इस तरह राहुल का व्यक्तित्व बिखरा पड़ा है । उन्होंने किसी मत का अन्धानुकरण नहीं किया । जो अच्छा लगता है, उसे स्वीकार करना उनका नारा है । उन्होंने हमेशा बुद्ध भगवान के इस भाववाले कथन को मन में रखकर कार्य किया – "भिक्षुओ मैं नौका की तरह धर्म का उपदेश करता हूँ । यह पार होने के लिए है, पकड़कर बैठने के लिए नहीं । जिसे अधर्म मान लिया है, उसे तो छोड़ देना पड़ता ही है, किन्तु जिसे हमने धर्म भी मान रखा था और कालान्तर में हमें लगा कि वह धर्म भी अब त्याज्य है, तो उसे भी छोड़ देना चाहिए ।"[1] सचमुच राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तिव विलक्षण था । उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करने पर यह बात साबित हो जाती है।

---

1. "राहुल स्मृति ग्रंथ" – पृ 297

जन्म

राहुल सांकृत्यायन का जन्म उत्तरप्रदेश के आज़मगढ़ जिले के पन्दहा ग्राम में नाना के घर में रविवार 9 अप्रैल सन् 1893ई. को हुआ । वे सांकृत्य गोत्र के सरयूपारीण ब्राह्मण थे । उनके बचपन का नाम केदारनाथ पांडेय था । उनके पिता का नाम गोवर्धन पाण्डे था, जो असाधारण प्रतिभाशाली एवं मेधावी व्यक्ति थे । माता कुलवन्ती आदर्श भारतीय ग्रामीण महिला थी । दुर्भाग्य से प्रसूतिज्वर के कारण सन् 1905ई. में उनकी मृत्यु हो गई । उनके नाना-नानी ने माँ के अभाव की पूर्ति की । नाना रामशरण पाठक और नानी की स्नेहमई क्रोड में राहुल का पालन पोषण हुआ ।

शिक्षा-दीक्षा

राहुल के नाना रामशरण पाठक पल्टन में सिपाही थे । राहुल के व्यक्तित्व के विकास में उनका बड़ा हाथ था । नवंबर सन् 1898ई. में नाना ने केदारनाथ (बचपन का नाम) को 'रानी की सराय' के प्राइमरी स्कूल में पढ़ने भेजा । शिक्षा के प्रति राहुल में नैसर्गिक लगाव थी । नाना के पल्टनिया जीवन के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन सुनकर राहुल के मन में इतिहास और भूगोल के प्रति रुचि बढ़ी । सन् 1907ई. में उन्होंने उर्दू मिडिल की परीक्षा पास की । कलकत्ता जाकर घर पर ही उन्होंने अंग्रेजी भाषा सीखी । अंग्रेजी ज्ञान बढ़ाने के लिए सन् 1912ई. में बनारस के दयानन्द स्कूल में प्रवेश किया गया, लेकिन यह पूरा न कर सके । उन्होंने महादेव पांडे की अध्यक्षता में कुछ दिन संस्कृत का अध्ययन किया । हिन्दी का भी गहरा अध्ययन उन्होंने किया । इसके अलावा 'आर्य-मुसाफिर विद्यालय' आगरा में उन्होंने डेढ़ वर्ष अरबी आर्य धर्म एवं अन्य धार्मिक ग्रंथों का भी अनुशीलन किया । सन् 1918ई. में राहुल ने 'वेदमध्यमा' प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की एवं 'संस्कृत शास्त्री' की भी परीक्षा दीं । इसके सिवा काशी की 'न्याय मध्यमा' एवं कलकत्ता की 'मीमांसा' परीक्षाएँ भी दीं ।

हजारीबाग जेल में गणित एवं अन्य उच्च बीजगणित भी उन्होंने पढ़ा । इस तरह राहुल का जीवन अध्ययन, पर्यटन और अनुसंधान में बीता। मानसिक परिवर्तन के साथ साथ उनके अध्ययन की दिशाएँ भी बदलीं । लंका में रहते समय वे ऐतिहासिक अनुसंधान की ओर खिंचे गए और उन्होंने शिलालेखों, पांडुलिपियों एवं ऐतिहासिक स्थलों का भी विशेष अवलोकन किया । वास्तव में इनकी स्कूली शिक्षा मिडिल तक थी । श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में कहें तो "उन्होंने दरअसल विश्व के विद्यालय में आँख खोलकर घूमते हुए खूब शिक्षा प्राप्त की है ।"[1]

विवाह एवं पारिवारिक जीवन

राहुल का दांपत्य जीवन भी अनोखा था । सन् 1904ई. में ग्रामीण पुजारी पिता ने 11 वर्ष के बालक केदार का उससे उम्र में बड़ी सुन्दरी ब्राह्मणी कन्या रामदुलारी देवी से विवाह कराया । यह शैशव विवाह राहुल के लिए तमाशा मात्र था । इस विवाह ने उनके मन में विद्रोह का बीज बोया । इस अनुभव से उदासीन होकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि "पचास वर्ष की अवस्था तक मैं अपनी पत्नी की शक्ल न देखूंगा ।"[2] उन्होंने इस भीष्म प्रतिज्ञा का पालन भी किया । इसका कारण स्वच्छन्द घूमने की लालसा एवं जिज्ञासा थी । रामदुलारी देवी ने साध्वी बनकर मृत्यु तक राहुल को पति मानकर पूजा-अर्चा में व्यतीत किया । उनकी मृत्यु सन् 1971ई. में हुई। सन् 1957ई. में जब राहुल कनैला ग्राम गए थे, तब उन्होंने उसे देखा था । उसी वर्ष ही उनका कहानी संग्रह "कनैला की कथा" प्रकाशित हुआ । यह पुस्तक उस पत्नी के लिए समर्पित है । समर्पण में लिखा गया है – "उसी प्रथम परिणीता को, जिसका सारा जीवन मेरी महत्वाकांक्षाओं का शिकार हुआ"।[3] वास्तव में इस घटना से राहुल

1. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी – "रेखाचित्र" – पृ 177
2. राहुल सांकृत्यायन – "मेरी जीवनयात्रा" – भाग 1 – पृ 32
3. "कनैला की कथा" – समर्पण

के मन में बहुत अधिक पश्चाताप जरूर हुआ । 1938 ई में राहुल प्राच्य भाषाविद् के रुप में रूस गए । वहां रूसी विद्वान आचार्य श्चेरवात्सकी की योग्य शिष्या एवं लेनिनग्राद के प्रसिद्ध ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट की सेक्रेटरी लोला (एलेना) नारवेरतोवना कोजेरोवस्काया से इनका परिचय हुआ । 22 दिसंबर सन् 1938ई. को उन्होंने उस युवती से शादी की। इन्हीं से ईगोर पुत्र का जन्म हुआ । द्वितीय रूस यात्रा में वे तीन वर्ष अर्थात् (सन् 1944 से 47ई. तक) लोला एवं ईगोर के साथ रहे। लेकिन रूसी राजनीति के कारण वे अपनी पुत्री और पुत्र को भारत निमंत्रित न कर पाए । लोलाजी जीवनपर्यन्त राहुल की स्मृतियों को संजोए एक भारतीय नारी की तरह रहीं। अपने पति के अंतिम दर्शन से भी वे वंचित रह गईं । 23 दिसंबर सन् 1950ई. को नेपाली तरुणी कुमारी कमला पेरियार से उनका विवाह हुआ, जो उनके निज सचिव के रुप में कार्य कर रही थी । उसे उन्होंने हमेशा के लिए सहकर्मिणी एवं सहधर्मिणी के रूप में स्वीकार किया । सन् 1963ई. में राहुलजी की मृत्यु के क्षण तक इस त्यागी धर्मपत्नी श्रीमती कमला सांकृत्यायन उनकी सेवा में लगी रहीं। इनके दो बच्चे हैं – जया और जेता । तीनों बच्चों के प्रति राहुल का अत्यधिक स्नेह था । रूसी सरकार के उचित संरक्षण के कारण वे ईगोर की ओर से कम चिन्तित थे । लेकिन वे जया और जेता के भविष्य के लिए बहुत अधिक चिन्तित थे । कमला से विवाह के बाद कुछ वर्षों तक मसूरी में रहने का अवसर राहुल को मिला था । उस समय के अनुभव से उन्हें "बहुरंगी मधुपुरी" कहानीसंकलन लिखने की प्रेरणा मिली। वास्तव में राहुल का दांपत्यजीवन अनोखा था । वे अपने संपूर्ण जीवन के कुल पन्द्रह वर्ष ही गृहस्थ के रुप में रह सके ।

व्यवसाय

जन्मजात यायावरी वृत्ति एवं वैराग्य के भूत के कारण राहुल ने आजीविका के साधनों की ओर ध्यान नहीं दिया । अर्थ संचित करने में राहुल की विमुखता, कार्ल मार्क्स के व्यक्तित्व से समानता रखती है । मार्क्स की राय में निसन्देह लेखक को कमाना चाहिए, ताकि ज़िन्दा रह सके और लिख सके, परन्तु उसे किसी सूरत में इसलिए नहीं ज़िन्दा रहना और लिखना चाहिए कि वह कमा सके । राहुल ने कलकत्ता में जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध खानदान सूँघनीसाहु की दूकान में कुछ दिनों कपड़े की फेरी का काम किया । फिर मार्कामैन के रूप में पुनः सूँघनीसाहूवालों की कलकतिया दूकान पर चिट्ठी-पत्री तथा हिसाब लिखने का काम किया । आजीविका के लिए उन्होंने केवल सन् 1944ई. से सन् 1946ई. तक प्राच्य भाषाविद् प्रोफेसर के रूप में कार्य किया । इसके पहले रामोदार के रूप में महन्ती और आर्यसमाजी सुधारक के रूप में कार्य किया । लंका निवास काल में उन्होंने विद्यालंकार विहार में पठन-पाठन किया। सन् 1927 ई. में उन्होंने हिन्दी पत्रिकाओं में लिखना शुरु किया । स्वाभाविक रूप से उनको भी प्रकाशकों से कटु अनुभव हुआ । उन दिनों परिवार का पोषण असंभव हो गया । वे सन् 1959-61 तक विद्यालंकार विहार में संस्कृत एवं बौद्ध दर्शन के आचार्य रहे । फिर भी इन नौकरियों के पीछे उनका मुख्य लक्ष्य दुनिया का दर्शन करना था ।

बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व

शरीराकृति के अनुरूप मानव में गुण भी होते हैं। सुन्दर आकृतिवान् मानवों के गुण भी सुन्दर होते हैं। राहुल सांकृत्यायन का बाह्य व्यक्तित्व, वैदिक आर्यों के समान सुदृढ़, स्वस्थ एवं दीप्तिमान था । उन्नत एवं विशाल भाल जिसपर गंभीर चिन्तर की रेखाएँ। प्रसन्न मुख-मुद्रा। आँखों में लहराता वात्सल्य पयोधि । रस की सृष्टि करने में

सक्षम, मधुर, स्पष्ट तथा हितकर वाणी। शुभ्र भावों का प्रतीक श्वेत परिधान। प्रथम दर्शन में ही वे व्यक्ति को आकर्षित कर लेते थे। देश-काल के अनुरूप वेश पहनना उनके व्यक्तित्व की एक प्रकट विशेषता थी । वे समय की महता जाननेवाले व्यक्ति थे। उनके खानपान संबन्धी विचारों को अनेक यात्राओं ने पर्याप्त उदार बना दिया । राहुल के आन्तरिक व्यक्तित्व की विशेषताएँ दृढ़ता, विनम्रता, नियमितता, व्यावहारिकता, अध्यवसाय एवं कर्मठता, निर्भीकता, जीवन्तता, आत्मनिर्भरता, साहसिकता, आत्मानुशासन, स्वाभिमान, स्पष्टवादिता, ज्ञानार्जनवृत्ति, बौद्धिक वृत्ति, परिवर्तनशीलता आदि हैं । सत्यनिष्ठा आदि सद्गुणों के समन्वय के कारण उनका व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली बन गया था ।

साहित्यिक व्यक्तित्व

यद्यपि राहुल ने हिन्दी की कोई परीक्षा पास नहीं की, तो भी उनका हिन्दी ज्ञान अपार था । सन् 1906ई. में उन्होंने कुछ कवित्त सवैयों की रचना की । लेखक बनने के संबन्ध में राहुलजी ने कहा था – "मेरी यदि लालसा थी तो घुमक्कड बनने की और कुछ ज्ञानार्जन करने की । लेखक तो समझता हूँ संयोग से ही मैं बन गया।"[1] इससे स्पष्ट है कि वे अपने ज्ञान को बाँटना चाहते थे। यात्रा, जीवन और जगत के नाना अनुभवों ने उन्हें लिखने की प्रेरणा दी ।

राहुल का सर्वप्रथम साहित्यिक लेख मेरठ के हिन्दी मासिक "भास्कर" में सन् 1915 ईसवी में छपा था । सन् 1920 ई. में "भारती" में यात्रा-संबन्धी उनका प्रथम लेख प्रकाशित हुआ । इसके अलावा 'आर्यगजट', 'वैदिक मैगज़ीन', 'सरस्वती', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'विश्वामित्र', 'मिलाप' आदि विभिन्न पत्रिकाओं में उनके लेख छपे ।

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "राहुल निबन्धावली" – पृ 1

सन् 1927 ई. में उन्होंने लंका में संस्कृत अध्यापक के रूप में काम शुरु किया, जिससे उनके साहित्यिक जीवन की सच्ची शुरुआत होती है । लंका के संबन्ध में धारावाहिक रूप में उन्होंने कई लेख लिखे, जो 'सरस्वती' 'विश्वामित्र' तथा 'मिलाप' में छपे । उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर जेल जाना पड़ा । यह जेलजीवन काल राहुल के लिए सौभाग्य का काल था । "दर्शन-दिग्दर्शन", "वोल्गा से गंगा", "जीने के लिए", "सिंह सेनापति" "जय-यौधेय", "मेरी जीवनयात्रा", "वैज्ञानिक भौतिकवाद", "सोवियत भूमि" जैसे ग्रंथों की रचना इस काल में हुई । वे संस्कृत, तिब्बती, हिन्दी, प्राकृत एवं भोजपुरी भाषाओं में लिखते रहे । सन् 1927ई. से सन् 1961ई. तक के चौंतीस वर्षों तक उनकी लेखनी अबाध गति से चलती रही ।

राहुल सांकृत्यायन की साहित्य संबन्धी मान्यताओं पर विचार करें तो मुख्य रूप से कहा जा सकता है कि वे साहित्य को साधारण जनता के हितों से जोड़कर देखते थे । राहुलजी की राय में प्रगतिशील साहित्यकार को जनता का साहित्यकार बनना है। समस्याओं से पलायन न करके संघर्ष के लिए प्रेरित करना है। दुनिया की व्याख्या नहीं, उसे दुनिया बदलनी है। राहुल के मत में साहित्य कल्पना जगत की चीज़ नहीं। साहित्य का आधार साधारण जनता है।

राहुल की आस्था मार्क्सवाद में अवश्य थी । लेकिन उन्होंने विधिवत् माक्र्सवाद को पढ़कर रचनाकर्म आरंभ नहीं किया । मार्क्सवादी सिद्धांतों के संपर्क में आने से पहले ही राहुल में स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, समता आदि की भावनाएँ थीं । वास्तव में प्रचीन भारत में ही उन्हे रूढियों से मुक्ति के अभियान और दर्शन मिले। राहुल के मन में साम्यवादी चेतना का बीजवपन रुसी क्रांति (1917) ने किया । इस संबन्ध में स्वयं राहुल का कथन है – "1918 और 1919 ई. में रूसी क्रांति की जो थोड़ी बहुत खबरें गलत या सही हिन्दी पत्रों में निकलतीं, उनमें कल्पना की नमक-मिर्च लगाकर मैंने अपने मन में एक साम्यवादी दुनिया की सृष्टि कर ली थी । उसी दुनिया को मैं

कागज़ पर उतारना चाहता था । साम्यवाद का सैद्धांतिक ज्ञान उस समय मेरे पास कुछ नहीं था, मैंने तो माक्र्स का नाम भी नहीं सुना था, इसलिए मेरा साम्यवाद उटोपियन साम्यवाद था, मुझे व्यावहारिक कठिनाइयों का कोई पता नहीं था । अभी मैं नहीं समझ पाया था कि साम्यवाद के वाहक साधारण मज़दूर और किसान हैं, जिन्हें अक्षर से भी कम सरोकार नहीं है ।"[1] यह बात इस का प्रमाण है कि राहुल ने पहले ही मन में ऐसी ज़मीन तैयार कर दी थी जिसपर मार्क्सवाद को बिठा सकें।

राहुल धन की व्यर्थता को समझकर सारी सामाजिक राजनीतिक बुराइयों की जड़ उसे मानते हुए उसके न्यायोचित विभाजन पर बल देते रहे । राहुल को सृजनात्मक मार्क्सवादी कहा जा सकता है । राहुल का कहना है कि "मैं भडामशाही मार्क्सवादी प्रचारक नहीं था कि हरेक को कन्वर्ट करने के नशे में 24 घंटे चूर रहूँ । अपने जीवन में मुझे ऐसा करने की आवश्यकता इसलिए भी नहीं थी कि मौके – बेमौके बोलने से जो काम नहीं हो सकता उतना मेरी किताबें कर रही थीं ।"[2] यह उद्धरण इस बात को व्यक्त करता है कि राहुल अपनी रचनाओं द्वारा पाठकों को माक्र्सवाद से प्रभावित कराना चाहते थे । राहुल, साहित्य को किसी भी प्रकार की संकीर्णता के दायरों में नहीं बाँधना चाहते थे । उनकी राय में मार्क्सवाद का प्रयोग किसी भी देश में उस देश की परिस्थिति के अनुसार करना चाहिए । उनकी साहित्य रचना साधारण जनता को लक्ष्य करके संबन्न हुई । उन्होंने प्रगतिवाद के साहित्यिक रूप पर विचार इस प्रकार प्रकट किया है – "प्रगतिवाद कोई कल्ट या संकीर्ण संप्रदाय नहीं है । प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रुँधे रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रशस्त करना । प्रगतिवाद कलाकार की स्वतंत्रता का नहीं, परतंत्रता का शत्रु है ।

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "राहुल निबन्धावली" – पृ 2

2. राहुल सांकृत्यायन – "राहुल वाङ्मय" 1/3

प्रगति जिसके रोम रोम में भींग गई है, प्रगति ही जिसकी प्रकृति बन गई है, वह स्वयं अपनी सीमाओं का निर्धारण कर सकता है । उसकी सीमा अगर कोई है तो यही कि लेखक और कलाकार की कृतियाँ प्रतिगामी शक्तियों के सहायक न बनें उनके शोषण और उत्पीड़न का हथियार न बने ।"[1] यहाँ प्रगतिवादी साहित्यकार के कर्तव्यों पर विचार किया गया है । हिन्दी साहित्य की प्रगति को लेकर वे आशावादी हैं । उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नवीन दृष्टि दी । लेकिन उस दृष्टि का समुचित आदर न हुआ । वे प्रायः पश्चिम से प्रभावित थे । पर बौद्ध धर्म एवं महत्वपूर्ण सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा उन्होंने नहीं की । केवल इसी लोक में विश्वास रखनेवाले राहुल ने मार्क्सवाद के विस्तृत विश्लेषण के लिए साहित्य रचना की ।

फासिस्ट विरोधी राहुल का कथन भी उल्लेखनीय बन पड़ा है तथा – "सांस्कृतिक निधि की रक्षा और नवनिर्माण की अभिलाषा यही वे बातें हैं, जिन्होंने हमें फासिस्टवाद का घोर विरोधी बनाया । हमें अफसोस है कि हमारे कितने ही साहित्यकार अभी इसे समझते नहीं है कि फासिस्तवाद दुनिया की हरेक जाति की संस्कृति और नव निर्माण का कितना महान शत्रु है ।"[2] समाज की उन्नति को बाधा डालनेवाली फासिस्ट शक्तियों का राहुल खुल्लमखुल्ला विरोध करते थे ।

राहुल की साहित्य दृष्टि व्यापक एवं मानवीय थी । उन्होंने कहा – "साहित्य में संकीर्ण धार्मिक या राजनीतिक सांप्रदायवाद नहीं आने देना चाहिए । ऐसी संकीर्णता अपना प्रभाव बहुत दिनों तक रख भी नहीं सकती ।"[3] राहुल का उपर्युक्त मत व्यक्त करता है कि धार्मिक रूढ़ियाँ एवं सांप्रदायवाद साहित्य में बाधा डालनेवाले तत्व हैं ।

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "साहित्य निबन्धावली" – पृ 127

2. राहुल सांकृत्यायन – "हंस" – 1944 अंक 45

समय से साक्षात्कार हर साहित्यकार के लिए अपेक्षित गुण है, जो राहुलजी में था । उनका वक्तव्य है – "सारे परिचित चेहरे यद्यपि अधिकतर सदा के लिए विलुप्त हो चुके हैं, तथापि उनकी जगह मैंने बहुत से तरुण चेहरे देखे और उनमें से कितनों से परिचय प्राप्त किया । इन नव परिचित चेहरों का साक्षात् होने से जो आनन्द हुआ, उसी ने इस बात की सत्यता को समझा दिया कि नयों के आने के लिए पुरानों का स्थान खाली करना जरूरी है ।"[1] सत्य है कि सभी साहित्यकारों को, नयों को देखने पर ऐसा आनन्द होना चाहिए । नयों को अवसर देना है । राहुल लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य के समकक्ष मानते थे और उसके अध्ययन पर बल देते थे ।[2]

राहुल के भाषा विषयक विचार अत्यंत उदार थे । वे हिन्दी को राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा बनाने के आग्रही थे । भाषा के प्रश्न पर उन्हें अपने प्रिय कम्यूनिस्ट पार्टी से कुछ काल के लिए अलग रहना पड़ा । राहुल ने कई बार धर्म बदला, भोजन बदला, वस्त्र बदला, विचार बदला, मगर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनका प्रेम, उनका विश्वास और उनकी आस्था नहीं बदली । उन्होंने प्रादेशिक भाषाओं एवं हिन्दी के लिए देवनागरी लिपि का समर्थन किया । वे उर्दू भाषा के विरोधी नहीं, पर अरबी लिपि के बदले देवनागरी लिपि के आग्रही थे । उनके भाषा विषयक दृष्टिकोण में उनका देशप्रेम प्रकट है । राहुल साहित्य को सामाजिक बदलाव के साथ जोड़कर देखते थे । उनका साहित्य एक वर्गहीन, शोषणहीन समाज के निर्माण की ओर इशारा करता है । वे एक कलावादी की तरह साहित्य सृजन में विश्वास नहीं करते, मार्क्सवादी की तरह समाज के परिवर्तन के लिए साहित्य सृजन करते थे।

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "मेरी जीवन यात्रा" – भाग – एक – पृ 263
2. राहुल साकृत्यायन – "राहुल निबन्धावली" – पृ 69

राहुल सांकृत्यायन की साहित्यिक उपलब्धियों पर विचार करें तो उनकी साहित्यिक दृष्टि व्यापक, उदार एवं प्रभावशाली थी । यात्रा साहित्य उनकी दूसरी उपलब्धि है । उनकी इतिहास दृष्टि भी एक अलग विशेषता रखनेवाली है । उन्होंने न पुरानी बात को पूर्ण रूप से छोड़ा, न नए को । अर्थात् राहुलजी मनुष्य के विकास और मनुष्यता की पहचान के अंतर्दर्शी थे । उन्होंने अतीत को वर्तमान का स्वर दिया, अतीत को वर्तमान के ढाँचे में ढाला, भविष्य की कल्पना को भी समाविष्ट किया। यह उनकी एक अन्य उपलब्धी है । राहुलजी, मानवीय चिंतन में जो कुछ भी प्रौढ़ हैं, संतुलित हैं, मनोहारी हैं, बोधगम्य हैं, उनके व्यापक फलक को सर्जन कर्म से बाँध दिया। वे नीरक्षीर विवेकी थे, अर्थात् वे अच्छी बातों को स्वीकार करते थे, और बुरी को छोड़ देते थे । सत्य की खोज उनके जीवन की मुख्य प्रेरणा थी। लंबी यात्राओं के कारण उनकी मान्यताएँ एवं विचार बदलते रहे। जबकि अन्य साहित्यकार किसी एक ही विचार दर्शन को अपने जीवन का मूल्य बनाते थे । अन्य साहित्यकारों ने लिखने एवं पढ़ने योग्य बातें लिखीं, जबकि राहुल ने करने योग्य। कटु होने पर भी वे सत्य को स्पष्ट रूप से कह डालते थे। राहुल की यह वैज्ञानिक दृष्टि ही उनकी बड़ी उपलब्धि है। राहुल समझौतावादी नहीं । वे एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर अपनी बात का विवेचन करते थे । उनके पूरे साहित्य को परखने से मालूम होता है कि वे अपने विचारों में निरन्तर आगे बढ़ते रहे थे । राहुल की हिन्दी के लिए बड़ी देन यह है कि उन्होंने अपने विचारों को जन साधारण तक पहुँचाने कि लिए सरल प्रवाहमयी भाषा अपनाई है ।

यायावरी वृत्ति

राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व की सबसे उभरती हुई विशेषता उनकी यायावरी वृत्ति थी । वे सोद्देश्य से जीवन भर चलते रहे । यात्राओं ने ही उनको लेखक बनाया ।

घुमक्कडी धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होने का एक कारण बचपन में नाना के मुँह से सुनी यात्रासंबन्धी कहानियाँ हैं । राहुल ने अपनी पाठयपुस्तक में नवाजिन्दा बाजिन्दा की कहानी 'खुदराई का नतीज़ा' पढ़ी । इसमें एक शेर था – 'सैर कर दुनिया की गाफिल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ, जिन्दगी अगर कुछ है तो नौजवानी फिर कहाँ ।' इस शेर ने भी राहुल के मन में यात्रा – प्रेम जगाया । उनके मन में घुमक्कड़ी का भूत जन्म लेने का मुख्य कारण उनका शैशव विवाह था । इस घटना से उदासीन होकर, घर में कोई और आकर्षण न देखकर उन्होंने घर से भागने का निश्चय किया । बाबा परमहंस के संपर्क से भी घुमक्कड़ी के प्रति उनके मन में आस्था बढ़ गई ।

राहुल की पहली उड़ान सन् 1907ई. में कलकत्ता तक थी । उनकी नियमित यात्राओं का आरंभ सन् 1910ई. की हिमालय यात्रा से होता है । सन् 1910ई. से सन् 1921 ई. तक उन्होंने भारत के विभिन्न नगरों की यात्रा की । उन्होंने काशी, परसा, तिरुमिशी, तिरुपति, कांचीपुर, बंगलौर, अयोध्या, आगरा, कुर्ग आदि स्थानों का भ्रमण किया । सन् 1926ई. में वे फिर हिमालय गए । इस यात्रा में बुशहर, सुम्नम्, कनम् स्पिति आदि पर्वतीय स्थानों का निरीक्षण उन्होंने किया ।

सन् 1923ई. से उनकी विदेशी यात्राओं का आरंभ होता है । सन् 1923ई. में वे नेपाल गए । बौद्ध धर्म से प्रेरित होकर वे सन् 1927ई. में लंका गए । सन् 1930ई. को उन्होंने दूसरी लंका यात्रा की । बौद्ध धर्म-ग्रंथों की खोज के लिए उन्होंने तिब्बत की चार यात्रा की । पाश्चात्य सभ्यता से अवगत होने के लिए उन्होंने सन् 1932ई. में यूरोप की यात्रा की । इस यात्रा में फ्रांस, जर्मनी तथा इंगलैंड गए । बौद्ध धर्म एवं संस्कृत भाषा के पाश्चात्य विद्वानों से परिचय इस यात्रा से हुआ । अन्य उल्लेखनीय यात्राएँ रूस यात्राएँ थीं । इस प्रकार सन् 1907ई. से सन् 1963ई. तक वे निरन्तर घूमते रहे । प्रथम श्रेणी के घुमक्कड के लक्षण, जिनका विवरण उन्होंने

"घुमक्कडशास्त्र" में दिया है, वे सभी राहुल में थे । घुमक्कड़ राहुल के संबन्ध में श्री शिवचन्द्रशर्मा का कथन यहाँ पूर्णरूपेण चरितार्थ हो जाता है – "यायावर अनेक बन सकते हैं, किन्तु उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे यायावरी वृत्ति अपनाने में तादात्म्य स्थापित कर सकें ----- राहुलजी जहाँ होते हैं बिलकुल घरैया होकर होते हैं।"[1] राहुल की यात्राओं के उद्देश्य नए स्थान देखने की जिज्ञासा, वहाँ का पुरातत्व, भूगोल, इतिहास, लोगों का सामाजिक जीवन, संस्कृति, साहित्य, कला, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि हैं । घुमक्कड़ी, राहुल के लिए काव्यरस अथवा ब्रह्मानन्द थी । इस रस की प्राप्ति के लिए वे तरसते थे । मलयालम में भी एस.के. पोट्टक्काडु नामक एक यात्रा विवरण लेखक हैं, जिन्होंने भी स्वदेशी एवं विदेशी यात्राएँ करके यात्रा विवरण लिखा है । पर राहुलजी के समान जीता-जागता चित्रण उसमें नहीं। यही नहीं परिमाण में भी राहुलजी की रचनाएँ अधिक हैं । राहुलजी ने घुमक्कडी के सैद्धांतिक विवेचन संबन्धी ग्रंथ भी लिखा है ।

राजनीतिक व्यक्तित्व

राहुलजी का राजनीतिक व्यक्तित्व भी गत्यात्मक था । सन् 1921ई. से सन् 1927ई. तक वे सक्रिय राजनीति में भाग लेते रहे । गाँधीजी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन ने राहुल को राजनीति में खींच लिया । उस समय वे दक्षिण भारत के कुर्ग में थे। वहाँ से लौटते हुए वे घण्डवा की एक गोशाला में ठहरे । यहीं उनका प्रथम राजनितिक व्याख्यान संपन्न हुआ । दक्षिण से छपरा पहुँचकर राजनिति में प्रवेश की सूचना उन्होंने जिला क्रांग्रेस कमेटी को दी । कांग्रेस में प्रवेश पाकर उन्होंने अपना कार्य अपने चिरपरिचित गांव परसा से शुरू किया । एकमा में चर्खा

---

1. श्री शिवचन्द्र शर्मा – "आलोचना" – अक्तूबर 1967, पृ 137

खद्दर प्रचार एवं मादक द्रव्य निषेध के आन्दोनलों में उन्होंने भाग लिया, छपरा के बाढ़ पीड़ितों की सेवा की, स्वयंसेवक दल संगठित किया तथा शिक्षा का प्रचार भी किया । इसके परिणामस्वरुप उन्हें अँग्रेज़ सरकार का कैदी बनना पड़ा और छः मास (सन्. 1922ई. में) बक्सर जेल में काटना पड़ा । सन् 1922ई. के ही चुनाव में वे छपरा जिला कांग्रेस के मंत्री बने । इसी वर्ष कांग्रेस में मतभेद उत्पन्न हो गया और इसके दो दल बन गए – परिवर्तनवादी एवं अपरिवर्तनवादी । परिवर्तनवादी दल कांग्रेस के कार्यक्रम में परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन चाहता था । राहुल परिवर्तनवादी थे। कांग्रेस में मतभेद होने के कारण एक वर्ष बाद ही उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और बिहार चले गए। सन् 1923ई. में बिहार प्रान्तीय कांग्रेस की एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने भाषण दिया और चौरी-चौरा काण्ड में शहीद होनेवाले देशभक्तों को श्रद्धांजली अर्पित की। उनके इस भाषण के कारण उन्हें दो वर्ष का कारावास मिला । ये दो वर्ष हज़ारीबाग जेल में व्यतीत हुए । जेल से छूटने पर उन्होंने छपरा जिले का दौरा किया और मीरगंज के सांप्रदायिक दंगों में मुसलमानों की जीवनरक्षा की । जननेता के रूप में वे एक सफल राजनीतिक जुझारू नेता रहे। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी के नाते भी राष्ट्र को उनकी सेवाएँ याद रखनी थीं। कांग्रेस के कार्यक्रम में शिथिलता के कारण सन् 1927-30ई. तक वे राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग न ले सके ।

जब राहुल लंका में थे, तब "यंग इंडिया" में गाँधीजी के सत्याग्रह समाचारों को पढ़ने का अवसर मिला, तुरन्त ही वे भारत लौट आए । उस समय बिहार के देशभक्तों को गाँधीवाद से निराशा हो चुकी थी । वे समाजवाद के आधार पर जन जागृति चाहते थे । सन् 1932 ई. में बिहार सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई और राहुल इसके मंत्री बने । गाँधी-इर्विन समझौते के बाद सत्याग्रह साधारण स्थिति में आ गया । उस समय वे तीसरी बार लंका के लिए रवाना हो गए और वहां से यूरोप । इस यात्रा में उन्होंने इंगलैंड और अन्य यूरोपीय देशों के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया । इस

समय तक वे कम्यूनिस्ट विचारधारा से प्रभावित हो चुके थे । लंदन में उन्होंने स्तालिन, लेनिन, मार्क्स आदि के ग्रंथों का अध्ययन किया । सोवियत यात्रा ने उनकी साम्यवादी विचारधारा को अधिक दृढ बनाया । सन् 1938ई. में पुनः भारतीय राजनीति में उनका पदार्पण हुआ । अब वे पूर्णतः साम्यवादी बन गए । सन् 1938ई. में छपरा जिले में हुए किसान आन्दोलन में उन्होंने ज़मींदारों का विरोध किया, जिसके कारण जेल जाना पडा । सन् 1939ई. में बिहार कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई और राहुल इसके सदस्य बने । यद्यपि कुछ मतभेद के कारण वे पार्टी से अलग हुए, फिर भी वे विचारों से साम्यवादी ही रहे । अंत में फरवरी सन् 1955ई. को वे पुनः पार्टी के मेंबर बने । वे जीवन भर इस पार्टी के मेंबर के रूप में रहना चाहते थे । कांग्रेस की अपेक्षा मार्क्सवाद राहुल को प्रिय था । क्योंकि उनका लक्ष्य आर्थिक समता एवं धार्मिक स्वराज्य था । जवाहरलाल नेहरू और राहुल के स्वदेशी आन्दोलन और स्वराज्य की परिभाषा में बुनियादी फर्क था । नेहरु ने आज़ादी के बाद काले सेठों और बबुओं का स्वराज्य देश में कायम किया था । राहुल किसानों और मज़दूरों की पीड़ा को दूर करने के लिए स्वराज्य आन्दोलन की राजनीति में आए थे । राहुल सत्य के विरुद्ध था एकपक्षीय यदि पार्टी का कोई कार्य हुआ तो तुरंत उस पार्टी को छोड़ देते थे। पार्टी तो क्या, जिस सत्य के लिए वे लड़ रहे थे, उसके लिए गाँधीजी, जो कि सर्वाधिक पूजनीय हैं, उनकी भी उपेक्षा करने में वे हिचकाते नहीं । गाँधीजी की जीवन भर आलोचना करनेवाले राहुल ने बाद में उनको बुद्ध से भी महान कहा । राहुल के लिए कोई ज्ञान तब तक सत्य नहीं है, जब तक कि वह प्रयोग की कसौटी पर पक्का नहीं उतरता । वे राजनीतिक क्रांति के साथ सामाजिक क्रांति भी चाहते थे । उनके राजनीतिक व्यक्तित्व में देशप्रेम शामिल था ।

धार्मिक व्यक्तित्व

बालक केदारनाथ का जन्म वैष्णव पर परिवार में हुआ था । उनके नाना कट्टर वैष्णव नहीं थे । दस वर्ष की आयु में वे पिता के संपर्क में आए । पिता धार्मिक वृत्तिवाले थे । लेकिन वे पुरानी परंपराओं के अन्धानुयायी न थे । विचारों की यह स्वतंत्रता राहुल को भी मिली । राहुल के प्रारंभिक धर्म संबन्धी विचारों को प्रभावित करनेवाले व्यक्तियों में बाबा परमहंस प्रमुख थे । उनकी कुटिया में बाबा हरिहरणदासजी रहते थे, जिन्होंने राहुल को वेदान्त का उपदेश दिया । वे पन्द्रह-सोहल वर्ष की आयु में पक्के वेदान्ती बन गए । सन्यासी बनने की इच्छा में वे बदरीनाथ भाग निकले । परंतु शीघ्र ही विचारों में परिवर्तन हो गए । वे वेदान्ती से शिवभक्त बने । सन् 1911ई. में वे मंत्र साधना की व्यर्थता को समझा । सन् 1912ई. में परसामठ के महन्त लछमनदास के संपर्क में आए और पुनः वैष्णव बन गए । वे परसामठ के साधु तथा महन्त के उत्तराधिकारी बने । इससे भी उन्हें सन्तोष न मिला । सन् 1914ई. में वे आर्य समाज के संपर्क में आए । सन् 1915ई. में शिक्षा प्राप्ति के लिए आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा में उनकी भर्ती हुई । शिक्षा प्राप्ति के बाद कुछ कालतक वे आर्य समाज के प्रचारक के रूप में कार्य करते रहे । आर्य समाज में बुराई, पाखंडता एवं अंधविश्वास से भरा पुराणपंथी साधुमार्ग उन्हें रास नहीं आया।

राहुल के मन में कई वर्षों से बुद्ध के प्रति श्रद्धा थी । महात्मा बुद्ध की जीवनी के पठन तथा बौद्ध धर्म के तीर्थ-स्थानों के पर्यटन के बाद बौद्ध धर्म की ओर उनका आकर्षण हुआ । उस समय भी ईश्वर पर उनका विश्वास था । सन् 1926ई. की लंका यात्रा के बाद उनके मन में ईश्वर और अनीश्वर का अन्तर्द्वन्द्व मचने लगा । अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ईश्वर और बुद्ध साथ नहीं रह सकते और यह भी स्पष्ट मालूम होने लगा कि ईश्वर केवल काल्पनिक चीज़ हैं, बुद्ध यथार्थ वक्ता हैं । उन्होंने सन् 1930ई. में बौद्ध धर्म में प्रव्रज्या ली । बौद्ध धर्मी होने से पहले उनका नाम

रामउदारदास था फिर राहुल सांकृत्यायन पड़ा । बौद्ध धर्म के प्रकांड पंडित बनकर उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार किया एवं बौद्ध धर्म संबन्धी रचनाएँ प्रदान कीं । बोद्ध दर्शन ईश्वर को नहीं मानता एवं आत्मा के अस्तित्व से इनकार करता है । वह क्षणिकवादी है और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करता। बहुत हद तक वह तर्क पर आधारित दर्शन है । राहुल को इस दर्शन की उज्ज्वलता, उदारता और तर्क प्रणाली बहुत प्रिय थे। सन् 1935ई. में बौद्ध धर्म से उनका विश्वास उड़ने लगा । राहुल के ही शब्दों में – "बुद्ध का दर्शन घोर क्षणिकवादी है । किसी वस्तु को वह एक क्षण से अधिक ठहरनेवाली नहीं मानते, किन्तु इस दृष्टि को उन्होंने समाज की आर्थिक व्यवस्था पर लागू नहीं करना चाहा। संपत्तिशाली शासक पोषक समाज के साथ इस प्रकार शांति स्थापित कर लेने पर उनके जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिक का ऊपर के तबके में सम्मान बढ़ना लाजमी था। ----- राजा लोग उनकी आवभगत के लिए उतावले दिखाई पड़ते थे। उस वक्त का धन कुबेर व्यापारी वर्ग तो उससे भी ज़्यादा उनके सत्कार के लिए अपनी थैलियाँ खेले रहा था, जितने कि आज के भारतीय महासेठ गाँधी के लिए ।"[1] इससे यह स्पष्ट है कि राहुलजी बुद्ध की विचारधारा को छोड़कर क्यों बढे। कारण यह है कि मूलतः सामाजिक यानि शोषक परोपजीवी वर्गों के खिलाफ संघर्ष के और इनसे शोषितों पीडितों की मुक्ति के तरफदार हो गए । इसलिए वह मेहनतकश जनता के मुक्ति मार्ग और उसपर चलने के लिए मुक्ति के दर्शन की खोज कर रहे थे। द्वितिय रुस यात्रा से वे पूर्णतया नास्तिक बन गए और मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुयायी भी बने । जीवनपर्यन्त वे इसके दृढ़ विश्वासी रहे । फिर भी वे स्वयं अपने को बौद्ध दर्शन से पूर्ण रुप से मुक्त करने के पक्ष में नहीं थे ।

---

1. राहुल साकृत्यायन –"दर्शन – दिग्दर्शन" – पृ 511-512

इस प्रकार राहुल की धर्मदृष्टि भी गत्यात्मक थी । उन्होंने प्रत्येक धर्म को उपयोगिता के निकष पर रखकर परखा । अंत में उन्होंने अनुभव किया कि ये धर्म जीवन की समस्याओं को हल करने में असमर्थ हैं । वे धर्म के रुढिवादी पक्ष के विरोधी एवं वैज्ञानिक पक्ष के आग्रही थे । वे मानवता के अन्तर्गत कर्तव्यपालन को मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म मानते थे ।

कार्यक्षेत्र एवं सम्मान

राहुल विषय की गहराई में जाकर सोचनेवाले अनुपम पंडित थे । अन्तर्राष्ट्रीय युगपंडित राहुल सांकृत्यायन विदेशों में हिन्दी, प्राच्य, भारतीय वाङ्मय, तिब्बती, संस्कृत, भाषाविज्ञान आदि के अध्यापक रहे । श्रीलंका में वे 'भारत के पंडितजी' के नाम से जाने जाते थे । उनकी संस्कृत विद्वत्ता के कारण वाराणसी के संस्कृत पंडितों की 'श्रीकाशी पंडित सभा' ने सन् 1939ई. में उन्हें "महापंडित" की उपाधि प्रदान की। उन्होंने सम्मेलनों के सभापति पद का भी अलंकार किया, विशेषकर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (1947-बंबई) के । श्रीलंका के विद्यालंकार वरिवेण में संस्कृत अध्यापक के रूप में काम करते समय उन्होंने बौद्ध साहित्य का गंभीर अध्ययन किया एवं इनका हिन्दी में अनुवाद भी किया । इसके उपलक्ष्य में इसी विद्यालय से उन्हें "त्रिपिटकाचार्य" की उपाधि मिली थी । राहुल की अनुपम हिन्दी सेवा के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद ने "साहित्यवाचस्पति" स्थान प्रदान किया । उन्हें लंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय एवं भगलपुर विश्वविद्यालय दोनों से "साहित्य चक्रवर्ती" की उपाधि भी मिली । भारत सरकार ने उनकी असाधारण साहित्य सेवाओं के उपलक्ष्य में सन् 1961ई. को उन्हें "पद्मभूषण" की उपाधि से सम्मानित किया, जो मरणोपरान्त मिली थी । उनके "मध्य एशिया का इतिहास" नामक ग्रंथ पर उन्हें सन् 1958ई. का "साहित्य अकादमी पुरस्कार" भी मिला । इसके अलावा 'सरस्वती' पत्रिका

ने हीरकजयन्ती समारोह में मानपत्र देकर उन्हें सम्मानित किया । उनकी रचनाएँ तो उनके पांडित्य का सच्चा निदर्शन है । सरकारी काम-काज के लिए हिन्दी के प्रयोग की नींव रखने के लिए उन्होंने 'पारिभाषिक कोश' का निर्माण किया । उनके पांडित्य का एक अच्छा मसलन यह है कि छत्तीस भाषाओं पर इनका अधिकार था । कहा जाता है कि वे मलयालम भी जानते थे । भारतीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उनका योगदान अतुलनीय है ।

इतिहास दृष्टि एवं अनुसंधान वृत्ति

राहुल सांकृत्यायन के समस्त सृजन के मूल में उनकी ऐतिहासिक दृष्टि रहती थी । उन्होंने इतिहास का बोध प्रकृति से प्राप्त किया, पश्चिम से नहीं । उनकी इतिहास दृष्टि अपने समाज की इतिहास संबन्धी ज़रुरतों से विकसित हुई । इसलिए उनकी रचनाओं में अतीत और वर्तमान का द्वन्द्व दिखाई पड़ता है । वे वर्तमान के यथार्थ से प्रेम करते हुए अतीत को भूलना नहीं चाहते थे । उनकी इस मनोवृत्ति ने उन्हें इतिहासकार एवं पुरातत्वप्रेमी बना दिया । जब वे डी.ए.वी. कॉलिज, लाहौर में पढ़ते थे, वहाँ के पुस्तकालय में पुरातन वस्तुओं की वैज्ञानिक खोज से संबन्धित पुस्तकें देखा करते थे । वहीं से उन्हें इतिहास में रुचि हुई । उन्होंने इतिहास के क्षेत्र में साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि का विवेचन कर अन्य इतिहासकारों का भी मार्ग दर्शन किया। इसके अलावा मूल त्रिपिटकों एवं जातक कथाओं के आधार पर प्राक्-बुद्धकालीन भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत करने की योजना को कार्यान्वित किया । उन्होंने इतिहास का उचित मूल्य निर्णय करने के लिए अनेक यात्राएँ कीं। अपनी विकासात्मक एवं द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक दृष्टि से उन्होंने मानव इतिहास के व्यापक संदर्भों को ग्रहण किया । उन्होंने भारतीय चिन्तन को ही नहीं, विश्व चिन्तन को भी आपस में रखकर ऐतिहासिक संदर्भ में परखने का प्रयत्न किया । आपने राष्ट्रीय

चेतना के तत्वों की तलाश अतीत की मिथकीय कथाओ में की । इसे राहुल का अतीत के प्रति मोह कहना भूल होगी ।

'एशिया', 'अमेरिकन' आदि प्रसिद्ध अखबारों में राहुल के ऐतिहासिक अनुसंधानपूर्ण लेख छपे । इससे उन्हें सिलवां लेवी, आचार्य श्चेरवात्स्की जैसे विदेशी संस्कृत विद्वानों के संपर्क में आने का अवसर मिला । उन्होंने अनेक ऐतिहासिक स्थलों का पुरातात्विक दृष्टि से अध्ययन किया । इसके अलावा अनेक कठिनाइयों का सामना करके उन्होंने तिब्बत से, भारतीय साहित्य से विलुप्त, महत्वपूर्ण ग्रंथों का पुनरुद्धार किया । वहाँ से अनेक साहित्यिक एवं ऐतिहासिक चित्रों और मानचित्रों को भी उन्होंने प्राप्त किया । इनके द्वारा एकत्रित की गई सामाग्रियों में बौद्ध पोथियाँ, परम्परित बौद्ध पट चित्र (थंका), बौद्ध मूर्तियाँ, पूजोपासना के उपकरण, लामाओं एवं भिक्षु-भिक्षुणियों की पोशाक, कांस्य मूर्तियाँ, चित्रकारी करने की वस्तुएँ, चन्दन की लकडी पर उत्कीर्ण मन्दिर, तिब्बती दैनिक जीवन से संबन्धित वस्तुएँ, पांडुलिपियाँ, तापपौथियाँ आदि हैं। तिब्बती-बौद्ध संस्कृति के ये अवशेष आज पटना की बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना संग्रहालय तथा काशीप्रसाद जायसवाल शोध संस्थान में सुरक्षित हैं। इनमें बिहार रिसर्च सोसाइटी और जायसवाल शोध संस्थान ने बीस से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन किया है। शेष पोथियों पर शोधकार्य चल रहा है। राहुल द्वारा तिब्बत से भारत लाए गए विलुप्त भारतीय वाड्मय का विशेष महत्व है। क्योंकि ये सामग्री मध्यभारतीय आर्यभाषा और नव्य भारतीय आर्यभाषा को मिलानेवाली कड़ी की पुष्टि के और अधिक उदाहरणस्वरूप थी। उक्त सामग्री से यह प्रमाणित हुआ कि किस प्रकार परवर्ती अपभ्रंश से नव्य भारतीय आर्यभाषा हिन्दी विकसित हो रही थी। यह सामग्री तो बौद्ध धर्म एवं दर्शन के लिए बहुमूल्य ही थी । उन्होंने "हिन्दी काव्यधारा" पुस्तक में सिद्धों और नाथों की रचनाओं को खोजकर आदिकाल का आरंभ

आठवीं शताब्दी से पूर्व माना और उसका नामकरण "सिद्ध सामंतकाल" रखा । आपने भगलपुर से प्रकाशित "गंगा" पत्रिका के कई पुरातात्विक एवं अन्य अंको का संपादन भी किया । इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन की अनुसंधान वृत्ति गौरव की है ।

स्वतंत्र भावना

मानव स्वतंत्रता राहुल सांकृत्यायन के जीवन एवं साहित्य की मुख्य चेतना है। वे मानव एवं मानवता के स्वतंत्र विकास के आग्रही थे । चूँकि प्रत्यक्ष प्रमाण पर ही उनका विश्वास था, इसलिए वे मार्क्सवाद और बौद्धदर्शन पर विश्वास रखते थे । वे धर्म, ईश्वर, रुढ़ियाँ, पूँजीवाद, परलोक, पुनर्जन्म, परंपरा, राजा, ज़मींदार, जातिपांति आदि को मानव स्वतंत्रता का बाधक समझते थे । वे मानव की आर्थिक स्वतंत्रता पर विशेष बल देते थे । उनके साहित्य में नारी स्वतंत्रता एवं कलाकार की स्वतंत्रता के लिए आवाज बुलन्द हो उठी है । स्वतंत्र मानवता का बहुमुखी विकास उनका लक्ष्य था। राहुलजी की गतिशीलता उनकी स्वतंत्र भावना का सूचक है । राहुल जैसा बहुआयामी एवं गतिशील व्यक्ति कम ही है। उन्होंने अपने समाज, देश और जीवन के लिए भी जब जैसा उचित समझा, तब वैसा ही संकोचरहित भाव से किया। राहुल के जीवन, उनकी विचारधारा, उनके साहित्य, उनके शोधकर्म, उनकी सामाजिक-राजनीतिक गतिविधि- इन सबका मूलमंत्र यह गतिशीलता थी। जीवन और समाज के लिए 'आवश्यक' का बोध दृढ़ हो जाने पर वे किसी के भी प्रति बेपरवाह हो कर्म शील हो जाते थे। उनकी शादियाँ ही इसका समलन है। इसी बोध की दृढता के कारण ही वे साहित्य क्षेत्र से हटकर व्यावहारिक राजनीति में आए।

दार्शनिक चिन्तन

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के चिन्तन और सृजन पर एक ओर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव तथा दूसरी ओर भारतीय एवं प्राचीन भौतिकवादी दर्शनों का प्रभाव पड़ा है । पाश्चात्य दर्शनों में मार्क्सवाद, तर्कीय प्रत्यक्षवाद, बुद्धिवाद, चार्लस डारविन का विकासवाद आदि का प्रभाव है । भारतीय दर्शनों में चार्वाक् एवं बौद्ध दर्शन का प्रभाव पड़ा है ।

राहुलजी ने मार्क्सवाद के सभी तत्वों को अपनाया । उन्होंने बौद्ध धर्म को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखा । उन्होंने बौद्ध दर्शन के सकारात्मक पक्ष जैसे जाति प्रथा का विरोध, मानवमात्र में समानता, करुणा एवं व्यष्टि के उत्थान को स्वीकारा । बौद्धों का अनात्मवाद राहुल को साम्यवाद के निकट लगा । पर बौद्धों के पुनर्जन्म की व्याख्या को वैज्ञानिक एवं मानवीय तर्क संगत आधार पर पुत्र पौत्र के रुप में स्वीकारा। इस तरह उन्होंने बौद्धों के निर्वाण की अवधारणा पर आपत्ति प्रकट की ।

यद्यपि राहुल, चार्वाकों के, काम को पुरुषार्थ मानना, इसी लोक में विश्वास, धर्म-ईश्वर का विरोध, भौतिकता पर विश्वास आदि से सहमत थे, तो भी उनके आभिजात पुरुष द्वारा गरीब नारियों का शोषण, ऋण लेकर भी सुखी जीवन बिताना जैसे तत्वों के प्रति उन्होंने घृणा प्रकट की । चार्वाक् दर्शन में राजा को सर्वोपरि स्थान मिला था । लेकिन राहुल राजा के विरोधी थे। प्लेटो के बुद्धिवाद (Rationalism) का प्रभाव भी राहुल पर पड़ा था । यह बुद्धिवाद संसार के प्रवाह को ही एकमात्र नित्य मानकर चलता है । अतः क्षण क्षण में नियमों में भी परिवर्तन होता रहता है । फ्रांस के अगस्ट कैंट ने अपने तर्कीय प्रत्यक्षवाद सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए समस्त मानव-इतिहास को तीन समयों में बाँटा है – पौराणिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक । वैसे

ही समाज में तीन अवस्थाएँ हैं – उद्योगावस्था, विवादावस्था, युद्धावस्था (कृत, द्वापर, कलियुग)। कैंट का मुख्य उद्देश्य समाज सुधार था । मनुष्यता को इन्होंने उन्नत समाज का आदर्श माना है ।

प्रगतिशीलता

राहुल सांकृत्यायन ने प्रगतिशीलता के नाम पर परंपरा की पूर्ण उपेक्षा नहीं की। उनकी प्रगतिशीलता केवल जनवादी मुहावरों, जनजीवन के आर्थिक यथार्थ तथा समस्याओं तक ही सीमित नहीं, बल्कि वे अपने युग के जीवन और सभ्यता के संपूर्ण समीक्षक रचनाकार थे । वे अतीत-वर्तमान से असंतुष्ट होकर भी भविष्य के प्रति आशावादी थे । उनकी राय में प्रगतिशील साहित्य जनता की तरफदारी करनेवाला साहित्य है, इसलिए वह उसकी जातीय-विरासत, उसकी साहित्यिक परंपराओं की रक्षा के लिए भी लड़ता है । साम्राज्यवाद न सिर्फ जनता की स्वाधीनता का अपहरण करता है, उसके जनवादी अधिकारों को कुचलता है, बल्कि उसकी जातीय संस्कृति, उसके राष्ट्रीय अभियान उसके पूर्व पुरुषों के अर्जित ज्ञान को भी झुठलाता और दबाता है । राहुल ने कहा है कि प्रगतिशील साहित्य जनता को लक्ष्य करके लिखनेवाला साहित्य है, जो साम्राज्यवाद का विरोधी है ।

राहुल स्त्री पुरुष संबन्ध के मुक्त व्यवहार के चित्रण के पक्षधर थे । क्योंकि यह मुक्ति मनुष्य की संपूर्ण विकास प्रक्रिया का एक पक्ष है । नारी के प्रति उनकी भावना पर भी साम्यवादी दर्शन का प्रभाव है । नारी के प्रति उनके मन में संकीर्ण रूढ़िवादी विचार नहीं । नारी केवल भोगवस्तु नहीं, समाज और राष्ट्र में उसका समान अधिकार है । वे भारतीय नारी की दयनीय अवस्था का चित्र खींचने के बाद उनका उद्धार चाहते थे । उनकी राय में जब तक नारी अपने पैरों पर खड़ी नहीं होती, तब तक वह

रूपजीवा (वेश्या) ही रह जाएगी । यद्यपि वे नारी जागरण के समर्थक थे, तो भी नारी की उच्छृंखलता पसन्द नहीं करते थे । वे नारी के उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास रखते थे । इसके सिवा उन्होंने धर्म की प्रगतिशील भूमिका को नकारा एवं सांप्रदायिकता को सामंतों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति बतलाया ।

भारतीय नवजागरण और राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन का जीवनकाल भारत की आज़ादी की लड़ाई के निर्णायक दौर का काल था, जब भारतीय नवजागरण की प्रक्रिया पूरे वेग के साथ जारी थी । भारतीय नवजागरण में जो स्थान स्वामी विवेकानन्द का था, वही स्थान राहुल का भी था । राहुल राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष, वामपंथी आन्दोलन एवं आधुनिक वैज्ञानिक विकास में हिस्सा लेते हुए नवजागरण की प्रमुख चेतनाओं से जूझते रहे । पिछड़े भारतीय समाज में अधूरे नवजागरण से वे चिन्तित थे । उन्होंने बौद्ध भिक्षु बनकर धार्मिक पाखंडता का विरोध किया । वे जानते थे कि धर्म, सांप्रदायवाद को पनपने में सहायता देगा । किसानों के उद्धार के लिए वे किसान सभा के नेता बने । स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की स्थिति अत्यंत दयनीय थी । राहुल ने युग की आवश्यकता को समझकर परंपरा में डूबे हुए प्राचीन इतिहास और दर्शन की खोज की । सर्वहारा लोगों एवं लिच्छवि गणतंत्र का उद्धार यहाँ उल्लेखनीय हैं । उनके द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण ने परिवर्तन के साथ निरन्तरता के बिखरे सूत्रों की पुनर्रचना की । जब साम्यवादी विचारधारा, भारत के श्रमजीवियों के मन में स्थान प्राप्त कर चुकी थी, उसी युग में राहुल जीवित थे । तब नवजागरण और साम्यवादी आन्दोलन के बीच गहरा संबन्ध पड़ा । राहुल जैसे सृजनात्मक साम्यवादी का नवजागरण से यह संबन्ध उनके कृति-व्यक्तित्व को अधिक लोकोन्मुख एवं अन्वेषणशील बनाता है ।

सन् 1857ई. के स्वतंत्रता संग्राम से शुरु हुए हिन्दी नवजागरण के दौर में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्रशुक्ल, प्रेमचन्द आदि काम कर रहे थे, राहुल अगली कड़ी थे । अंग्रेज़ी शासनकाल में भारत की जो बुरी हालत थी, उसी प्रकार स्वतंत्रता के बाद भी तत्कालीन समाज में जातिभेद, भाषाभेद एवं धार्मिक भेदभाव थे । इसे महसूसकर हिन्दी साहित्यकार इसके विरोध के लिए आगे आए । साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में ऐसा विरोध भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक की रचनाओं में देखा जा सकता है । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित "सरस्वती" के माध्यम से हिन्दी नवजागरण आन्दोलन सशक्त बना । इसके द्वारा राहुल की रचनाएँ प्रकाश में आईं । राहुलजी ने अपनी रचनाओं द्वारा धार्मिक – सामाजिक रूढियों का विरोध, बुद्धिवाद एवं वैज्ञानिक विचार पद्धति का समर्थन, सामन्तवाद एवं उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष, राष्ट्रीय भावना का प्रचार, अंग्रेजी के बदले हिन्दी का प्रयोग आदि पर बल दिया, जो हिन्दी नवजागरण की प्रमुख चेतनाएँ थीं । राहुल की दृष्टि में हिन्दी और उर्दू में कोई अन्तर न था । उर्दू भाषा और कवियों का विस्तार से अध्ययन के लिए उन्होंने "दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा" की रचना की। मुसलमान शासक अकबर को लेकर "अकबर" पुस्तक की रचना, मुसलमानों के धर्मग्रंथ "कुरान" का "कुरानसार" नाम से हिन्दी अनुवाद, ताजिक भाषा (फारसी) के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार सदरुद्दीन ऐनी के उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद आदि राहुल के उर्दू प्रेम को सूचित करते हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में भी जातीय समस्याओं को उठाया है । आपने धर्म-निरपेक्ष तथा धर्म विरोधी विचारों द्वारा समाज में सांप्रदायिक भेदभाव कायम करने के उद्देश्य से अनेक रचनाएँ की हैं । वे भाषा, धर्म और जाति के बारे में जनवादी रुख अपनाते थे । जन संस्कृति को प्रतिष्ठित करने के लिए उनका अथक संघर्ष हिन्दी नवजागरण का केन्द्रबिन्दु है ।

राहुल सांकृत्यायन आर्य समाज के प्रभाव में आने पर आर्य समाज के प्रचारक बन गए थे, बौद्ध बन जाने पर बौद्ध धर्म प्रचारक बने और बौद्ध धर्म संबन्धी ग्रंथों का संपादन, अनुवाद और लेखन भी किया । मार्क्सवादी बनने पर उन्होंने मानव सभ्यता के विकास के इतिहास को मार्क्सवादी तत्वों के आधार पर पुनर्रचना के लिए इतिहास, समाजशास्त्र एवं मार्क्सवादी महापुरूषों की जीवनियाँ तक लिखीं । इस प्रकार नवजागरण काल में राहुल सांकृत्यायन का योगदान सहत्वपूर्ण ही है ।

राहुल सांकृत्यायन और बिहार का किसान आन्दोलन

बिहार के किसान आन्दोलन में राहुल ने केवल सर्जनात्मक सहयोग ही नहीं, बल्कि सक्रियात्मक सहयोग दिया । राहुल जहाँ कहीं बिहार गए, वहाँ जमींदारी प्रथा के खिलाफ़ मजदूरों और किसानों को संबोधित करते थे । बिहार के किसान आन्दोलन से संबन्धित अनेक निबन्ध उन्होंने लिखे जैसे 'ज़मींदारी नहीं चाहिए', 'किसानो सावधान', 'खेतिहर मजदूर' आदि । इनमें सामन्ती व्यवस्था के विरोध के लिए किसानों को आह्वान है । राहुल बिहार के किसानों को भारतीय किसानों का पथ-प्रदर्शक मानते थे । सबसे पहले राहुल ने किसानों एवं मज़दूरों की राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना को विकसित करने के लिए उनके बीच क्रांतिकारी विचार पहुँचाए । उन्होंने "दिमागी गुलामी", "साम्यवाद ही क्यों", "भागो नहीं दुनिया को बदलों", "तुम्हारी क्षय" जैसी रचनाओं में देश एवं समाज की व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए किसान मज़दूर वर्ग की एकता पर ज़ोर दिया है । रूस से लौटने के बाद राहुल वहाँ की व्यवस्था से काफी संतुष्ट थे । वे किसानों और मज़दूरों में एक मार्क्सवादी सोच पैदा करना चाहते थे ।

बिहार में किसान आन्दोलन, राहुल और किसान नेता सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में चला । सन् 1922ई. में राहुल कांग्रेस के मंत्री बने, लेकिन सन् 1939ई. तक आते आते उनका गाँधीवाद एवं कांग्रेस से मोहभंग हुआ । कांग्रेस कमेटियों से किसान सभाओं को कोई मदद नहीं मिली । बिहार किसान सभा का जन्म नवंबर 1939ई. में हुआ । राहुल इसके नेता बने । सन् 1940ई. में वे मोतिहारी में आयोजित किसान सम्मेलन के सभापति बने । वे अखिल भारतीय किसान सम्मेलन (पलाशा) के भी सभापति चुने गए । उन्होंने किसान आन्दोलन के नेता बनकर बिहार के छपरा, मुंगेर आदि जिलों के गाँवों में घूमकर किसानों और मज़दूरों पर होनेवाले जुल्म और शोषण के विरुद्ध लोगों को संगठित किया। राहुल को सहयोग देने वालों में नागार्जुन, कार्यानन्द शर्मा, यदुनन्दन शर्मा आदि थे । अमवारी किसान आन्दोलन ने आन्दोलन का एक नया मोड़ लिया । इसी संघर्ष में उनको ज़मींदार के आदमियों द्वारा लाठी का प्रहार सहना पड़ा और ढ़ाई वर्ष की जेल की सजा भुगतनी पड़ी । हज़ारीबाग जेल में रहकर उन्होंने अबाध रूप से लिखा । "वोल्गा से गंगा" कहानीसंकलन की रचना इस समय हुई थी । ज़मींदार के आदमी से प्राप्त लाठी के प्रहार से उनके सिर को क्षती पहुँची और इसी कारण उन्हें जीवन के अंतिम दो वर्ष अर्थात् सन् 1962ई और सन् 1963ई में स्मृतिभ्रंश का शिकार होना पड़ा । केरल में भी इसी प्रकार ऐ.के.जी नामक एक महान नेता थे, जिनके साथ भी यही हुआ था जो राहुल के मित्र थे । वे किसान मज़दूर आन्दोलन के नेता थे । राहुलजी के समान उनको भी पुलीसों की लाठी का प्रहार खाना पड़ा और अनेक वर्षों बाद वे भी स्मृतिभ्रंश के शिकार हुए। इसी वजह से उनकी मृत्यु भी हुई थी ।

इन्हीं दिनों श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के संपादकत्व में निकल रहे साप्ताहिक "जनता" के कई अंकों में अमवारी किसान संघर्ष की चर्चा ज़ोर की थी । "जनता" के एक अंक में राहुल का लेख 'अमवारी के पीड़ित किसान' नामक शीर्षक से प्रकाशित

है। इस प्रसंग में राहुल को 'पददलितों का लेनिन' भी कहा गया है । मई सन् 1939ई. के अंक में राहुल का 'अमवारी के किसानों की आर्थिक व्यवस्था' शीर्षक लेख छपा था, जिसमें किसानों की आर्थिक दयनीयता एवं उसके खिलाफ़ उनकी प्रतिक्रिया की ओर भी संकेत है । राहुल किसान आन्दोलन को भी राष्ट्र की मुख्य धारा से ज़ोड़ना चाहते थे । उनकी राय में राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ मिलकर ही किसान आन्दोलन व्यापक बन सकता है । बाद में आन्दोलन का स्वरूप देशव्यापी हो गया ।

प्रगतिवादी आन्दोलन और राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन से संगठनिक स्तर पर बहुत गहराई से नहीं जुड़े थे । इसका कारण यह है कि प्रगतिवादी आन्दोलन के उत्कर्ष काल में वे भारत के बाहर थे । रचनात्मक क्षेत्र में सक्रिय होने के कारण उन्हें एक जगह बैठकर काम करना था । उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा आन्दोलन के प्रमुख मुद्दों का प्रचार-प्रसार किया । उन्होंने किसान सभा जैसे संगठनों के नेता बनकर साम्राज्यवाद का विरोध किया । उन्होंने "जीने के लिए" उपन्यास लिखकर किसान संघर्ष में जन चेतना के परिमार्जित रूप को अंकित किया एवं प्राचीन भारत में लिच्छवि और यौधेय गणतंत्रों को केन्द्र बनाकर सामंती उत्पीड़न का विरोध करके जनतंत्र की स्थापना करनेवाली, जनता की संघर्ष चेतना और प्रतिशोध-क्षमता का चित्रण किया । राहुल ने धर्म, संस्कृति और इतिहास से लेकर समकालीन राजनीतिक परिदृश्य तक अपने कार्यक्षेत्र के रूप में चुन लिया ।

'प्रथम प्रगतिशील लेखक सम्मेलन' के अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने सौन्दर्य की रूढ कसौटी बदलकर एक नई कसौटी के निर्माण पर बल दिया । इसके लिए जिस प्रकार के मनुष्य की कल्पना प्रेमचन्द ने की थी, इस आन्दोलन के पहले ही राहुल में थी । उन्होंने भारतीय संस्कृति की पौराणिक व्याख्या न कर

समाजशास्त्रीय व्याख्या की । मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के निर्माण में वे हिन्दी के पयोनीयर लेखक हैं । राहुल एक बड़े फलक पर अपनी वर्तमान समस्याओं और जनसंघर्ष की दृष्टि से इतिहास के उपयोग की ओर प्रवृत्त हुए । वे बौद्ध धर्म में गहरी आस्था रखकर विश्वशांति एवं मानवीय करुणा पर बल देकर मानव कल्याण की ओर प्रेरणा देते रहे, जो प्रगतिवादी आन्दोलन की मूल प्रतिज्ञा थी । इसके साथ ही इतिहास की पृष्ठभूमि में वे विश्वमैत्री के भाव को भी प्रोत्साहित करते रहे ।

प्रथम प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के घोषणापत्र का एक उद्देश्य यह था कि प्रगतिशील लेखकों और अनुवादकों को प्रोत्साहित करके, ऐसे साहित्य की रचना या अनुवाद को सामने लाना था, जो देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाने के साथ ही जनता में द्वन्द्वात्मक भौदिकवादी दृष्टिकोण के विकास में सहायक हो । राहुल तो पहले ही यह काम करते रहे थे । उन्होंने ताजिक लेखक सदरुद्दीन ऐनी की अनेक रचनाओं का अनुवाद करने के साथ ही प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष भी किया । "मार्क्सवाद और रामराज्य", "तुम्हारी क्षय", "दिमागी गुलामी", "साम्यवाद ही क्यों", "भागो नहीं दुनिया को बदलो" जैसी रचनाएँ उदाहरण हैं । उन्होंने स्वाधीनता संग्राम के जनसंघर्ष को तीव्र करने के लिए उससे संबन्धित अनेक नेताओं की जीवनियां भी लिखीं । इसके अलावा उन्होंने कार्ल-मार्क्स, लेनिन, स्तालिन, माओ-त्से-तुंग आदि नेताओं की जीवनियाँ लिखकर हिन्दी भाषी जनता के बीच कम्यूनिस्ट आन्दोलन का प्रचार किया।

सन् 1943ई. में प्रगतिशील लेखक संघ के बंबई अधिवेशन में लोकभाषा और जनप्रिय विधाओं के विकास पर बल दिया गया था । इसके अगले वर्ष ही राहुल ने "तीन नाटक" और "पाँच नाटक" नामक दो भोजपुरी नाटकों के संग्रह एवं "भागो नहीं दुनिया को बदलो" पुस्तक भी लिखे ।

सन् 1936ई. से सन् 1951ई. के बीच का समय प्रगतिशील लेखक संघ का उत्कर्ष काल है । राहुल काफी समय देश के बाहर थे । लेकिन सन् 1947ई. एवं सन् 1951ई. के बीच यहीं रहे । उस समय प्रगतिशीन लेखक संघ और सहयोगी संगठनों की गतिविधियों में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया । 19 और 20 दिसंबर सन् 1942ई. को कलकत्ता में बंगाल के फासीवाद विरोधी लेखकों – कलाकारों के सम्मेलन के उद्घाटन के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया था । लेकिन राहुल जा न सके । किसान सभा के लिए कार्य के दौरान दो वर्ष, देवली कैंप में व्यतीतकर सन् 1942ई. में वे छूटे । इसके बाद वे राजनीति में सक्रिय हो गए । 26,27 जनवरी सन् 1944ई. को इन्दौर में आयोजित मध्य भारत फासिस्ट विरोधी सम्मेलन के सभापति राहुल थे। इस सम्मेलन का लक्ष्य, सांस्कृतिक निधि की रक्षा और नव-निर्माण की आशा थी । अपने भाषण में उन्होंने फासीवाद का विरोध और प्रगतिवादी आन्दोलन के दौर में साहित्यकार की भूमिका के बारे में भी कहा ।

सिंतंबर सन् 1947ई. में इलाहाबाद में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का सम्मेलन हुआ । राहुल पिछले महीने ही सोवियत प्रवास से आए थे । सोवियत के अपने अनुभव से देश के नवनिर्माण में साहित्यकार की भूमिका को वे अच्छी तरह समझते थे । इस सम्मेलन में श्री सुमित्रानन्दन पंत, आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के साथ अध्यक्षमंडल में राहुल भी थे । कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रति सरकार की नीति दमन और उत्पीडन की थी । राष्ट्रीय सरकार के गठन की सूचना पाकर राहुल ने जवाहरलाल नेहरू को लेनिनग्राद से बधाई का तार भेजा था । पर उस समय राहुल, नेहरु और पटेल के कटु आलोचक बने । बी.टी. रणदिवे के कम्यूनिस्ट पार्टी के महासचिव बनने के बाद पार्टी के साथ ही लेखकों के दृष्टिकोण में अंतर आया । अनेक लोग सरकारी दमन के भय और सरकारी सुविधाओं के लोभ में संगठन के बाहर गए । राहुल ने जून सन् 1948ई. में "हंस" के दमनविरोधी अंक में नेहरु के नाम एक खुला पत्र

प्रकाशित किया । इसमें सत्ता-प्राप्ति के बाद उनके रवैये में आए परिवर्तन की आलोचना थी, जो इस प्रकार है – "पहले आप क्या थे और अब आप क्या हैं? सच, आपके शानदार समाजवादी अतीत से आपके वर्तमान की पटरी बैठाना हमारे लिए संभव नहीं – और अब जन संघर्षों के विरुद्ध काफी तेज़ी के साथ सरकारी दमन का इंजन छोड़ दिया गया है । हड़तालों को आपने एक तरह से गैर-कानूनी बना दिया है और उन लोगों को पकड़ पकड़कर जेलों में बंद कर दिया जाने लगा है, जो आपके तरीकों से भिन्न तरीके पसन्द करते हैं । बिना मुकदमा चलाए, अनिश्चित काल के लिए गिरफ्तार कर देना, आपके शासन के लिए मामूली बात हो गई है और आप अपने विरोधियों को इसका भी हक नहीं देते कि वे अदालत में जाकर न्याय-अन्याय का फैसला करा सकें ।"[1] इससे स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति बडे हो या छोटा, उसका विरोध करने के लिए राहुल संकोच नहीं करते थे ।

राहुल उनमें थे, जिन्होंने हिन्दी प्रदेश में साम्यवादी व्यवस्था का सपना सबसे पहले देखा । उस सपने को सत्य करने के लिए जो कुछ किया जा सकता था, उन्होंने किया । वे न सिर्फ जीवन पर्यन्त इस प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़े रहे, बल्कि अनेक विवादों और विरोधों के बीच भी इसके लक्ष्यों और सिद्धांतों के प्रचार के लिए संघर्ष करते रहे ।

व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति के प्रति अत्यंत मोह, प्रतिबद्धता, जनतत्परता, अन्वेषणात्मक प्रतिभा, क्रांतिकारिता, सत्य, न्याय एवं समानता के लिए संघर्ष, जिजीविषा आदि राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएँ थीं ।

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "हंस" – 1948 अंक 13

रचनाएँ

राहुल सांकृत्यायन के जीवनवृत्त की तरह रचनासंसार भी व्यापक और बहुआयामी है । भारतीय वाङ्मय को उनकी देन अनुपम है । उनकी लेखनी पैंतीस वर्षों तक निर्बाध गति से प्रवाहित होती रही । उन्होंने हमारे लिए एक सौ पचास से अधिक रचनाएँ भेंट कीं । रचनाओं के परिमाण एवं विविधता की दृष्टि से कदाचित् हिन्दी साहित्यकारों में इनका स्थान अग्रगण्य होगा ।[1] निश्चय ही कोई एक व्यक्ति इतने सारे विषयों पर समान अधिकार के साथ नहीं लिख सकता । पर उनकी अनेक कृतियाँ अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध हैं । उनकी रचनाएँ सर्जनात्मक (Literature of power) और ज्ञानात्मक (Literature of knowledge) दोनों कोटि में आनेवाली हैं ।[2]

सर्जनात्मक साहित्य में कलात्मकता, सौंदर्य-तत्व, कल्पना-विलास, भावना-परिष्कार आदि का महत्व अधिक है और तत्वज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र और अन्य ज्ञानमूलक साहित्य चेष्टाओं का बोध है । इसका संबल कल्पनानंद तथा रसानुभूति है।[3] पर ज्ञानात्मक साहित्य सिद्धांत प्रतिपादन या वस्तु परिगणन संबन्धी मानव की तुष्टि के लिए लिखी गई सामग्री है ।[4]

यद्यपि राहुल सांकृत्यायन की संपूर्ण रचनाओं में बौद्धिकता की अधिकता है, तो भी उनकी कृतियों को उपर्युक्त दोनों कोटियों में रखा जा सकता है ।

सर्जनात्मक साहित्य के अन्तर्गत राहुल के मौलिक उपन्यास, कहानियाँ एवं नाटक आते हैं । राहुल का कथा साहित्य भारतीय मनुष्य की सामाजिक, सांस्कृतिक,

---

1. बाबू गुलाबराय – "हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास" – पृ 243
2. आर.ए. स्कॉट जेम्स – "दि मेकिंग आफ लिटरेचर" – पृ 22
3. "हिन्दी साहित्यकोश भाग"1– पृ 846
4. क्षेमचन्द्र सुमन – "साहित्य विवेचन" – पृ 2

राजनीतिक एवं ऐतिहासिक स्मृति को एक नई शोषणमुक्त वैज्ञानिक सभ्यता की दिशा में ले जाता है । उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर इतिहास के अछूते भागों का पुनर्मूल्यांकन किया । 'जीने के लिए' सामाजिक उपन्यास में बीसवी शताब्दी के भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्था का यथार्थ चित्र मिलता है । "बाईसवीं सदी" उपन्यास 'हिन्दी की उटोपिया' नाम से प्रसिद्ध है । इसमें उन्होंने भावी साम्यवादी व्यवस्था का सपना देखा है । अपने भोजपुरी भाषा प्रेम को दिखाने कि लिए उन्होंने "तीन नाटक" एवं "पाँच नाटक" लिखे । ज्ञान साहित्य के अन्तर्गत राहुल की आत्मकथा, जीवनी यात्रा साहित्य, साहित्य, विज्ञान, समाज-विज्ञान, राजनीति, दर्शन धर्म, इतिहास, साम्यवाद, भाषा, व्याकरण, संपादन, अनुवाद संबन्धी रचनाएँ आती हैं।

हिन्दी साहित्य में जीवनी साहित्य का समुचित विकास आधुनिक काल में हुआ। राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथापरक रचनाएँ "मेरी जीवन यात्रा" पाँच भाग और "बचपन की स्मृतियाँ" हैं । उनकी आत्मकथा की विशेषता यह है कि इसमें स्वयं राहुल कम, दूसरे अधिक हैं । राहुल की परकथापरक रचनाओं में कुछ स्वतंत्र रूप से एक ही व्यक्ति की जीवनी है और अन्य अनेक व्यक्तियों की जीवनियों का संकलन भी है । "नए भारत के नए नेता", "मेरे असहयोग के साथी", "कार्ल माक्र्स", "लेनिन" आदि इसके उदाहरण हैं । हिन्दी के यात्रा साहित्य लिखनेवालों में राहुल अग्रणी हैं । उन्होंने अपने यात्राकालीन जीवन को पूर्ण रूप से इनमें लिपिबद्ध किया है। "मेरी तिब्बत यात्रा", "यात्रा के पन्ने" आदि ऐसी रचनाएँ हैं । राहुल ने अपने साहित्य संबन्धी विचारों को प्रकट करने के लिए "साहित्य निबन्धावली" और "राहुल – निबन्धावली" जैसे ग्रंथों की रचना की । "मध्य एशिया का इतिहास" उनकी गवेषणात्मक ऐतिहासिक प्रतिभा की परिचायिका कृति है । उस समय अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी भाषा में मध्य एशिया का कोई व्यवस्थित इतिहास नहीं लिखा गया था । उन्होंने सरहपाद को आदिकवि के रूप में प्रतिष्ठित कर "सरहपाद

दोहाकोश" लिखा । साम्यवाद से लोगों को अवगत कराने के लिए साम्यवाद संबन्धी ग्रंथों और साम्यवादी नेताओं की जीवनियाँ लिखीं । बौद्ध धर्म से लोगों को परिचित कराने के लिए बौद्ध दर्शन, बौद्ध धर्म एवं बौद्ध-संस्कृति पर उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे । उनकी दर्शन संबन्धी रचनाओं में "दर्शन-दिग्दर्शन" बहुत लोकप्रिय हुए, जिसमें राहुल ने संसार भर में प्रचालित प्रायः सभी प्रमुख दार्शनिक विचारधाराओं का इतिहास संक्षिप्त रूप में दिया है । तिब्बती भाषा को प्रोत्साहन देने के लिए इस भाषा में भी उन्होंने लिखा । हिन्दी काव्यधारा से अपभ्रंश काव्यधारा को जोड़ने का श्रेय राहुल का है । उन्होंने कौरवी बोली में "आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत" लिखा । "हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास – भाग 16" का संपादन राहुल ने किया । उनकी हिमालय संबन्धी रचनाओं में "दार्जीलिंग परिचय", "किन्नरदेश" और "गढ़वाल" प्रमुख हैं । उन्होंने आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ मिलकर "कम्यूनिस्ट मानिफेस्टो" का हिन्दी अनुवाद तैयार किया। इसके अलावा उन्होंने अनेक ग्रंथों का संपादन एवं अनुवाद भी किया है।

इस तरह राहुल सांकृत्यायन ने बहुत लिखा है, बहुत तरह का लिखा है । रंग - बिरंगी विविधता एवं सौंदर्य ही उनके रचनाकर्म की शक्ति है । आनेवाली पीढ़ियों के लिए यह विश्वास कर पाना कठिन होगा कि अकेले इस आदमी ने इतना काम किया, जो शायद दस लोग मिलकर भी नहीं कर सकते । सुविधानुसार उनकी रचनाओं की सूची परिशिष्ट में दी जाएगी ।

कहानियों पर व्यक्तित्व का प्रभाव

साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व का विसर्जन होता है । साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना सावाभाविक ही है । अपना जीवन और अनुभव ही लेखक को लिखने की प्रेरणा देते हैं ।

यह राहुल सांकृत्यायन की सार्थकता ही है कि उनकी रचनाएँ साहित्य के पन्नों तक ही सीमित न होकर ज़िन्दगी की मिसाल बन गई हैं । वस्तुतः उनकी ज़िन्दगी और रचनाएँ दो किस्म की नहीं । ये कहानियाँ उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण घटक है और इन कहानियों के अभाव में राहुल को पूरी तरह से समझ पाना कठिन है । उनकी आत्मकथा पढने के बाद कहानियाँ पढ़ें तो ये कहानियाँ न लगेंगी, सचमुच जीवनगाथा ही लगेगी ।

"वोल्गा से गंगा" के मूल में राहुल का इतिहास एवं पुरातत्व ज्ञान है । इसमें उनका दार्शनिक रूप उभर कर आया है । चूँकि राहुल मानवतावादी लेखक हैं, इसलिए मानव-समाज का विकास ही इसमें चित्रित है । प्रगतिशील लेखक होने के नाते मानव की प्रगतिशीलता का एक स्पष्ट चित्र उन्होंने खींचा है । साम्यवादी राहुल ने अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए इन कहानियों को माध्यम बनाया । इसमें उन्होंने अपने धर्म, राजनीति, पूँजीवाद, गणतंत्र, प्रजातंत्र, गांधीवाद, सांप्रदायिकता, सामाजिक समानता संबन्धी विचारों को स्पष्ट रुप से प्रकट किया है । उनका देशप्रेम भी इसमें स्पष्ट परिलक्षित हुआ है । राहुल को तैरना बहुत प्रिय था । इसलिए इसमें जलसंचरण की प्रतियोगिता का रोचक वर्णन हुआ है । आर्य लोगों के सम्मिलित रूप से संगीतालाप एवं नृत्य का चित्रण राहुल के संगीत आदि कलाओं के प्रति प्रेम को सूचित करता है । इसमें वर्णित शिकार प्रसंग, बाल्यकाल से सुने नाना के वर्णनों का उपयोग है । प्रकृति, पेड़-पौधे, ज़मीन, पहाड़, नदियाँ, मौसम आदि से राहुल का विशेष लगाव था । इस कारण कहानियों में विस्तार से इनका चित्रण हुआ है । देवदार वृक्ष और हिमालय से उनकी आत्मीयता देखने लायक है । 'सुदास' कहानी में सुदास अपनी बीती हुई ज़िन्दगी की याद इस प्रकार करते हैं – "सुदास को वह दिन याद आ रहे थे, जबकि वह नंगे और फटे कपड़ों के साथ अज्ञात देशों में घूमता था । उस वक्त

वह बहुत अधिक मुक्त था ।"[1] यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि सुदास स्वयं राहुल हो । बौद्ध भिक्षु राहुल ने गौतम बुद्ध के सिद्धांतों की झलक भी कहानियों में दी है । 'प्रभा' कहानी इसका स्पष्ट उदाहरण है । 'बन्दुलमल्ल' कहानी में भी बौद्ध धर्म का जिक्र है। अर्थाभाव में रहने पर भी राहुल अतिथि सत्कार में अत्यंत तत्पर थे । इसका प्रभाव कहानियों में भी देखा जा सकता है । इनके प्रायः सभी कथानायक घुमक्कड़ हैं, जो राहुल के घुमक्कडी व्यक्तित्व को सूचित करता है । राहुल प्रकृति की मर्यादा में रहकर ही मनुष्य के कर्तव्यों को मूल्यांकन की कसौटी पर देखने का प्रयास करते थे और इसका प्रभाव कहानियों में भी है । उदाहरण के लिए 'पुरुहूत' कहानी में ऐसा एक वक्तव्य है – "मनुष्य एक जगह बाँधकर रहने के लिए नहीं पैदा किया गया ।"[2] "वोल्गा से गंगा" की संपूर्ण कहानियाँ राहुल की स्पष्टवादिता का दस्तावेज है । राहुल भारतीय ही नहीं, विदेशी लोक संस्कृति के भी उपासक थे । इन कहानियों में लोकनृत्य, लोकगीत आदि का विशद चित्र पा सकते हैं ।

"कनैला की कथा" में चित्रित कनैला गाँव से राहुल का अटूट संबन्ध था । इसमें उन्होंने सुदूर इतिहास से ऐसे तत्वों की खोज की, जो उनके विचारों के वाहक थे । 'बड़ी रानी', 'देवपुत्र' जैसी कहानियों में उनके पुरातत्व ज्ञान की स्पष्ट मुद्रा मिलती है । कनैला के मज़दूरों की स्थिति से राहुल परिचित थे । इन कहानियों में उन्होंने अपनी साम्यवादी विचारधारा का दिग्दर्शन कराया है ।

"सतमी के बच्चे" की कहानियों के ज़रिए राहुल ने अपने आसपास के परिवेश, घटनाओं और चिरत्रों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है । 'पुजारी' कहानी का पुजारी, 'पाठकजी' का पाठक क्रमशः राहुल के पिता और नाना है । 'डीहबाबा' के जीता भर

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 103
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 53

उनके पितृग्राम कनैला के निवासी थे । सिर्फ 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' को छोडकर 'राजबली', 'रामगोपाल', 'घुरबिन' आदि इनके अनुभूत पात्र हैं ।

'पुजारी' कहानी का यथार्थ स्वयं राहुल के जीवन का वास्तविक चित्र है, जबकि अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने सन्यासी बनकर बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था । 'रामगोपाल' कहानी उनकी राष्ट्रीय भावना को सूचित करती है । 'सतमी के बच्चे' में चित्रित जो संघर्ष है, वह राहुल का भोगा हुआ है । उनके पिता गोवर्धन पांडे कनैला के एक गरीब किसान थे, जो धनाभाव के कारण परिवार-पालन में असमर्थ थे । मां कुलवन्ती की मृत्यु के बाद उनका बचपन ननिहाल में बीता । उनके बिलकुल बचपन में सन् 1897ई. का भयानक अकाल था, जिसमें भारत के लाखों लोग तडपकर मर गए । गरीबी और भूख की वेदना के अनुभव ने उनमें अपने से नीचे तबके के लोगों के प्रति करूणा जगाई और उनकी सेवा के लिए प्रेरित किया। उनचालीस वर्ष बाद राहुल पन्दहा गए । इसका जिक्र राहुल ने जीवनयात्रा में किया है, यथा – "सतमी के घर का भी कोई चिह्न नहीं है । सतमी के चार बच्चे किस तरह मलेरिया में गल गलकर दरिद्रता की भेंट चढ़े, यह मैं अपनी एक कहानी में लिख चुका हूँ । सतमी के सबसे छोटा लड़का सत्तू अब भी कहीं जिन्दा है ।"[1] लेकिन यहाँ एक असंगति भी है कि कहानी में राहुल ने सत्तू की मृत्यु की बात बताई है। सतमी का लड़का मद्धू राहुल का साथी था। दलसिंगार 'रानी की सराय' के सहपाठी थे । सतमी और उसकी लड़की सुखिया राहुल की नानी से कहानियाँ सुना करती थीं । राहुल को शिशुविवाह का शिकार होना पड़ा । इसलिए कहानियों में उसके जबरदस्त विरोध का भाव प्रकट है । कहानियों में ब्राह्मण धर्म पर उन्होंने प्रहार इसलिए किया है कि ब्राह्मण पाखंडों को निकट से देखने का अवसर उनको मिला था ।

---

1. "मेरी जीवनयात्रा" – भाग – 1– एक पृ 359

इसी प्रकार मंसूरी नगरी की, स्वतंत्रता पूर्व और बाद की स्थितियों को अच्छी तरह समझने का अवसर राहुल को मिला था, जिससे "बहुरंगी मधुपुरी" में इनका सजीव चित्रण मिलता है । "बहुरंगी मधुपुरी" लिखने की प्रेरणा एवं मसूरी की विशेषताओं का जिक्र "मेरी जीवनयात्रा" में मिलता है ।[1] 'कमलसिंह' नामक कहानी वास्तव में राहुल के मित्र कल्याणसिंह की जीवनी है । 'पेड़बाबा' में वर्णित पेडबाबा का विशद चित्रण आत्मकथा में भी है । इन कहानियों में स्वतंत्र भावना, स्वच्छन्द भोगविलास आदि का समर्थन है, जो उनके व्यक्तिगत जीवन में भी शामिल थे । साम्यवादी राहुल ने इन कहानियों में अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए उच्चवर्ग के खोखले व्यक्तित्व का पर्दाफाश किया है और निम्नवर्ग की विवशताओं एवं विद्रोह को खोलकर दिखाया भी है। राहुल स्वयं औपचारिक शिक्षा से वंचित थे, कहानियों में भी उन्होंने इसका कठोर विरोध किया है । इस प्रकार राहुल की कहानियों में उनकी स्पष्टवादिता, मानवता में आस्था, दलित वर्गों से करुणा, संपत्ति के प्रति निर्मोह, रुढ़िवादिता का विरोध, बुद्धिवाद, सीखने की प्रवृत्ति आदि विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। सचमुच ये कहानियाँ उनके व्यक्तित्व रुपी दरवाज़े को खोलती हैं ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राहुल सांकृत्यायन ने अपनी सामाजिक एवं ऐतिहासिक कहानियों द्वारा हिन्दी कहानी साहित्य को एक नया मोड़ दिया । उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुमुखी था। वे भारतीय वाङ्मय के वरद पुत्र थे । राहुल का व्यक्ति-वैचित्र्य, कृतित्व में सर्वत्र परिलक्षित होता है, विशेषकर कहानियों में । राहुलजी के समस्त साहित्य का, विशेषकर उनकी कहानियों का विश्लेषण करते समय यह सत्य विदित होता है कि वे केवल अतीतजीवी ही नहीं, बल्कि भविष्योन्मुख यथार्थ वक्ता भी थे । यद्यपि उनकी कहानियां का उचित मूल्यांकन अभी तक न हुआ है, आनेवाले भविष्य में उनकी ये कहानियाँ निश्चय ही प्रासंगिक होंगी ।

---

1. "मेरी जीवनयात्रा" – भाग – 1 – एक पृ 359

****

महापंडित राहुल सांकृत्यायन-जन्मस्थली-पन्दहाँ-आज़मगढ़

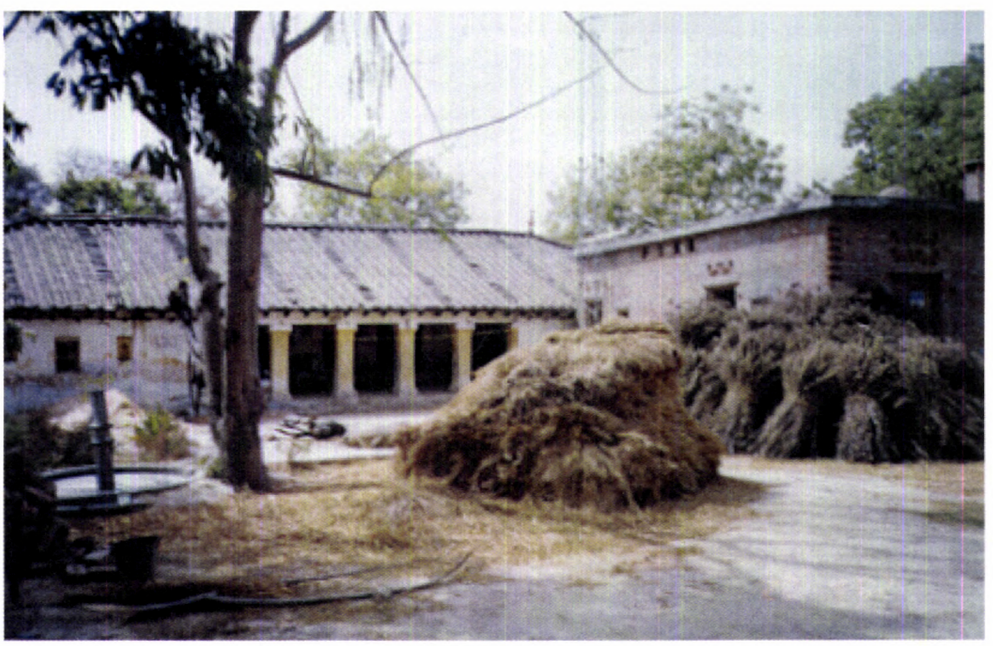

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का पितृग्राम-कनैला-आज़मगढ़

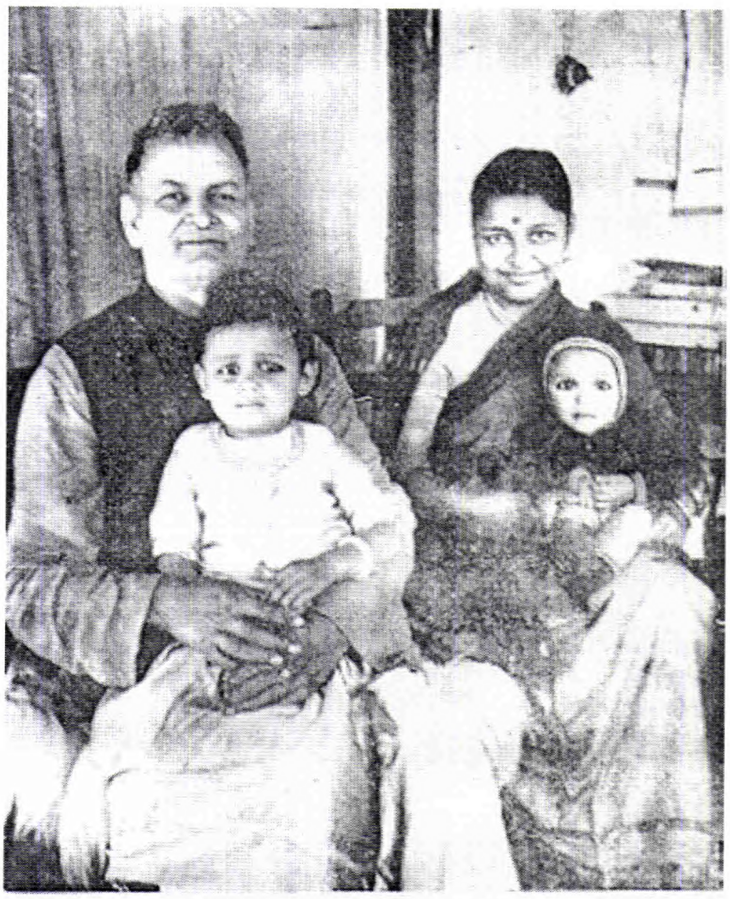

महापंडित राहुल सांकृत्यायन, श्रीमती डॉ० कमला सांकृत्यायन
पुत्री जया एवं पुत्र जेता

'मध्य एशिया का इतिहास' के लिए जवाहरलाल नेहरू से साहित्य अकादमी पुरस्कार ग्रहण करते हुए राहुल जी (1958)

श्रीमती येलेना सांकृत्यायन

पुत्र ईगोर

श्रीकाशी-विश्वेश्वरो-विजयते।

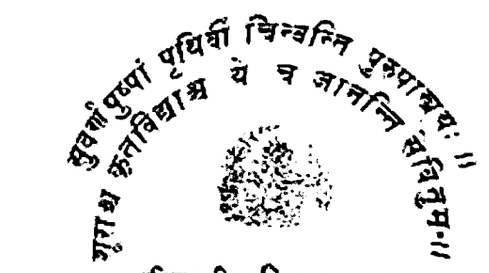

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ।।

श्रीकाशी-पण्डित-सभा।

मानपत्रम् ।

[illegible] महोदयानाम्
[illegible] शास्त्राणाम्
[illegible] विशेषोन्नतान्तःकरणानाम्
[illegible] धर्मसंस्थापन-विचक्षणानाम्, तत्र भवतां श्रीमताम्
[illegible] गुणगणसंविशेषत्व [illegible] दिगन्त [illegible] सत्यादिगुणमन्यमाना
[illegible] श्रीकाशी-पण्डित-सभा [illegible] सुविनीतेभ्यः
[illegible] "महापण्डित" इति पदवीं वितरति।

श्रीकाशी-पण्डित-सभा-कार्यालयः
तिथिः [illegible]
वैक्रमाब्दः [illegible] काशी

सभापतिः [illegible]
मन्त्री [illegible]

काशी पंडित सभा द्वारा प्रदान की गयी "महापंडित" की उपाधि
(सौजन्य : श्रीमती कमला सांकृत्यायन)

पद्मभूषण उपाधि (सन् 1961 ई.)

राहुल को प्राप्त सम्मान एवं उपाधियाँ

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की भारतीय पत्नी श्रीमती. डा. कमला सांकृत्यायन

राहुल जी का अध्ययन कक्ष ('राहुल निवास', दार्जीलिंग, पश्चिमी बंगाल)

दार्जीलिंग में स्थापित महापंडित राहुल सांकृत्यायन की प्रतिमा

दार्जीलिंग का 'राहुल निवास'–यहीं उनकी मृत्यु हुई ।

दूसरा अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण

सतमी के बच्चे

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्राइवेट लिमिटेड
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए. जीरो रोड, इलाहाबाद

सारांश

इस अध्याय में कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से ''सतमी के बच्चे'' का विश्लेषण है। यह रचना इसका सबूत है कि हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील चेतना का प्रभाव पड़ने से पहले ही इसमें प्रगतिशीलता के तत्व प्राप्त है। इसका कथ्यपक्ष अत्यंत सजीव एवं शिल्पपक्ष निर्जीव हैं। इसकी कहानियाँ हमें जीवन के कट् सत्य की ओर ले जाती हैं। इसमें राहुलजी आर्थिक शोषण, समाजिक शोषण, धार्मिक शोषण, लिंग शोषण आदि से मुक्ति के लिए संघर्ष की अनिवार्यता पर ज़ोर देते हैं।

दूसरा अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण

"सतमी के बच्चे" महापंडित राहुल सांकृन्यायन का प्रथम कहानी संग्रह है, जिसकी रचना सन् 1935 ई में हुई थी । यह कहानी संकलन इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें समसामयिक समाज की आर्थिक व सामाजिक परिस्थियों से पीड़ित व्यक्तियों का जीवन-चित्रण यथार्थ ढंग से हुआ है । इस संग्रह की अधिकतर कहानियाँ प्रामाणिक जीवन अनुभवों, वास्तविक घटनाओं और व्यक्तियों पर आधारित हैं । कुछ कहानियों के आधार बचपन के संस्मरण हैं, कुछ लोकानुभवों पर आधारित हैं । संवेदना की मार्मिकता और करुण प्रसंगों पर बल देने वाली इस संग्रह की कहानियों में प्राकृतिक सामाजिक नियति के शिकार दीन एवं निरीह चरित्र मिलते हैं । "इसकी एक एक कहानी अलग अलग विशेषता रखती है । देहाती चरित्रों का इतना सुन्दर चित्रण प्रेमचन्द को छोड़कर हिन्दी संसार में और किसी ने नहीं किया है । राहुलजी की पैनी निगाह ने आज की अंधेरी गलियों में धूल के हीरों को चुनकर मानो झाड़-पोंछकर पाठकों के सामने रख दिया हैं"[1] । इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि "सतमी के बच्चे" में गाँव के विभिन्न पहलुओं के चित्र मिलते हैं ।

"सतमी के बच्चे में कहानीकार का यथार्थवादी एवं विद्रोही रूप उभर कर आया है। स्वयं राहुलजी के शब्दों में "यात्राओं के लिखते ही लिखते (सन् 1935 ई या सन् 1934 ई में) कुछ वास्तविक घटनाओं को लेकर कहानियाँ को लिखने की इच्छा हुई और एक एक करके मैंने उन कहानियां को लिखकर पत्रिकाओं में भेजा, जो कि

---

1. "सतमी के बच्चे" – 'प्रकाशकीय' से

"सतमी के बच्चे" में संगृहित हैं । उनमें "स्मृतिज्ञानकीर्ति' ही एक पुरानी ऐतिहासिक कहानी है, जिसकी सामग्री तिब्बत में मिली थी, बाकी सभी सामग्री तिब्बत में मिली थी, बाकी सभी कहानियों के नायक बचपन के परिचित थे"[1] ।

"सतमी के बच्चे" में दस कहानियाँ संकलित हैं, जो क्रमश: "सतमी के बच्चे", "डीहबाबा", "पाठकजी", "पुजारी", "स्मृतिज्ञानकीर्ति", "जैसिरी", "राजबली", "रामगोपाल", "घुरबिन" और "दलसिंगार" हैं । इसकी अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण जीवन से संबद्ध हैं ।

वस्तुत: रचनात्मक साहित्य का कोई प्रक्रियात्मक फार्मूला नहीं होता । इसलिए यह आवश्यक नहीं कि जब तक किसी कहानी में अपेक्षित तत्वों का पूर्ण समावेश नहीं किया जाय, तब तक उसे कहानी की संज्ञा प्राप्त न हो । फिर भी कहानियों में स्वयं कुछ तत्वों का समावेश किसी न किसी रुप में हो जाता है । उन तत्वों को स्थूल रुप से कथ्य तथा शिल्प नामक दो भागों में बाँटा जा सकता है । कथ्य के अन्तर्गत कथावस्तु, अथवा लेखक के विचार और शिल्प के अन्तर्गत कथाशिल्प, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोप्रकथन, वातावरण भाषा शैली और उद्देश्य का विश्लेषण है । कथ्य और शिल्प का इतना गहरा संबन्ध है कि कथ्य अनुभूति पक्ष और शिल्प अभिव्यक्ति पक्ष है । इस अध्याय में "सतमी के बच्चे" का कथ्थगत और शिल्पगत दृष्टि से अध्ययन किया गया है ।

खंड : क. कथ्यगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण

पहले हम प्रस्तुत संकलन की कहानियों की संक्षिप्त कथावस्तु से परिचित हो जाएँगे और उसके बाद उनकी कथ्यगत विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे ।

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "राहुल निबन्धावली" – पृ 4.

1. सतमी के बच्चे

यह, इस संकलन की पहली कहानी है । इसी कहानी के नाम पर इस संग्रह का नाम "सतमी के बच्चे" रखा गया है । यह सन् 1897 ई की रचना हैं। कहानी कुछ इस प्रकार है कि पन्दहा ग्राम में सतमी अहीरिन सबसे गरीब थी, जिसका पति उसे सपरिवार निसहाय छोड़कर बंगाल चला गया है । अर्थाभाव की शिकार सतमी की पाँच संतानें हैं-चार बेटे और एक बेटी । बेटी का नाम सुखिया था और बेटों के नाम बुद्धू, सुद्धू, मद्धू तथा सन्तू थे । यद्यपि सुखिया का विवाह हो गया था, लेकिन ससुराल के अत्याचार के कारण वह भी माँ के यहाँ ही रहती थी । उनचास घरोंवाले पन्दहा ग्राम में कुछ परिवार ब्राहमण के थे, पर वे सामान्य परिवार थे । सतमी पिसाई-कुटाई करके अपने बच्चों को पालती है । लेकिन उनको खिलाने-पिलाने में वह असमर्थ हो जाती है और उसका जीवन संघर्षमय हो जाता है । जीवन को वह सदा सन्देह की दृष्टि से देखती है । भूख और बीमारी से चारों बेटे मर जाते हैं । सतमी की आहों पर कहानी का दुखद अन्त होता है । विपत्तियों से विक्षिप्त सतमी दिन-रात आहें भरती रहती हैं, "हाय बुद्धू । क्या इसी दिन के लिए तुम्हें पिसौनी करके पाला था कि एक दिन धोखा देकर चले गए"[1] । यह आर्थिक कारणों से जीवन पर पड़नेवाले प्रभाव की कहानी है ।

2. डीहबाबा

इस कहानी के आंरभ में राहुल भर जाति का इतिहास बताते हैं । उनके अनुसार आर्यो के आने से पहले ही यह जाति सभ्यता के उच्च शिखर पर पँहुच चुकी

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 6

थी । यह जाति सुन्दर प्रसादों के निर्माण में निपुण थी । आर्यों के इस कला में शिक्षित हो जाने के बाद जातीय अपमान तथा आर्थिक कारणों से यह जाति प्रवास के लिए विस्थापित हो गई । यह कहानी कनैला में भर टोली के मुखिया जीता भर की कहानी है । अत्यंत कठिनाईयों से भरी जिन्दगी जीते हुए भी सन् 1904 ई. के घोर अकाल में जीता अपने लोगों को गाँव छोड़कर परदेश जाने की अनुमति नहीं देते । लेकिन बाद में जीने का कोई रास्ता न देखकर अपने टोले के साथ असम के चाय बगानों में काम करने जाते हैं । ड़ीहबाबा की पूजा करने में भी वह हिचकता नहीं । यह कहानी एक भारतीय श्रमजीवि जाति के इतिहास, संस्कृति तथा उनकी अपनी परंपरा के प्रति मोह की कहानी है ।

3. पाठकजी

यह कहानी मूलतः अपने नाना पर लिखी गई है । सन् 1844 ई. में जन्मे और शैशव में ही विवाहित पाठक कुश्ती के शौकिन थे । 18 वर्ष की उम्र में पाठक भागकर सुदूर हैदराबाद फौज की नौकरी करने चले गए । वहाँ के श्रेष्ठ पहलवान को पराजित करके वे फौजी अफसर के अत्यंत प्रिय हो गए और फौज में कप्तान साहब के अर्दली हो गए। ग्यारह वर्ष नौकरी करने के बाद वे घर लौटे । उनका अपने नाती से बड़ा स्नेह था । वे अपनी सारी संपत्ति अपनी विवाहिता पुत्री और अपने बेटे को देना चाहते थे । भूमि के नाम पर उनका, अपने भतीजों से मनमुटाव हो गया । इसके कारण पाठकजी को अपने गाँव छोड़कर दामाद के गाँव जाना पड़ा । सन 1913 ई. में पाठकजी बीमार पड़े । इसी अवसर पर उनका नाती घर से भागकर साधु बन गया । इससे पाठकजी अतीव दुःखी हुए और उनकी मृत्यु भी हुई। इस तरह यह कहानी दुखांत बन गई ।

4. पुजारी

यह कहानी अपने पिता और स्वयं को केन्द्र में रखकर लिखी गई है । पुजारी के जीवन संघर्ष का वर्णन राहुलजी ने वर्णनात्मक शैली में किया है । पुजारी के पाँच बच्चे थे- एक लड़की और चार लड़के । पुजारी असाधारण मेधावी व्यक्ति थे । जब उनकी उम्र तीस वर्ष की हुई, तब पत्नी की मृत्यु हुई । फिर भी उन्होने दूसरी शादी नहीं की । पुजारीजी के आगे का जीवन पूर्णरूप से दु:खमय हो गया । उनके यहाँ काम करनेवाला हलवाहा चिनगी चमार के बेटे की मृत्यु हुई, फिर चिनगी खुद मरे, उनका बैल मरा, लड़की मरी, लड़का घर से भागकर साधु बन गया । इसी दु:खमय और चिन्ताग्रस्त अवस्था में पुजारी की भी मृत्यु हुई । यह एक मार्मिक कहानी है ।

5. स्मृतिज्ञानकीर्ति

इसमें ग्यारहवीं शताब्दी के भारतीय पंड़ित स्मृतिज्ञानकीर्ति की कहानी है । स्मृतिज्ञानकीर्ति भोट भाषा सीखने के उद्देश्य से भोट प्रदेश के एक ग्राम में गए और वहाँ चारवाही करने लगे । मठ के एक साधु के माध्यम से उन्होने भोट भाषा के व्याकरण की पुस्तक को पढ़ डाला । स्मृतिज्ञानकीर्ति के एक गीत को देखकर वहाँ के एक आदमी ने उन्हें पहचाना और उस हलवाहे के कार्य से उनको छुड़ाकर उन्हें बड़ी इज्जत के साथ सम्मानित किया । स्मृतिज्ञानकीर्ति ने संस्कृत ग्रंथो का भोट भाषा में अनुवाद करने में वहाँ के विद्वानों की मदद भी की ।

6. जैसिरी

इस कहानी का नायक जैसिरी पन्दहा गाँव का निवासी था, जिससे राहुल बचपन में कहानियाँ सुना करते थे । गरीब, अनपढ़ लेकिन बुद्दिमान जैसिरी चारवाही का काम करता था । यद्यपि वह अत्यन्त गरीबी में था, तो भी उसे सफाई से रहने

की आदत थी। वह लड़कों से अधिक प्रेम करता था । वह झाड़-फूँक की विद्या में पारंगत था और मधुरभाषी भी था । गाँव में कोई भी उसका शत्रु नहीं था । लेखक का दृढ़ विश्वास था कि सुख-सुविधा उत्पन्न होने पर जैसिरी निश्चित रूप से महामानवों की श्रेणी में आएगा । यह कहानी, विकास के अवसरों के अभाव में, प्रतिभा और व्यक्तित्व की संभावनाओं के बावजूद जीवन के अविकसित और सीमित रह जाने की कहानी है ।

7. राजबली

राजबली, आजन्म सामाजिक शोषण के शिकार एक बालक की कहानी है । यह कहानी अनमेल विवाह के दुष्परिणामों और उसके पीछे सक्रिय आर्थिक कारणों की ओर संकेत करती है । राजबली के पिता ने ढ़लती उम्र में एक कन्या मोल लेकर शादी की थी और उससे तीन बच्चे पैदाकर स्वर्ग सिधार गए । राजबली की दो बड़ी बहनें थीं । पिता का लिया कर्ज उतारने में वह असमर्थ हो जाता है । बहन ने भी एक अधेड़ उम्र के आदमी से शादी की है । निर्धनता के कारण जीवन निर्वाह न हो पाने से उसकी माँ पाँच-छः वर्ष के राजबली को लेकर दामाद के यहाँ चली गई। वहाँ मुफ्त में प्राप्त एक बाल मजदूर के रूप में उसपर अमानवीय जुल्म ढ़ाए जाते हैं । बालक होने पर भी राजबली के मन में यह ग्रंथि थी कि वह उसका घर नहीं है । एक दिन वह चुपके से भागकर अपने गाँव चला आया । पंचों के कहने पर उसे चचेरे भाइयों ने अपने पास रखा। लेकिन वे उसके साथ स्वार्थभरा और यातनापूर्ण व्यवहार करते थे । अत्यधिक श्रम और बीमारियों के कारण दिनों दिन दुर्बल होता हुआ राजबली एक दिन प्लेग का शिकार हो गया ।

8. रामगोपाल

रामगोपाल युक्तप्रान्त के एक छोटे से विद्यालय में अध्ययन करते थे । अध्ययन के बाद वे प्रचारक और बाद में टयूशन मास्टर बने । कुछ दिनों के बाद बालक कैदियों की जेल में वे अध्यापक हो गए । रामगोपाल अपने जीवन में सामान्य ढ़ंग से रहते थे और दूसरों की सेवा करना अपना कर्तव्य समझते थे । उनके मन में प्रवासी भारतीयों की सेवा करने की अदम्य इच्छा थी । वे जाति से ब्राह्मण थे, पर उनकी शिक्षा और संस्कारों ने उन्हें जातिवाद का प्रबल विरोधी बना दिया । जब रौलट कानून के विरोध में भारत में जागृति की लहर फैली, तब रामगोपाल गाँधी के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ना चाहते थे । लेकिन उसको मालूम हुआ कि देश के भीतर इसके लिए आदमियों की कमी नहीं हो सकती । इसलिए उन्होंने प्रवासी भारतीयों की सेवा करने का निश्चय किया । पर प्लेग की बीमारी में उनकी मृत्यु होने के कारण उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई ।

9. घुरबिन

यह अहीर जाति के ऐसे नवयुवक की कहानी है, जो प्रतिभाशाली और लगनशील है । प्रतिभा का सही विकास, उपयोग और मार्गदर्शन न होने पर वह चोरों का सरगना हो जाता है । कहानी का नायक घुरबिन निर्भीक एवं साहसी है । उसमें एक नेता के सभी गुण हैं । अपने मित्रों को खिलाने-पिलाने में वह खूब खर्च करता है। बढ़ते हुए खर्च को पूरा करने के लिए वह चोरी-डाके का काम आरंभ करता है । शेखपुर के अहंकारी जगलाल पांड़े को नीचा दिखाने के लिए वह उसके बैलों की चोरी करता है । जगलाल पांड़े के झुकने पर घुरबिन प्रसन्न होता है और उसके बैल लौटा देता है । यह कहानी भारतीय सामाजिक संरचना में पिछड़ी जाति के एक युवक के जातीय सम्मान और प्रतिशोध की कहानी है ।

10. दलसिंगार

यह, दो बच्चों की बालमैत्री और पारिवारिक अंधविश्वास की कहानी है। इस अंतिम कहानी में अपने रिश्ते के समवयस्क दलसिंगार की जीवनगाथा है । दलसिंगार ग्राम की एक पाठशाला में पढ़ता था और नाती भी उसके साथ ही पढ़ने जाता था । दोनों में बड़ी मित्रता थी । एक दिन स्कूल में दलसिंगार बीमार पड़ जाता है और उसका स्कूल जाना बन्द हो जाता है। स्वस्थ होने पर अपने मित्र के आग्रह से वह पुनः स्कूल जाने लगा और फिर रोगग्रस्त होकर उसकी मृत्यु हुई । दलसिंगार की माँ उसे पढ़ने नहीं जाने देना चाहती थी, क्योंकि उनके घर में पढ़ाई सह्ती न थी। जो भी घर में पढ़ा, वह मर गया। इसलिए उसकी माँ मृत्यु की पुनरावृत्ति नही करना चाहती थी । उनकी राय में स्कूल जाने से ही दलसिंगार की मृत्यु हुई है ।

कथ्यगत विशेषताएँ

"सतमी के बच्चे" की कहानियों में शोषण की व्यवस्था तथा सामाजिक आर्थिक ढ़ाँचे से पीड़ीत जन-समूह की दुरवस्था का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण प्रबलता के साथ हुआ है। "सतमी के बच्चे" में राहुल सांकृत्यायन ने सामाजिक यथार्थ का नग्नचित्र खींचा है । साम्यवादी समाज व्यवस्था के समर्थक राहुलजी अपनी विचारधारा के साथ कहानी-लेखन में रत हुए । इसलिए उन्होंने सतर्कतापूर्वक उन कथानकों को चुन लिया, जो उनके आसपास जीवित दस्तावेज के रूप में किनारे पड़ा था । इसमें भारतीय समाज के अन्तर्विरोधों की पड़ताल है । समाज की सारी कठिनाइयों का आधार राहुल सामाजिक अव्यवस्था और आर्थिक विषमता को मानते हैं। "सतमी के बच्चे" कहानी की पृष्ठभूमि सन् 1897 ई. के दौरान घटित अर्थाभाव की स्थितियाँ हैं । "जैसिरी" कहानी का आधार भी सामाजिक अव्यवस्था और आर्थिक

विषमता रही है । यद्यपि इसका नायक जैसिरी अत्यन्त ज्ञानी था, तो भी अर्थाभाव, उनकी त्रासदी का मुख्य कारण बनता है । राजबली का जीवन भी गरीबी में बीता । 'दलसिंगार' का नायक दलसिंगार पढ़ने के कारण अपनी माँ की उस अंधधारणा का शिकार हो जाता है कि उसके घर में पढ़ना नहीं सहता । 'डीहबाबा' भी उसी प्रकार की स्थितियों की उपज है । यहाँ "सतमी के बच्चे" कहानीसंकलन के संबन्ध में डा. प्रभाकर माचवे का वक्तव्य प्रासंगिक होगा । उन्होने कहा-"उनका (राहुल का) सबसे अच्छा संग्रह "सतमी के बच्चे" है, जिसमें गरीब, उत्पीड़ित, शोषित समाज के यथार्थवादी निर्मम चित्रण है । करुणा से अधिक इन रेखाचित्रों को पढ़कर क्रोध उपजता है।"[1] 'पुजारी', 'स्मृतिज्ञानकीर्ति', 'घुरबिन' और 'रामगोपाल' कहानियों में आदर्श और यथार्थ का सामंजस्य दिखलाया गया है । इन कहानियों द्वारा वे समाज की उन सच्चाइयों को भी सामने लाने का प्रयास करते हैं, जो किसी न किसी रूप में समाज के लिए आदर्श की सृष्टि करती है । उदाहरण के लिए 'पुजारी' कहानी का नायक पुजारी की उदारता दर्शनीय है और यह स्वयं राहुल के जीवन में घटित है । 'रामगोपाल' कहानी का नायक रामगोपाल स्वार्थत्याग की प्रतिमूर्ति है । उसमें देशभक्ति और राष्ट्रभावना भी है । वह जानता था कि जिसके पास रूपया है या जो, जाति या पद के कारण ऊँचे स्थान पर बैठा हुआ है, वह चाहता है कि दूसरे लोग उसके आज्ञाकारी बने रहें । उनकी राय में भारत के पतन का सबसे बड़ा कारण यही जाति-पाँति है । 'घुरबिन' कहानी का नायक परिस्थितिवश डाकू बन जाता है । इसके बावजूद उसका एक आदर्श भी है कि वह गरीबों को नहीं सताता, विधवा अनाथ को नहीं लूटता एवं अवैध आमदनी से समय समय पर गरीबों की सहायता करता है ।

---

1. डॉ. प्रभाकर माचवे – "हिन्दी के साहित्य निर्माता राहुल सांकृत्यायन" – पृ 43,44.

लेकिन 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' राहुल की एक ऐतिहासिक कहानी है, जिसका आरंभ ही यह दिखाता है कि इतिहास अपने रास्ते चलता है और दुनिया की जीवन स्थितियाँ अपनी राह से गुजरती हुई अपनी अनिवार्य परिस्थितियों को प्राप्त करती है । जीवन के इसी तथार्थ का संकेत कहानी के आरंभ में दी हुई मोट भाषा की इस कविता में है.

"हरी पतियों को देखते समय
सुखी होने की स्मृति हो आती है ।
काले काँटों के लगते समय,
चित्त में वेदना मात्र ही रह जाती है ।
भाग्य भंडार खुल जाएगा।"[1]

इस कहानी में वर्णित ये पंक्तियाँ सन् 1930 ई के आसपास घटित एक ऐतिहासिक घटना से संबन्धित है । स्मृतिज्ञानकीर्ति और साथी सूक्ष्मदीर्घ, तिब्बत का दुभाषिया पंड़ित, पद्मरुचि के साथ अनुवाद कार्य के लिए नेपाल के रास्ते से भोट देश में गए । स्मृति वहाँ जाकर जिन स्थितियों से गुजर रहे थे, उनका मार्मिक चित्रण इस कहानी में है । इसमें भारतीय ज्ञान के वस्तुपरक यथार्थ और मानवीय मूल्यों की उज्जवल परंपरा का पर्दाफाश हुआ है ।

"सतमी के बच्चे" में राहुलजी ने मौत को नृशंस हत्या के रूप में चित्रित्र किया है । शोषण पर टिके समाज की बुराइयों का एक सशक्त चित्रण इसमें मिलता है । 'डीहबाबा' में सन् 1897 ई के अकाल के भीषण नतीजे का चित्र है । अकाल की यह स्थिति प्राकृतिक होने के साथ अंग्रेजी साम्राज्यवाद की भी देन थी । राहुल ने इस क्रूर

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 48

आतंककारी परिवेश के विरुद्ध संघर्ष करते हुए मनुष्य को भी इसमें चित्रित किया है। यथा – "यदि कनैला में रहे, तो भूख के मारे सारे परिवार की मृत्यु होगी, यदि असम जाते हैं, तो कल से ही भूख की यातना दूर होती है, मृत्यु का पथ छोड़कर उन्होंने जीवन के पथ को स्वीकार किया" ।[1]

'पाठकजी' कहानी में बालविवाह और आर्थिक तंग की समस्याएँ हैं । इसमें बताया गया है कि बन्धन ऐसा तत्व है, जो मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता । 'पुजारी' में पुजारी ब्राह्मण द्वारा चिनगी चमार का अंतिम संस्कार कराकर रुढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर उभारा गया है । नजदीक रहने पर कुछ पता नहीं चलता, परन्तु दूर चले जाने पर अपनी मातृभूमि की यादें हृदय को उद्वेलित करती हैं.- यह बात 'ड़ीहबाबा' में मिलती है । 'जैसिरी' में यह बताया गया है कि निश्चित दिशा और उचित संरक्षण के अभाव में मानब पथ्यहीन हो जाता है । 'राजबली' में उपेक्षित मानवों की बात स्पष्ट है । 'घुरबिन' में सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार है तो 'दलसिंगार' कहानी गलत रिवाजों का दस्तावेज है । 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में बाज पक्षी द्वारा मैना को मरवाकर लेखक स्मृति के हृदय तक पहुँचने की कोशिश करता है यथा- "अरे मैना यहाँ कहाँ। मैना तू कैसे आई? आह भारत के आम्रकुंजों में निर्द्वन्द्व विहरनेवाली मैना ! तू कैसे इस बेगाने मुल्क में ! मैना तेरी तरह मैं भी इस अपरिचित देश में आ पड़ा हूँ । जैसी वेदनाएँ तूने सही हैं, वैसी ही मैं भी सात साल से दिन रात सह रहा हूँ और कौन जानता है तेरी तरह मुझे भी अज्ञात गुमनाम इस बियाबान में शरीर छोड़ना पड़े । मैना ! तू सौभाग्यशालिनी है, तुझे इस अपरिचित स्थान में भी मुझ जैसा अपना देशवासी दो आँसू बहाने के लिए तो मिल गया। मेरे भाग्य में तो शायद वह भी नहीं " ।[2] 'पुजारी' कहानी का पुजारी समाज की नैतिक

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 16
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 59

चिंता से परेशान होंकर भी छुआछूत के मामले में कहीं बहुत उदार भी था । चिनगी चमार को चिनगी भगत बनाकर गंगा के किनारे उसकी दाहक्रिया उसी की द्रढ़ता का परिणाम थी । लोगों के बहुत समझाने पर भी वह बूढ़े बैल को बेचने के लिए तैयार नहीं था । उनका तर्क था कि बूढ़े हो जाने पर क्या माँ बाप को बेच दिया जाता है । "सतमी के बच्चे" की कहानियाँ पन्दहा गाँव की कहानियाँ हैं । स्वयं राहुल को एक मील दूर पैदल चल के स्कूल जाना पड़ता था । पन्दहा के ब्राहमणों ने जैसे न पढ़ने की शपथ ले रखी हो । औपचारिक शिक्षा में राहुल का विश्वास नहीं । जीवनानुभव, श्रम और अन्य मानवीय गुण ही राहुल के लिए महत्वपूर्ण थे । वे समझते थे कि इन अपढ़, लेकिन परिश्रमी और ईमानदार लोगों को पढ़ने-लिखने और विकास की सुविधाएँ न मिल पाती हैं और ये अकाल में काल-कवलित हो जाते हैं । परिस्थियों के साथ देने पर इनमे से अनेक लोग महान व्यक्ति बन सकते थे । जैसिरी के पास अट्ठाईस वर्षों का चारवाही अनुभव है एवं मंत्र, चिकित्सा और कृषि का अद्भुत ज्ञान है। उसके लिए अक्षरज्ञान कोई अनिवार्य शर्त नहीं । इसका संकेत इस कहानी में है – "वर्षा और ऋतु के संबन्ध की पचासों लोकोक्तियाँ उन्हें याद थीं, जिनमें घाघ की सूक्तियाँ भी शामिल थीं । बादल , हवा, चींटी और फतिंगे को वे देखकर बतला देते थे कि वर्षा होने वाली है, फिर सूखा और ऐसा अवसर शायद ही आता था जबकि उनकी बातें गलत होती थीं ।"[1]

परिव्रजन की पीड़ा का एक सशक्त चित्र राहुल ने टड़ीहबाबाट कहानी में खींचा है । इस कहानी का नायक जीता द्वारा उन्होने अपना देशप्रेम भी प्रकट किया है, यथा- "हमारी सैकड़ों पीढ़ीयाँ इसी धरती में गल गईं । अपना जन्म-धरती छोड़कर विदेश में भागें । धीरज धरो, भगवान कोई रास्ता निकालेंगे ।"[2] राहुल पलायन में

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 71
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 15

विश्वास करनेवाले नहीं । "सतमी के बच्चे" में सतमी को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है, लेकिन वह हिम्मत नहीं हारती। वह ऐसी व्यवस्था पर आक्रोश करती है, परन्तु पलायन नहीं करती । राहुल नारियों को पीड़ित और शोषित देखना नहीं चाहते । वे उनकी आर्थिक स्वंतंत्रता की ओर संकेत करते हैं । ब्राहमण धर्म से विरोध की भावना भी अनेक स्थानो में देखा जा सकता है । एक उदाहरण हैं- "चाहे कुछ भी हो, ब्राहमणशाही के सामने सिर न झुकावेंगे की कसम खा रखी थी।"[1] 'डीहबाबा' कहानी में राहुल ने ब्राहमणों में माँसभक्षण की स्थापना भी की है । 'सतमी के बच्चे' में उन्होने एक निन्नवर्गीय भारतीय ग्रामीण परिवार का यथार्थ चित्र खींचा है, यथा – "घर पर सतमी के पास न एक अंगुल खेत था, न एक पूँछ गाय या बकरी की । उसकी संपत्ति थे दो पुराने छोटे छोटे खपडैल के घर और कुछ मिट्टी-काठ के बर्तन ! घरों में किवाड़ या चाँचर न था और न उसकी आवश्यकता ही थी । यहाँ चुराने को रखा ही क्या था ?"[2] भारतीय समाज के अंधविश्वास एवं अशिक्षा का एक चित्र राहुलजी ने 'दलसिंगार' कहानी में पेश किया है । दलसिंगार की माँ कहती है- "बेटा हमारे घर में पढ़ना नहीं सहता । हमारे दो जेठ पढ़कर बड़े पंडित हुए । आज भी देखो पच्छिमवाले घर की चौकी पर उनकी पोथियों की ढ़ेर लगी हुई है । दोनों को एक खाट पर लादकर जाना पड़ा । बच्चा, जिन्दगी रहेगी तो बहुत है । पढ़कर क्या करोगे ?"[3] यहाँ व्यक्ति के माध्यम से समष्टिगत चेतना की अभिव्यक्ति है । राहुल का अधिकांश जीवन व्यापक मानवता की प्रगति और विकास के लिए सतत प्रतिबद्ध था । "सतमी के बच्चे" की अधिकतर कहानियों में शोषित पीड़ित जनजीवन का चित्रण है।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 9
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 1
3. "सतमी के बच्चे" – पृ 102

इसकी 'राजबली' ऐसी कहानी है, जिसमें घोर दरिद्रता ही उन बच्चों की मृत्यु का कारण बनती है । "सतमी के बच्चे" में ऐसी मानवता की कहानी है, जो समाज में निरन्तर प्रयत्नशील रहने पर भी विवश हैं और जीवन से जूझते जूझते जीवन दे डालते हैं । इतना होने पर भी एक बात और कि ये पात्र मृत्यु का आलिंगन करते हुए भी संघर्षशील व्यक्तित्व की स्थापना करते हैं । "सतमी के बच्चे" की अनेक कहानियां में कहानीकार के इतिहास-चिन्तन का भी आभास मिलता है । कहानी के बीच बीच में एतिहासिक घटनाक्रम का उल्लेख कर राहुल यह स्मरण दिलाने चलते हैं कि ये पात्र जिस समाज में रहते हैं, वे कहीं-न-कहीं इतिहास की अनिवार्य नियति से बंधे हुए हैं। 'स्मृतिज्ञानकीर्ति', 'डीहबाबा', 'पाठकजी' आदी कहानियों में यह इतिहासचेतना मौजूद हैं। 'सतमी के बच्चे', 'पुजारी', 'जैसिरी', 'राजबली', 'रामगोपाल', 'घुरबिन' और 'दलसिंगार' कहानियाँ अतीतकालीन सामान्य जन जीवन की घटनाओं के आधर पर इतिहास की पुनर्रचना कही जा सकती है । राहुल ने इन कहानियों में गणतंत्रीय शासन-व्यवस्था का समर्थन इसलिए किया है कि उनके समाजदर्शन का मुख्य-बिन्दु मानव-स्वातंत्र्य था। उनका विश्वास था कि आदर्श समाज की स्थापना के लिए आर्थिक विषमता को दूर करना होगा, जिस के लिए अर्थक्रांति आवश्यक है ।

'सतमी के बच्चे' में आधुनिक जीवन की विषम परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है । जन समाज से उपेक्षित, पर प्रतिभा संपन्न, अभावग्रस्त, पर मानवीय गुणों से संपन्न, दुःखी, पर संवेदनशील दीन पर दयापूर्ण काल, परिस्थिति एवं समाज रक्षकों द्वारा निर्मित पशु, पर मानव इस प्रकार के ग्रामीण पात्रों का यथार्थ की भावभूमि पर प्रत्यंकन किया गया है ।

संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व, कहानी का प्राणबिन्दु है । इन कहानियों में जीने के लिए संघर्ष करनेवाले मनुष्य के चित्र हैं ।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि "सतमी के बच्चे" में राहुल ने समाज का एक सच्चा रूप दिखाया है, साथ ही साथ उसके प्रति लेखक की प्रतिक्रिया भी प्रकट की है ।

खंड-ख – शिल्पगत दृष्टि से "सतमी के बच्चे" का विश्लेषण

कथाशिल्प

कहानीशिल्प के अनुसार कहानी में कथा का महन्वपूर्ण स्थान है । अन्य तत्व अर्थात, संवाद, जीवन-चित्रण आदि द्वारा उसकी पुष्टि होती है । कथाशिल्प की दृष्टि से कहानी की घटनाएँ परस्पर संबद्ध होनी चाहिए । "सतमी के बच्चे" की अधिकतर कहानियां में कथानक का क्रमानुसार विकास नहीं । स्वयं कहानीकार कथाप्रवाह को रोककर अन्य घटनाओं एवं अपने एतिहासिक ज्ञान को प्रस्तुत करने के लिए आगे आते हैं । उदाहरण के लिए 'पुजारी' कहानी में पुजारी की धार्मिक उदारता विषयक विशेषता के समर्थन में उसके चिनगी चमार के दाह संस्कार में सम्मिलित होने से संबद्ध प्रसंग का समावेश इसमें किया गया है । यथा,-"कुछ दिन बीमार रहकर एक दिन माघ की बदली में चिनगी चल बसे । लोगों को बहुत अचरज हुआ, जब पुजारी ने कहा, चिनगी भगत की दाहक्रिया गंगातट पर (जो वहाँ से प्रायः तीस मील पर था) होगी । शर्म, संकोच या दबाव से ही चिनगी के भाई बंधु उस बदली में लाश ले जाते के लिए तैयार हुए । पुजारी ने साथ जाकर गंगातट पर चिनगी का दाहकर्म कराया। क्रियाकर्म भी हुआ । लोग कहते थे – पुजारी पर चिनगी का पिछले जन्म का कर्ज था ।"[1] शिल्प की दृष्टि से कहानी का कथानक आंरभ होकर प्रायः किसी-न-किसी

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 42

प्रकार के संघर्ष द्वारा क्रमशः उत्थान को प्राप्त करता हुआ चरम स्थिति को पहुँचता हैं। इसके पश्चात, कहानी की समाप्ति होती है, जिसमें पूरा तथ्य उद्घाटित होता है । लेकिन "सतमी के बच्चे" की अधिकतर कहानियों में आंरभ, विकास चरम या रहस्योद्घाटन नहीं । उदाहरण के लिए 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में एक भारतीय पंड़ित स्मृतिज्ञानकीर्ति के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है । वह भोट भाषा सीखने के लिए भोट देश में जाता है । वहाँ उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं। यहाँ केवल विषय का प्रतिपादन ही हुआ है । इसमें रहस्योद्घाटन जैसी स्थिति नहीं । इसकी अधिकतर कहानियों में घटनाओं का विवरण मात्र है, समाज के सम्मुख किसी आदर्श को प्रस्तुत करने के निमित घटनाओं की ताना-बाना की ओर ध्यान नहीं गया है । 'रामगोपाल' कहानी में नाटकीयता का तत्व लेशमात्र भी नहीं । 'पाठकर्जी', 'जैसिरी' और 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में केवल जीवनवृत्त का प्रतिपादन हुआ है ।

"सतमी के बच्चे" की अधिकतर कहानियाँ दुःखान्त हैं । इनमें व्याप्त करुणा, हमें रोचकता प्रदान करती है । "सतमी के बच्चे", 'ड़ीहबाबा', 'पाठकजी', 'राजबली', 'दलसिंगार' कहानियाँ इस प्रकार की है । ये कहानियाँ हमारे हृदय में निराशा और विषाद के स्थान पर आशा और विद्रोह की भावना जाग्रत करनेवाली है ।

प्रेमचन्द के अनुसार कहानी थोड़े से थोड़े शब्दों में कही जानी चाहिए, उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न हो । उसका पहला वाक्य ही पाठक को आकर्षित कर ले और अन्त तक उसे मुग्ध करते रहे । उसमें कुछ चटपटापन हो, कुछ ताजगी हो, कुछ विकास हो और इसके साथ ही कुछ तत्व भी हो । "सतमी के बच्चे" की कुछ कहानियाँ, लंबी भूमिका के साथ आरंभ होती हैं । उदाहरण के लिए 'डीडबाबा' कहानी के कुल तेरह पृष्ठ हैं । यह कहानी आठ पृष्ठों की लंबी भूमिका के साथ आरंभ होती है । इसमें भूमिका के रूप में भर जाति की उत्पत्ति व विकाम का , तथा कनैला ग्राम के निर्माण-व-विनाश का लंबा इतिहास प्रस्तुत है । इस कहानी के

अन्त के आयाम को भी अभिधान्मक बनाया गया है । इस कारण कहानी में अपेक्षित मार्मिकता नहीं । राहुल के वैयक्तिक चिन्तन या बुद्धिवाद की अधिकता के कारण भी कथाशिल्प को आघात पहुँचते दीखता है । 'डीहबाबा' का विस्तृत एतिहासिक वर्णन, 'पुजारी' का कुआँ बनवाना, चिनगी चमार का प्रसंग पाठकजी की भाइयों से अनबन आदि का विवरण इसके उदाहरण हैं । यहाँ कहानीकार की दृष्टि पात्रों की जन्मभूमि और उसके निकटवर्ती प्रदेशों का सांगोपांग भौगोलिक विश्लेषण करने में व्यस्त है । इन आँचलिक चित्रों के अनावश्यक विस्तार ने कथागति को रोककर संवेदनापूर्ण स्थलों को गुंभित कर लिया है । लेकिन कुछ स्थलों पर मार्मिकता भी हैं। उदाहरण के लिए राजबली की मृत्यु का चित्रण संवेदना पूर्ण है, यथा-"जडैया की तरह प्लेग में भी उसे अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया था । दिन में एकाध बार कोई आकर उसके लोटे में पानी दे देता । मौत ने भी उसके ऊपर दया दिखाई और चौथे दिन उसका शरीर उसी गूदड़ी के नीचे ठंड़ा पड़ा मिला । उस वक्त वह मुश्किल से सोलह वर्ष का था । लोगों ने जाकर उसे जला दिया, लेकिन उसके लिए किसी की आँखें न तर थीं और न किसी के मन में उसके लिए किसी तरह का कोई अफसोस था ।"[1] यह चित्र पढ़कर पाठकों के मन में करूणा ज़रूर उत्पन्न होगी। इसमें सन्देह नहीं।

"सतमी के बच्चे" की अधिकतर कहानियों की सरल गति में ज्ञानवर्धक उपादान विद्यमान हैं या नवीन तथ्यों की उपस्थापना है । 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' और 'डीहबाबा' में स्पष्ट रुप से यह देखा जा सकता हैं । 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में भोट जनना के मृत्युपर्यन्त आचार का विस्तृत उल्लेख इस प्रकार हुआ हैं"-भोट में मुर्दा न गाड़े जाते, न जलाए जाते हैं । इसकी जगह मुर्दे एक खास चट्टान पर ले जाए जाते है, जहाँ रा-का-बा- लोग पहले माँस को काटकर ढ़ाँककर रख लेते हैं, फिर हड्डियाँ को

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 82

चूरकर सत्तू में मिला गिद्दों को खिला देते हैं । फिर माँस भी उन्हें दे देते हैं । इस क्रिया में दो घंटों से अधिक समय नहीं लगता ।"[1] 'डीहबाबा' में राहुल की पुरातात्विक दृष्टि का भी आभास मिलता है, जो इस प्रकार है – "बडी बोखर की सील सी लंबी चौड़ी ईंटें बतलाती हैं कि वह समय गुप्तकाल से पीछे नहीं हो सकता । संभव है ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी (शुंगकाल) में वे ईंटें वहाँ मौजूद हों, जबकि पतंजलि जैसे ब्राहमणों में बुद्ध के समता के उपदेश एवं मौर्यों के सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव से नष्ट होनेवाली वर्णभेद की भयंकर व्याधि को फिर से उज्जीवित किया ।"[2] यहाँ कथावृत्ति कम, विचारवृत्ति अधिक है । कुरीतियों के व्यंग्यात्मक चित्रण की अपेक्षा उसकी स्वरूप व्याख्या तथा उसके समाज पर प्रभाव की ओर अधिक रहा । लंबे वाक्यों में प्रवाह के अभाव के कारण शैली में शिथिलता आ गई है ।

इतना होने पर भी इसकी कुछ कहानियों में शुरु से अंत तक कहानीपन है । "सतमी के बच्चे" कहानी ऐसी है । यह कहानी प्रेमचन्द की कहानी की याद दिलाती है । इस संग्रह की अधिकतर कहानियों के शीर्षक व्यक्तिपुरक हैं । शीर्षकों के साथ उसकी विशिष्टता को व्यक्त करनेवाले विशेषण भी दिये गये हैं । जैसे,गरीबी की भेंटः सतमी के बच्चे, अकाल की बलि : डीहबाबा, दुखान्त अवसान : पाठकजी, धूल का हीरा : पुजारी, बाधाओ ! तुम्हारा स्वागत : स्मृतिज्ञानकीर्ति, प्रतिभा जिसके सभी रास्ते बन्द थे : जैसिरी, अभागा बालक : राजबली, स्वार्थत्याग की मूर्ति : रामगोपाल, वंचित नेतृत्व : घुरबिन, कली-फूटने भी न पाई : दलसिंगार। ये कहानियाँ वर्णनात्मक संस्मरणात्मक शैली में हैं । कहानीकार ने अपने परिचित परिवेश को कहानी का शिल्प दिया है । एक अर्थ में ये भोगे हुए सामाजिक यथार्थ के टुकड़े हैं ।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 54
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 8

ये कहानियाँ यथार्थ हैं कला में भी तथ्य में भी, कहीं कल्पना से उन्हें मृदु अथवा रुपांतरित करने की अनावश्यक चेष्टा नहीं है।

पात्र और चरित्र चित्रण

कहानीकला में पात्रों का चरित्रांकन महत्वपूर्ण है । पात्र ही कथावस्तु का आरंभ विकास और अंत करता है । आधुनिक कहानी का लक्ष्य पात्र के चरित्र का उदघाटन करना है । कहानी वहीं सफल होती है जब वह पात्र के व्यक्तित्व को उभारकर पाठक के सामने ला देती है । "सतमी के बच्चे" की कहानियों के कथानायक अपने व्यक्तित्व और विचारों के कारण उल्लेख्य बन पडे हैं । इसके अधिकतर पात्र स्वयं राहुल के जीवन अनुभवों में आए व्यक्ति हैं । ये कहानियाँ अल्पपात्रीय कहानियाँ हैं । प्रत्येक कहानी में एक पात्र की प्रधानता है ।

"सतमी के बच्चे" का एक समाज-सुधारक पात्र है पुजारी । परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र हैं जीता राजबली, जैसिरी, सतमी आदि । एतिहासिक पात्र सतमी, जीता, पाठकजी, पुजारी, रामगोपाल और दलसिंगार हैं। कई पात्र राहुलजी की आत्मकथा "मेरी जीवनयात्रा भाग एक" में आय हुए पात्र हैं । ये पात्र परिस्थितियों से संघर्ष करते दीखते हैं।

"सतमी के बच्चे" की संपूर्ण कथा का केन्द्र-बिन्दु शोषित वर्ग के पात्र हैं । इसके अधिकतर पात्र अपनी पीड़ा एवं विषमता के कारण पाठक की सहानुभूति को प्राप्त करने में समर्थ हैं । इसके पात्र आरंभ से अंत तक एक ही स्वाभाववाले होते हैं ।

राहुल जनवादी कलाकार होने के नाते मानव मात्र का कल्याण चाहते हैं । पुजारी जैसे समाजसुधारक पात्र इसी भावना से ओतप्रोत हैं । पुजारी अपनी स्वतंत्र बुद्धि के कारण प्रचलित धार्मिक अंधविश्वासों से दूर रहता है । वह साधुवेशधारी व्यक्ति

के गुणों को परखे बिना उसका प्रणाम करने को तैयार नहीं । यद्यपिपुजारी ब्राह्मण हैं, तो भी लोगों के विरोध की चिन्ता न कर वह अपने हलवाहे चिनगी चमार के दाहकर्म में सम्मिलित होता है । वह रूढ़िवादी नहीं ।

परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र सतमी अहीरिन पन्दहा गाँव की स्त्री है । वह प्रयत्नशील है । घर के संकट का सामना करने के लिए वह दिन रात परिश्रम करती है । भुखमरी और बीमारी से उसके चारों बेटे मर जाते हैं । वह सारे दु:खों को झेलती अपनी अंतिम घड़ियों की प्रतिक्षा कर रही है । जीता 'डीहबाबा' कहानी का पात्र है, जो परिश्रमी और सहनशील है । वह भर जाति का मुखिया है । सन् 1897 ई. के अकाल के कारण उसको गरीबी का सामना करना पड़ता है । भुखमरी से बचने के लिए वह सपरिवार असम चला जाता है । वह भाग्यवादी है । राजबली, ग्रामीण बालक है । पिता की मृत्यु के बाद पेट पालने के लिए उसे कठिन परिश्रम करना पड़ता है । यद्यपि परिवारिक यातनाओं के विरुद्ध उसके मन में आक्रोश है तो भी असहाय होने के कारण वह प्रकट नहीं कर सकता है । सोलह वर्ष की अल्पायु में भुखमारी और रोग से उनकी मृत्यु होती है। जैसिरी मधुरभाषी और प्रभावशाली व्यक्ति है । ग्रामीण और निर्धन परिवार में उत्पन्न होने के कारण उसकी प्रतिभा अविकसित रह जाती है । वह निर्धनता को भाग्य समझकर जिन्दगी काटने के लिए पशुचारण वृत्ति करना है ।

निम्नवर्ग की नारियों के चित्रण में राहुल की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति दर्शनीय है। सतमी, सुखिया आदि के चित्र अपनी भावमयता एवं मार्मिकता के कारण पाठकों की संवेदना को प्राप्त करने में समर्थ हैं । इन चित्रों में नारी का करुणाजनक रूप निखर उठा है ।

"सतमी के बच्चे" में चरित्र-चित्रण बाह्य कोटि का है, जो वर्णनात्मक शैली में है । इसमें पात्रों के कर्मों का विवरण मात्र है । उदाहरण के लिए 'डीहबाबा' कहानी का नायक जीता का चित्र इस प्रकार दिया गया है- "जीता की दृढ़ता और आश्वासन

से सबका चित्त कुछ देर के लिए शांत हो जाता, किन्तु स्वयं जीता के अपने चित्त में प्रलय का दावानल दहक रहा था । वे अगले आठ मास की भयंकरता को भली प्रकार समझते थे । हर तीसरे चौथे दिन लोग फिर पहुँचते थे । जीता ने अपने दादा के वक्त के आभूषण, अपनी प्रिय अकबरी मुहर की ताबीज को ही नहीं बेच डाला, बल्कि घर में चाँदी-काँसे का जो भी जेवर, जो भी बर्तन या चीज थी, सभी को बेच-बेचकर अपने टोले को जिलाया ।"[1]

इसी प्रकार पाठकजी की उदारता को दिखाने के संदर्भ में केवल बाह्य से राहुल तृप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यह चित्र देखिए- "अतिथियों को खिलाने-पिलाने में उनको बड़ा आनन्द आता था । मधुरभाषिणी तो इतनी थी कि सिवा अपनी जेठानी के (जिसका कारण और ही था) उन्होने किसी को कभी कड़े शब्द न कहे होंगे । दया का उदाहरण लीजिए । वैसे पाठक के घर से कुत्ते-बिल्लियों का बिलकुल संबन्ध न था, किन्तु एक बार एक कुतिया ने आकर बाहर के घर के कोने में बच्चे जन्म दिये । फिर क्या था पाठकाइन ने समझा – इस प्रसूता की परिचर्या का सारा भार उन्हीं पर है । कुतिया को प्रसूता की तरह खाना मिलने लगा । इस दया का फल तुरन्त ही यह हुआ कि कुतिया द्वार की मालकिन बन गई और उसने एक बुढ़िया भिखमंगिन को काट खाया । इस प्रकार से कहा जा सकता है- अपने घर के दो दायादों के सिवा वे अजातशत्रु थीं ।"[2]

"सतमी के बच्चे" में पात्रों का चरित्र-चित्रण सूक्ष्म एवं सांकेतिक न होकर स्थूल एवं विशद है । 'पुजारी' में पुजारी की उदार-हृदयता प्रमाणित करने के लिए

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 15-16

2. "सतमी के बच्चे" – पृ 28

तीन प्रसंगो का जिक्र किया गया है । पुजारी का अपने हलवाई चिनगी चमार के दाहसंस्कार में सम्मिलित होना, लंगड़े बैल को न बेचना, धार्मिक विचोरो में अन्धश्रद्धा न दिखाना आदि का वर्णन चार पृष्ठों में है ।

"सतमी के बच्चे" में राहुलजी ने युग प्रतीक पात्रों की एक सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की है। 'घुरबिन' कहानी का नायक घुरबिन का बाह्यरूप का वर्णन इस प्रकार है – "घुरबिन तीस-पैंतीस बरस का सुन्दर छरहरा नौजवान था । भारत में पीछे से आई अहीर (आभीर) जाति का होने से उसकी मुखमुद्रा आई थी । 6 फुट का लंबा शरीर, आग की तरह दहकता गोरा रंग और मूँछों तक के भूरे बाल, इसके साक्षी थे। पतला होते हुए भी उसका शरीर बहुत बलिष्ठ और फुरतीला था। दौडने में उसका नाम था कि वह घोड़े को पकड़ सकता है । लाठी चलाने में इतना होशियार थ कि अकेले ही पचास लट्ठधारियों को भगा सकता था ।"[1] 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' कहानी का नायक स्मृतिज्ञानकीर्ति का बाह्यचित्र भी देखने लायक है-"उसका कद लंबा, शरीर कृश और ललाट आगे को उमड़ा हुआ था । बीसों जगह से फटा चोगा, सड़ा-गला जूता उसकी असहनीय दरिद्रता को बतला रहा था ।"[2] यह चित्र हमारे मन में सहानुभूति उत्पन्न करनेवाला है । ग्रामीण बालक राजबली का चित्रात्मक परिचय भी श्रेष्ठ बन पड़ा है जैसे – "एक पतला-दुबला लड़का है, जिसकी ठठरी की हड्डियाँ एक एक कर गिनी जा सकती हैं, हाथ और पैर सूखकर लकड़ी से हो गए हैं, सारे शरीर में अगर कोई चीज़ बड़ी मालूम होती है तो वह है लम्बा पेट । कमर में एक मैली-कुचैली लँगोटी और कंधे पर एक फटा- पुराना अँगोछा है ।"[3] 'सतमी के बच्चे' कहानी में मद्धू का बाह्य चित्रण भी देखने लायक है ।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 94
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 62
3. "सतमी के बच्चे" – पृ 76-77

कुछ स्थलों में पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व में भी अत्यंत भावमयता आ गई है, यथा "डेढ महीने में मुंशीजी समझ गए 'धोबी बसि के का करे, दीगंबर के गाँव । मुंशीजी के चेलों में पुजारी ही थे,जो अंत तक डटे रहे । कोदो देकर पढ़ने की कहावत बहुत मशहूर है । पुजारी ने कोदो तो नहीं दी, किन्तु कहते हैं, दक्षिणा में मुंशीजी को कुछ धान ही मिला था ।"[1] यहाँ पुजारी की शिक्षा के विषय में व्यंग्य भरी रोचक शब्दावली का प्रयोग लेखक ने किया है ।

"सतमी के बच्चे" की 'पाठकजी', 'पुजारी', 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' जैसी कहानियों में पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अधिक चित्रण मिलता है । 'पुजारी', 'पाठकजी', 'रामगोपाल' और 'जैसिरी' कहानियों में पात्रों के आंतरिक गुणों की मार्मिक झांकी प्रस्तुत करने की अपेक्षा तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थियों के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया गया है ।

"सतमी के बच्चे" के सभी पात्रों का जीवन, आधुनिक विषम परिस्थितियों का अंकन करता है । उनके जीवन की गतिशीलता केवल समस्यापूर्ति तक है, जो प्रायः अपूर्ण ही रहती है । इन पात्रों की कुछ दुर्बलताएँ भी दीख पड़ती हैं । इतिहास की सीमा में आबद्व पात्रों का व्यक्तित्व अस्वाभाविक बन पड़ा है । सतमी, डीहबाबा आदि का व्यक्तित्व कुछ ऐसा है । "सतमी के बच्चे" की चरित्र-चित्रण कला पर डॉ. नगेन्द्र का वक्तव्य है कि "ये कहानियाँ चरित्रप्रधान हैं, पर राहुलजी का झुकाव मनोविज्ञान की ओर उतना नहीं है, जितना कि वर्ग संघर्ष की ओर है ।"[2] क्योंकि राहुलजी का मुख्य लक्ष्य था, मार्क्सवाद की व्याख्या। क्राँति की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया है।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 35

2. डॉ. नगेन्द्र – "हिन्दी साहित्य का इतिहास" – पृ 584-585

यथार्थवादी कलाकार होने पर भी राहुल समाज के समक्ष आदर्शरूप की प्रतिष्ठा पाना चाहते हैं । शोषक और शोषितों में अन्तर, शोषितों का अभावग्रस्त जीवन, अंधविश्वास आदि के चित्रण के लिए उन्होंने यथार्थ पात्रों को रूपायित किया है।

यद्यपि "सतमी के बच्चे" की चरित्र चित्रण कला पूर्ण रूप से विकसित नहीं, तो भी इसके पात्र यथार्थ के अधिक निकट हैं ।

संवाद

संवाद के द्वारा ही हम चरित्रों के विचार, आदर्श और दृष्टिकोण से परिचित होते हैं । कथोपकथन, चरित्र और परिस्थिति के अनुकुल हो । इसमें नियंत्रण भी आवश्यक है। श्रेष्ठ कथोपकथन वह है, जिसमें स्वाभाविकता एवं संक्षिप्तता के साथ घटनाओं का विस्तार और चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व तथा मानसिक उत्कर्ष का भी चित्रण चाहिए ।

प्रतिपाद्य की विशिष्टता के कारण "सतमी के बच्चे" में कथोपकथन तत्व का प्रायः अभाव है । इसका कथोपकथन पात्रों के जीवन के रूप में है । इसकी 'घुरबिन' कहानी का आरंभ कथोपकथन से होता है। यथा-

"पाँडेजी, पालगी" ।

"क्यों वे जबान संभाल के नहीं बोलता " !

"पांडेजी, नाराज मत होइए । आप ब्राह्मण है, इसलिए पालगी करता हूँ"

"क्या हमको पालगी की जाती है ?"

"सलाम करना होता तो मुझे आपसे बोलने की भी जरूरत न थी ।"

"जा हट जा सामने से" ।

"अच्छा तो देखिएगा, घुरबिन ने जवाब दिया ।"[1]

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 63

इसी प्रकार स्मृतिज्ञानकीर्ति और डोल्मा का संवाद भी स्वाभाविक एवं सजीव है –

"युवक ने बड़े प्रयत्न में मुख पर हँसी की रेखा लाकर कहा-

नहीं, डोलमा! कोई बात नहीं है आज पहाड़ों के पड् (हरी उपत्यका) को देखकर मुझे अपनी जन्मभूमि की याद आ गई । हमारे यहाँ पहाड़ तो नहीं है, किन्तु थङ (मैदानी की हरियाली प्रायः साल भर देखने को मिलती है ।"

"अबू ने-ले ! क्या तुम्हारे यहाँ भी हमारी चङ्र पो जैसी नदी है ।

"इतनी ही दूर पर और इससे बड़ी लेकिन पहाड़ न होने से हम उसे देख नहीं सकते।"

"पहाड़ न होने पर तुम्हारी चँवरियाँ और भेड़-बकरियाँ कहाँ चरती हैं ?---

"ड्रोल्-मा ! वह देखो कोन्-चोच मुँह में अंगुली डालकर सीटी बजा रहा है । तुम यहीं रहो, मैं जाता हूँ । शायद भेडिया आया है ।"[1]

उपर्युक्त संवाद कथानक के विकास के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो संक्षिप्त एवं सजीव है। इस तरह देखें तो स्पष्ट है कि 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' कहानी में संवाद तत्व अन्य कहानियों की अपेक्षा बड़ी मात्रा में मिलता है ।

सारांश यह है कि "सतमी के बच्चे" में संवादों का बहुत कुछ प्रयोग हुआ है, जो कुछ है, वह संक्षिप्त है ।

वातावरण

कहानी में वातावरण चित्रण का अवकाश नहीं मिलता । फिर भी देशकाल की स्पष्टता लाने तथा घटनाओं से परिस्थिति की अनुकूलता व्यंजित करने के लिए कहानी में वातावरण चित्रण की आवश्यकता पड़ती है ।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 51-52

जहाँ तक "सतमी के बच्चे" की बात है, इसमें वातावरण तत्व ही सबसे उभरकर आया है । इसमें वातावरण चित्रण कथानक का अंग नहीं, उसका पृथक चित्रण किया गया है। इसकी 'सतमी के बच्चे', 'पाठकजी', 'जैसिरी', 'दंलसिंगार' कहानियों का संबन्ध पन्दहा (जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश) से है । 'डीहबाबा' और 'पुजारी' की घटनाएँ कनैला (जिला आजनगढ़, उत्तरप्रदेश) से संबन्धित हैं । 'राजबली' और 'घुरबिन' कहानियाँ कनैला के समीपस्थ ग्रामों से संबन्धित हैं। 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' भोट देश से संबन्धित है । 'रामगोपाल' की घटनाएँ फतेहपुर-व-प्रयाग (उत्तर प्रदेश) और लाहौर (पंजाब) में घटती हैं। इन्हीं स्थानों का सजीव एवं यथार्थ चित्र अंकित किया गया है । इस प्रकार भौगोलिक परिवेश का पूर्ण चित्र उपस्थित करने के कारण कथागति में अवरोध आ गया है । इसकी कालपरिधि बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । इन कहानियों मे अंग्रेजी शासनकाल के ग्रामीण समसामयिक जीवन का यथार्थ अंकन हुआ है ।

"सतमी के बच्चे" में सन् 1897ई. से सन् 1942 ई. तक के भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति का संबन्ध, अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन से द्वितीय विश्वयुद्ध तक के अंग्रेजी शासनकाल से है ।

कहानी में सामाजिकता अधिक होती है । "सतमी के बच्चे" में सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण को प्रमुख स्थान दिया गया है । "सतमी के बच्चे", 'डीहबाबा' एवं 'राजबली' में राहुल का ध्यान सामाजिकता की ओर अधिक गया है । बीसवीं शताब्दी में भी गाँव के लोगों का रहन-सहन, भोजन आदि पुराने ढंग के ही हैं । रहने के लिए वही कच्चे-पक्के साधारण मकान, धोती-कुर्ते का वही पुराना पहनावा आदि इस समय में भी हैं । खानपान, नगरों की अपेक्षा ग्रामों में पौष्टिक है । घी-दूध का पर्याप्त उपयोग भी इस काल में है । यह युग अंग्रेजी संस्कृति से प्रभावित है । शोषित वर्ग दुःखी एवं अभावग्रस्त है । इसमें चित्रित ग्रामीण जनता की अवस्था तो और भी

दयनीय है । उन्हें अथक परिश्रम करने के बाद भी अभावमय जीवन बिताना पड़ता है। 'सतमी के बच्चे' एवं 'राजबली' कहानियों की स्थिति ऐसी है ।

इस युग की राजनीतिक स्थिति पर विचार करें तो जमींदार किसानों पर अन्याय कर रहे थे। उनकी भूमि तो हस्तगत किए गए थे। सरकार, जमींदार के पक्ष में थी । सन् 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना जाग उठती है। प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध तक का समय, गाँधी के नेतृत्व में किए गए असहयोग व सत्याग्रह आन्दोलनों का समय है । रौलट एक्ट जैसे कठोर कानूनों द्वारा अंग्रेजी शासक, भारतीय स्वतंत्रता हेतु किए गए आन्दोलनों के दमन करने में संलग्न रहे।

इस युग के आर्थिक चित्रण से पता चलता है कि अंग्रेजी शासनकाल में निर्धनों-व-श्रमिकों को दिन में एक बार आहार प्राप्त होना कठिन था। भूख से बचने के लिए उन्हें दिन्-रात परिश्रम करना पड़ा है । भुखमरी से मृत्यु तक होती थी । आर्थिक विपन्नता भी बढ़ने लगी। धन-धान्य तो सामन्तों, जमींदारों व सेठों के पास सिमट-सिमटकर आने लगे। निर्धन, और निर्धन होने लगे । आर्थिक दृष्टि से आंग्ल-शासनकाल में शोषक और शोषित वर्ग में वैषम्य एवं विरोध अधिक होने लगा । निम्नवर्ग, अभाव पीड़ीत था और श्रमिक वर्ग क्षुपित एवं विपन्न था । 'सतमी के बच्चे' और 'राजबली' कहानियाँ इसके उदाहरण हैं । भुखमरी से उत्पन्न रोगों और अर्थाभाव के कारण गरीब जनता, उचित औषधि का प्रबन्ध न कर पाने से काल के गर्त में समा जाती थी । कृषि, व्यापार, कार्यालय उधोग-धन्धे आदि प्रगति पर थे । लेकिन सामान्य जनता जीवनोपयोगी अनिवार्य साधन जुटाने में भी समर्थ नहीं ।

सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो श्रमिकों और निर्धनों को मनोरंजन की अपेक्षा पेट पालने की लालसा अधिक थी । बीसवीं शताब्दी में निर्धन सतमी जैसी नारियाँ पेट

पालने के लिए दिन-रात खेतों में काम करती थी। फिर भी भूख मिटाने के लिए दो कौर अन्न भी जुटा नहीं पाती ।

धार्मिक दृष्टि से देखें तो पुजारी और पाठकजी जैसे कुछ प्रगतिवादी व्यक्तियों ने धार्मिक उदारता का आदर्श उपस्थित किया।

"सतमी के बच्चे" में रसात्मक प्रकृतिचित्र कम हैं । लेकिन 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' कहानी के पर्वतीय स्थल का यह दृश्य अवलोकनीय है-

"रात की वर्षा के बाद आज मेघरहित आकाश में सूर्य का प्रखर प्रकाश फैल रहा है । पत्थरों से शून्यप्राय तानग के पहाड़ों पर घास की हरी सी सखमल बिछी हुई दिखाई दे रही है, जिसमें अगणित चँवरियाँ और भेड-बकरियाँ चर रही हैं । नीचे की ओर दूर तक विस्तृत उपत्यका में ब्रह्मपुत्र की रुपहली, पतली-सी धार भूल भुलैया खेलती जा रही है । उससे अति दूर ऊपर की ओर हटकर एक नाले में कितने ही चँबरी के बालों के काले काले तंबू लगे हैं, जिनकी छतों से काला धुआँ आकाश में उठकर दूर तक फैल रहा है । इन तंबुओं के पास बंधे कुत्तों की समय समय पर होनेवाली 'हाउहाउ' की आवाज के सिवा और कोई मानव-चिह्न वहाँ दिखाई नही पड़ता" ।[1]

"सतमी के बच्चे" में वातावरण तत्व ही अधिक मात्रा में मिलता है । वातावरण चित्रण शैली वर्णन प्रधान है । 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' का समय ग्यारहवीं शताब्दी है और बाकी नौ कहानियाँ आधुनिक काल की हैं । सभी कहानियों के वातावरण में आर्थिक विवशता का घुटन है ।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 49

भाषा

"सतमी के बच्चे" में राहुलजी ने अपने जीवन अनुभवों को पाठकों तक पँहुचाने के लिए मुख्य रूप से सरल हिन्दी का ही प्रयोग किया है । फिर भी इसमें भाषा के विविध रूप मिलते हैं । उदाहरण के लिए यह उद्धरण देखिए – "समय बीता और महात्मा गाँधी का असहयोग आया । रामगोपाल के लिए परीक्षा का समय था । अन्य नौजवानों की तरह देश की स्वतंत्रता के इस महान संग्राम में वे भी कूद पड़ने को तैयार थे । लेकिन उन्होंने अपने लिए एक लक्ष्य, सालों पहले से बना रक्खा था । मित्रों को भी समझाने की आवश्यकता पड़ी । देश के भीतर असहयोग के लिए आदमियों की कमी नहीं हो सकती । लेकिन विदेश में जाकर भारतीयों की सेवा करने के लिए आदमियों का मिलना आसान नहीं । कुछ महीनों तक उनकी अवस्था डॉवा-डोल रही, लेकिन फिर संभल गए ।"[1] इस उद्धरण में हिन्दी के ग्यारह शब्द हैं यथा- असहयोग, परीक्षा, देश, स्वतंत्रता, महान, संग्राम, लक्ष्य, आवश्यकता, देश,सेवा, और आस्था । ये शब्द सरल है और प्राय: बोलचाल की हिन्दी में प्रयुक्त किए जाने वाले हैं। सात शब्द अरबी फारसी के हैं, जो तैयार, लेकिन, साला, आदमी, कभी, आसान और नौजवान हैं। इन शब्दों का प्राय: हिन्दी में प्रयोग होता है । शब्दों के चयन और वाक्यों के गठन में कोई विशेष आग्रह नहीं । विदेशी या संस्कृत शब्दों के प्रयोग से भाषा को कठिन बनाने का प्रयास भी नहीं । बोलचाल में प्राय: उपर्युक्त उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रयोग किया जाता है । "सतमी के बच्चे" में भाषा का पात्रानुकूल प्रयोग हुआ है। लेकिन इसमें 'गफलत'[2] नामक अरबी शब्द का प्रयोग हुआ है, जो साधारण पाठक के लिए दुर्बोध है।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 91
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 50

ग्रामीण वातावरण चित्रण के संदर्भ में यत्रतत्र ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है । उदाहरण के लिए चाँचर[1], चौरा[2], जडैया[3], पनिऔवा[4], पिछुआ[5], रछपाल[6] आदि ऐसे शब्द हैं। साधारणतया वर्णन को चमत्कारिकता देने के लिए उपमालंकार का प्रयोग किया जाता है। "सतमी के बच्चे" में उपमालंकार का प्रयोग अनेक स्थानों में हुआ है । उदाहरण के लिए 'घड़ी के पुर्जो की तरह मन से' ।[7] एक अन्य स्थान में उपमा का प्रयोग इस प्रकार हुआ है- "जैसे लोहू और पीप बहते-बहते कोढ़ी का घाव सुन्न पड़ जाता है, बैसे ही, शैशव से घात-प्रत्याघात सहते सहते राजबली का दिल सुन्न हो गया था ।"[8] यहाँ 'कोढ़ी के सुन्न घाव' उपमान के रूप में प्रयोग घृणित है ।

"सतमी के बच्चे" में लिंग संबन्धी असंगतियाँ भी आ गई हैं । उदाहरण के लिए एक वाक्य है 'उसकी संपत्ति थे दो पुराने छोटे छोटे खपडैल के घर"[9]-यहाँ "संपत्ति थे' की जगह 'संपत्ति थी' का प्रयोग चाहिए था ।

"सतमी के बच्चे" में लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुआ है, जिससे भाषा में सरलता आ गई है । उदाहरण के लिए 'धोबी बसि के का करे, दीगंबर के गाँव',[10] 'जिसकी लाठी उसकी भैंस',[11] 'अकेला चना भाड नहीं फोड सकता'[12] आदि ।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 1
2. "सतमी के बच्चे" – पृ 17
3. "सतमी के बच्चे" – पृ 6
4. "सतमी के बच्चे" – पृ 3
5. "सतमी के बच्चे" – पृ 2
6. "सतमी के बच्चे" – पृ 17
7. "सतमी के बच्चे" – पृ 17
8. "सतमी के बच्चे" – पृ 79
9. "सतमी के बच्चे" – पृ 1
10. "सतमी के बच्चे" – पृ 35
11. "सतमी के बच्चे" – पृ 12
12. "सतमी के बच्चे" – पृ 11

"सतमी के बच्चे" की भाषा के बारे में इसके प्रकाशकीय में इस प्रकार बताया गया है कि "सीधी-सादी भाषा, सरल भाव, चुभते हुए व्यंग्य, देहाती मुहावरे और साधारण होने पर भी असाधारण से लगनेवाले प्लाट-महापंडित राहुल साँकृत्यायन के कथासंग्रह में आपको यह सभी द्वन्द्व मिल सकेगा ।"[1]

आम तौर पर कहा जा सकता है कि "सतमी के बच्चे" में प्रयुक्त भाषा साधारण जनता के लिए भी बोधगम्य है ।

उद्देश्य

साहित्यकार का उद्देश्य, मनुष्य जीवन की व्याख्या है । उपन्यास की अपेक्षा कहानी में उद्देश्य स्पष्टीकरण विशद नहीं । उद्देश्य स्पष्टीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है । उद्देश्यस्पष्टीकरण के बारे में "आदर्शालोचन" में इस प्रकार कहा गया है "कहानीकार का उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, वह अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए । उसकी और पात्रों के वार्तालाप में अथवा कहानी के अंत में केवल एक संकेतमात्र ही देना है । अधिक स्पष्ट होने से उद्देश्य उपदेश बन जाएगा। यदि लेखक अपना उद्देश्य व्यंग्य ही रखेगा, तो इससे उसकी रचना सौन्दर्य की वृद्धि होगी ।"[2]

उपर्युक्त दृष्टि से देखें तो "सतमी के बच्चे" की कहानियाँ सफल नहीं हुई हैं । इसमें राहुलजी का उद्देश्य ही सब कहीं मुखरित हो उठा है । आधुनिक युग में मानव विकास के लिए रोक लगानेवाले तत्व हैं. सामाजिक वैषम्य एवं पूँजीवाद । राहुल की राय में मानव विकास का पथ प्रशस्त करने के लिए एक ही मार्ग है साम्यवाद । 'ठाकुरजी' में शिक्षित एवं अशिक्षित भारतीयों की अंधश्रद्धा पर व्यंग्य है । सतमी और राजबली ग्रामीण जीवन के आभावों के प्रतीक हैं । इनका संपूर्ण जीवन पेट की

---

1. "सतमी के बच्चे" – 'प्रकाशकीय' से
2. डॉ. श्यामसुन्दरदास – "आदर्शालोचन" – पृ 38

समस्या में व्यतीत होता है। यह समस्या चलती रहती है । लेखक इस कटुथथार्थ के सुधार की कामना भी करता है ।

"सतमी के बच्चे" की प्रत्येक कहानी में भारत की स्वाधीनता के साथ धीरे धीरे आनेवाली सामाजिक क्रांति की ओर भी संकेत है । यह संकेत सुख समृद्धि की प्राप्ति की आशा को भी व्यक्त करता है । "इस तरह सतमी को अब अच्छे दिनों की आशा हो चली थी"[1] – यह वाक्य इस तथ्य की पुष्टि करता है । "सतमी के बच्चे" में अभावग्रस्त, पीड़ीत, अशिक्षित एवं संघर्षमय जीवन व्यतीत करनेवाले भारतीय कृषक जीवन का चित्र खींचना, साथ ही साथ अंधविश्वासों की जगडबन्दी में छटपटाते भोलेभाले मनुष्यों की अभिशप्त नियति को दर्शाना राहुल सांकृत्यापन का लक्ष्य रहा था। राहुल, सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को समाज की उन्नति में बाधक समझते थे । लेखक को आश्यर्य है कि विज्ञान के इस युग में शिक्षित लोग भी सामाजिक कुरीतियों से मुक्त नहीं । मनुष्य को अपनी भुजाओं पर विश्वास रखना चाहिए । समाज को पाखंडी साधुओं व महात्माओं से बचाना है, क्योंकि ये लोग समाज का शोषण करनेवाले हैं । तभी समाज की उन्नति संभव है ।

"सतमी के बच्चे" में कहानीकार का उद्देश्य कहानी कहने की अपेक्षा उद्देश्य स्पष्टीकरण मुख्य रहा । इसकी अधिकार कहानियों में उद्देश्य की सूक्ष्म व्यंजना की अपेक्षा अभिधात्मक रूप में है । 'डीहबाबा', 'दलसिंगार', 'पाठकजी', 'जैसिरी' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं ।

संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि "सतमी के बच्चे" की कहानियाँ तथ्य और कला की दृष्टि से यथार्थपरक हैं । इसमें राहुल ने कल्पना को हाथ डालने नही दिया है । यह कृति जीवन का खुला दरवाजा ही है ।

---

1. "सतमी के बच्चे" – पृ 6

****

तीसरा अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

वोल्गा से गंगा

राहुल सांकृत्यायन

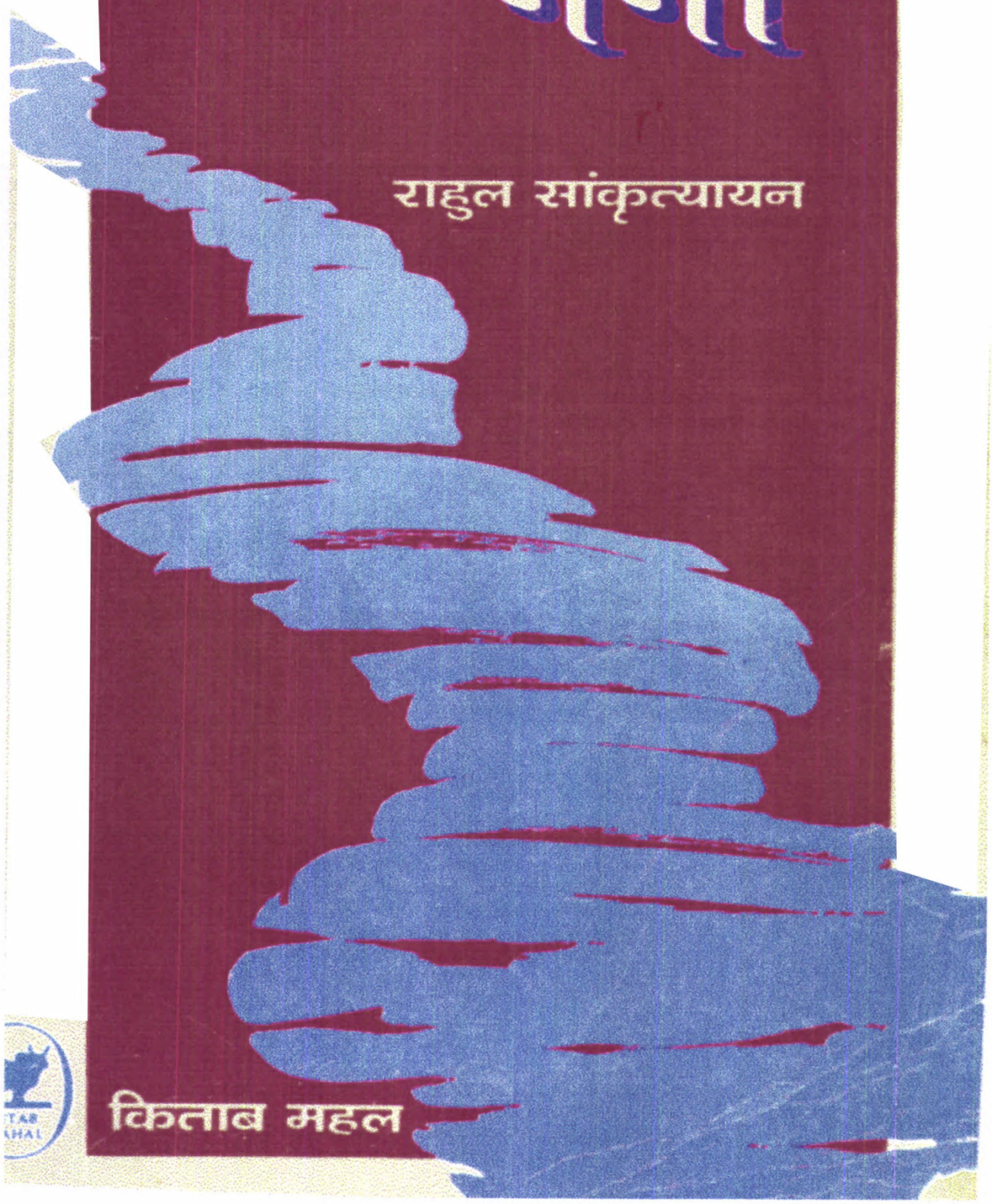

किताब महल

सारांश

''वोल्गा से गंगा'' का कथ्य, अन्य संकलित कहानियों के कथ्य की अपेक्षा अत्यंत तीखा है। इसमें महापंडित राहुल सांकृत्यायन का ऐतिहासिक - दार्शनिक व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। यहाँ उन्होने गांधिवाद, मार्क्सवाद और बौद्ध धर्म संबन्धी अपने विचारों को खुले रूप से स्पष्ट किया है। इसी कारण उन्होंने शिल्प के परंपरागत दायरे को तोड डाला। ''वोल्गा से गंगा'' तो राहुलजी के गंभीर अध्ययन एवं अपार पांडित्य का परिणाम है। यह ऐतिहासिक कहानी संकलन हिन्दी कहानिसाहित्य के लिए ही नहीं, संपूर्ण साहित्य केलिए एक चुनौती है।

तीसरा अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

"वोल्गा से गंगा" हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं, भारतीय वाङ्मय के लिए भी एक मील का पत्थर है, जो राहुल सांकृत्यायन के इतिहास एवं पुरातत्व संबन्धी अध्ययन का सफल परिणाम है । इस अपूर्व कहानीसंकलन में दार्शनिक राहुल ने छः हज़ार ईसवी पूर्व से लेकर सन् उन्नीस सौ बयालीस ईसवी तक के मानव समाज के ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास का जीवन्त चित्रण किया है । इस कृति में मानव जाति के विकास क्रम को व्यवस्थित तथा रोचक शैली में लिपिबद्ध किया गया है । इस कृति के लिखने की प्रेरणा का उल्लेख करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने स्वयं लिखा है – "मानव समाज की प्रगति का विवेचन मैंने अपने ग्रंथ मानव समाज में किया है । इसका सरल चित्रण भी किया जा सकता है और उससे प्रगति के समझने में आसानी हो सकती है । इसी ख्याल ने मुझे "वोल्गा से गंगा" लिखने पर मजबूर किया ।"[1] स्पष्ट है कि मानव समाज के विकास का चित्रण राहुल का लक्ष्य था । उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि मानव समाज के विकास के संबन्ध में लिखने की प्रेरणा उन्हें श्री. भगवतशरण उपाध्याय के "सवेरा संघर्ष गर्जन" से मिला है । मानव समाज के क्रमानुगत विकास के चित्रण के लिए राहुल ने भारोपीय जाति को माध्यम बनाया है, जिसका कारण भी उन्होंने स्पष्ट किया है ।[2]

---

1. राहुल सांकृत्यायन – ""वोल्गा से गंगा"" – "प्रथम संस्करण का प्राक्कथन"
2. राहुल सांकृत्यायन – ""वोल्गा से गंगा"" – "प्रथम संस्करण का प्राक्कथन"

यद्यपि "वोल्गा से गंगा" की कहानियाँ काल्पनिक हैं, तो भी ये पाठकों को पूर्ण रूप से कल्पना में विचरण नहीं कराती हैं। इनकी कल्पना राहुलजी के पुरातत्व एवं इतिहास के अध्ययन से विस्यूत दृष्टि की सहचरी कल्पना है। "वोल्गा से गंगा" की आधारतन्दु का उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है कि "मात्र कल्पना को ही अपनी आधारशिला नहीं बनाए हैं, बल्कि एक एक कहानी के पीछे उस युग के संबन्ध की वह भारी सामग्री है, जो दुनिया की कितनी ही भाषाओं, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, मिट्टी, पत्थर, ताँबे, पीतल, लोहे पर सांकेतिक-व-लिखित साहित्य अथवा अलिखित गोतों, कहानियों, रीति-रिवाज़ों, टोटके-टोनों में पाई जाती हैं।"[1] राहुल ने अपने समस्त चिन्तन को घनीभूत करके इन कहानियों की रचना की। इनमें कहानीकार का इतिहासबोध तथा प्रखर यथार्थदृष्टि का वैज्ञानिक सम्मिलन है।

"वोल्गा से गंगा" में कुल मिलाकर बीस कहानियाँ हैं, जो क्रमशः 'निशा', 'दिवा', 'अमृताश्व', 'पुरुहूत', 'पुरुधान', 'अंगिरा', 'सुदास', 'प्रवाहण', 'बन्धुलमल्ल', 'नागदत्त', 'प्रभा', 'सुपर्ण यौधेय', 'दुर्मुख', 'चक्रपाणि', 'बाबा नूरदीन', 'सुरैया', 'रेखाभगत', 'मंगलसिंह', 'सफदर' और 'सुमेर' हैं। इसकी प्रथम चार कहानियाँ प्रागैतिहासिक काल की हैं, जो केवल कल्पनाजन्य नहीं हैं। इनमें जो-जो मार्के की बातें हैं, वह सब राहुलजी के इन्दु-यूरोपी तथा इन्दु ईरानी भाषाशास्त्र विषयक अध्ययन का परिणाम है। परिवार की उत्पति ("Origin of Family, Private Property and State" by Angles) भी इसका आधार है। अगली चार कहानियों के पीछे भी साहित्यिक प्रमाण हैं वेद, ब्राह्मण, महाभारत, पुराण और बौद्ध ग्रंथों के अट्ठकथा नाम से प्रसिद्ध भाष्य। बाकी सब कहानियों के पीछे भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता है।[2]

---

1. राहुल सांकृत्यायन – "वोल्गा से गंगा" – 'द्वितीय संस्करण पर दो शब्द'
2. श्री. भदन्त आनन्द कौसल्यायन – "वोल्गा से गंगा" – 'परिशिष्ट' से

"वोल्गा से गंगा" की प्रथम छः कहानियों में आर्यों के गुफा जीवन, भारत आगमन एवं राज्य स्थापना से संबन्धित घटनाएँ हैं । आगे की सात कहानियों में आर्यों के सामाजिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक जीवन के विकास की झांकी मिलती है । 'चक्रपाणी', 'बाबा नूरदीन' और 'सुरैया' में मुस्लीम शासनकालीन भारत का चित्रण है । 'रेखाभगत', 'मंगलसिंह', 'सफदर' और 'सुमेर' में अंग्रेजी शासनकाल के भारत की स्थिति का चित्रण है । 'सुरैया', 'नागदत' और 'सुमेर' में विदेश यात्रा का चित्रण भी है । अन्य सभी कहानियाँ रूस की प्रसिद्ध नदी वोल्गा से आरंभ होकर भारत की नदी गंगा की ओर अग्रसर होती हैं । इन कहानियों की विशेषता यह है कि प्रत्येक कहानी के नाम के साथ ही उस समय का भी अंकन हुआ है, जब कहानी घटी है । इससे पाठकों को युग का बोध आसानी से होता है ।

खंड – क कध्यगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

पहले इस संकलन की कहानियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना संगत होगा ।

1. **निशा (6000 ई.पू)** – प्रथम कहानी 'निशा' आज से तीन सौ इकसठ पीढी पहले की हिन्दी यूरोपीय जाति की कहानी है, जो रूस के वोल्गा नदी तट पर रहती होगी । मानवता के प्रारंभिक चरण में मानव कबीलों में रहते थे । स्त्रियाँ कबीले की स्वामिनियाँ थीं । यह कहानी सोलह सदस्यवाले एक कबीले की है, जो संपूर्ण परिवार के साथ पर्वत गुहा में रहता है । कहानी की नायिका, निशा वृद्धा थी, जो अपने परिवार की स्वामिनी थी । उसको अपने परिवार पर पूर्ण अधिकार था । उस समय

विवाह-प्रथा नहीं थी । पति-पत्नी संबन्ध अस्थाई था । किसी स्त्री का पुत्र भी ज़रूरत के मुताबिक उसका पति हो जाता था । काल के बीतने पर निशा वृद्ध होती

जाती है और उसकी सहत्वाकांक्षा घटती जाती है । परिवार के पुरुषों की दृष्टि में अपनी ही पुत्री लेखा की बढ़ती हुई महत्ता को देखकर निशा ईर्ष्यालु हो जाती है और पुत्री को नदी में डुबाने की कोशिश करती है । इस प्रयास में दोनों वोल्गा की भेंट हो जाती हैं । परिवार की बलिष्ठ स्त्री रोचना, निशा परिवार की स्वामिनी बनती है । डार्विन के विकासवादी सिद्धांतों को अनुमोदित करने वाली इस कहानी का आदिम मनुष्य पशुओं से थोड़ा ही ऊपर था । इसमें आदिम मानव के बर्बर द्वन्द्व का सजीव चित्रण मिलता है । उसके जीवन-यापन और रक्षा के उपकरण सीमित एवं भाषा अविकसित थी । वह घर बनाना एवं खेती करना नहीं जानता था ।

2. दिवा (3500 ई.पू.) - यह आज से सवा दो सौ पीढ़ी पहले के आर्यजन की कहानी है, जो वोल्गा तट के मध्यभाग के जीवन का पर्दाफाश है । उस समय भारत, ईरान और रूस की श्वेत जातियों की एक जाति थी, जिसे हिन्दी-स्लाव या शतवंश कहते हैं ।[1] इसमें पहली कहानी निशा के मातृ-सतात्मक पाषाण-युगीन शिकारी परिवार से आगे एक ही मातृमूल के कबीलाई समाज का चित्रण है । इस काल तक आते आते कबीलाई मानव-समाज, श्रम, संगीत, संस्कृति और कृषि की आरंभिक अवस्था तक पहुँच चुका था । प्रथण दृश्य में दिवा और सूरश्रवा का प्रेमालाप है, जिनकी माँ एक ही थी । इसमें यह सूचना भी है कि दिवा इससे पहले भी अनेक पुरुषों से प्रेमालाप करती थी । दूसरे दृश्य में 'जन' का संतुलित रूप दिखाया गया है। अब लोग लकड़ी की दीवारों और फूस से छाए हुए विशाल झोपड़े में रहने लगे । एक सौ पचास व्यक्ति एक ही घर में रहते थे । सारे जन की एक नायिका थी । शिकार, नृत्य, गृहनिर्माण आदि का संचालन जन समिति करती थी ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – सं. – 1998 - पृ. 29

सबका समान अधिकार था । ये सम्मिलित रूप से काम भी करते थीं । अब जन, एक जीवित माता का राज्य नहीं, बल्कि अनेक जीवित माताओं के परिवारों का एक परिवार, एक जन है । अर्थात् अब जन समिति का शासन है । तीसरे दृश्य में यह दिखाया गया है कि निशा-जन की नायिका दिवा की अवस्था पैंतालीस है । निशाजन की जनसंख्या के बढ़ने पर भोजन की कमी आ गई । इसके निवारणर्थ निशाजन और उषाजन के बीच युद्ध हुआ । इसमें निशाजन की विजय हुई । कुरुजन, शक्तिशाली निशाजन से युद्ध करने से डरता था । आगे के दृश्य में युद्ध की विभीषिका को बर्बर धर्म घोषित किया गया है । निशाजन से डरकर कुरुजन वोल्गा तट को छोड़कर भाग जाने का विचार करता है, यद्यपि उनके मन में प्रिय माता वोल्गा को छोड़ने में दुःख है । इस कहानी में परिव्रजन का कारण और अपने स्थान को त्यागने की मनुष्य सुलभ पीड़ा का सशक्त चित्रण मिलता है । यहाँ इस सार्वकालिक तत्व को प्रस्तुत करना भी राहुलजी का लक्ष्य होगा कि युद्ध की बर्बरता पर उस युग के सदाशयों ने भी विचार किया था ।

3. <u>अमृताश्य (3000ई. पू.)</u> – यह कहानी दो सौ पीढी पहले के एक आर्य कबीले की कहानी है । उस वक्त भारत और ईरान की श्वेत जातियों का एक कबीला (जन) था और दोनों का सम्मिलित नाम आर्य था ।[1] इसमें पामीर के पठार या उत्तर कुरुभूमि की तत्कालीन जीवनगाथा संजोई गई है । इसका घटनास्थल मध्य एशिया और पामीर है । यह कहानी इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें समाज का एक परिवर्तित रुप दिखाया गया है, अर्थात् इस युग में पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था अस्तित्व में आई ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 43

स्त्रियों को विशेषाधिकार प्राप्त था कि वह विवाह तो किसी से भी कर सकती थी, लेकिन अपने प्रेम को अस्थाई रूप में कहीं भी लुटा सकती थी । इसके प्रथम दृश्य में कृच्छ्राश्व की पत्नी सोमा और ऋज्राश्व का मिलन है । ऋज्राश्व सोमा के पुराने प्रेमी भी थे । सोमा का पुत्र अमृताश्व की सूरत ऋज्राश्व से मिलती है । अब सोमा ऋज्राश्व की रात्रि-सेवा में तत्पर हो जाती है । अतिथियों और मित्रों के पास स्वागत के रूप में अपनी स्त्री को भेजना उस समय का सर्वमान्य सदाचार था । इस कहानी के दूसरे दृश्य में मधुरा और अमृताश्व का प्रेमालाप है । अमृताश्व अवध कुल में जाकर उसके पिता की आज्ञा से उससे विवाह कर अपने कुल में लौट आता है । लेकिन मधुरा को नारी की स्वतंत्रता पर शंका है । अमृताश्व मधुरा को अधिकतम स्वतंत्रता का वचन भी देता है । अब मानव-समाज ने आखेट युग से निकलकर पशुपालन के युग में प्रवेश किया है । अंतिम दृश्य में आते आते यह विदित होता है कि आखेट के क्षेत्र के साथ ही इस युग में पशुओं को लेकर भी युद्ध होने लगे । अमृताश्व कुरुकल का महापितर बनता है । अमृताश्व के स्थानारोहण महोत्सव में डूबे हुए कुरुओं के पशुओं का अपहरण पुरुओं द्वारा होता है । युद्ध में पुरुओं की जबरदस्त हार होती है । कुरुओं ने पुरुग्राम के बच्चों और जवानों को तो मार डाला और स्त्रियों को अपने साथ ले आए। यह शासन लडाके महापितर का शासन है, जो जनमत का ख्याल रखते हुए भी बहुत कुछ अपने मन से निर्णय करता है । अब अपना अपना परिवार, अपना अपना पशुधन और उसका हानिलाभ भी अपने ही को था । पर सबके संकट के वक्त जन फिर एक बार पुराने जन का रूप लेना चाहता था ।

4. <u>पुरुहूत (2500ई. पू.)</u> – यह आज से एक सौ अस्सी पीढ़ी पहले की इन्दो-ईरानी जाति की कहानी है और स्थान ताजिकिस्तान है । इस कहानी के प्रथम दृश्य में रोचना और पुरुहूत का वार्तालाप है । रोचना पुरुहूत के मातुल कुल की कन्या है,

नदी तट पर स्थित ऊपरवाले मद्रों और पुरुओं
से युद्ध होता रहता था । यहाँ राहुल यह बताना चाहते
जगह बाँधकर रखने के लिए नहीं पैदा किया गया ।[1] दूसरे दृश्य में
के मद्र परदादा और पुरुहूत का वार्तालाप है । तीसरे में तीस वर्ष की आयु में पुरुहूत ऊपरवाले पुरुओं और मद्रों का मुखिया चुन लिया जाता है । नीचेवाले पर्शुओं और मद्रों के अत्याचार के कारण दोनों वर्गों की दूरियाँ निरन्तर बढ़ती गईं । जाड़े के समय बड़ी संख्या में व्यापार के लिए बाहर गए पर्शुओं को उचित अवसर पाकर पुरुहूत ने विनष्ट किया । उसके बाद उन्होंने निचले मद्रों का नाश किया । जीती हुई भूमि को उत्तर मद्रों और पुरुओं ने आपस में बाँट लिया । इस प्रकार पुरुहूत प्रथम इन्द्र बनता है । इस युग में कृषि और ताँबे का उपयोग शुरु हुआ था ।

उपर्युक्त चार कहानियाँ राहुल सांकृत्यायन के इन्दो-यूरोपीय और इन्दो ईरानी भाषाओं के गहरे अध्ययन का परिणाम है ।

5. <u>पुरुधान (2000ई. पू.)</u> – यह कहानी आज से एक सौ आठ पीढी पहले की हिन्दी-आर्य जाति की कहानी है, जो ऊपरी स्वात में रहती होगी । भारतीय सभ्यता के विकासक्रम की दृष्टि से यह काल पौराणिक स्मृतियों का काल है । इसमें देवासुर संग्राम की पुराकथा को मानवीय धरातल देकर एक नई अर्थवत्ता देने का प्रयास है । आर्यों के इस पहाडी समाज में दासता स्वीकृत नहीं हुई थी । ताँबे, पीतल के हथियारों का उपयोग और व्यापार का ज़ोर बढ़ चला था । कहानी यह है कि उषा के माता-पिता बीस वर्षीय उषा का पचास वर्षीय सुमेध से विवाह कराते हैं। क्योंकि उसके पास

---

1. "वोल्गा से गंगा" – सं. 1998 – पृ 47

पशुधन अधिक था । तत्कालीन समाज में वर्ष में एक बार इन्द्रोत्सव मनाने की परंपरा थी । इस उत्सव में तरुण-तरुणी स्वतंत्र रूप से मिल सकते थे । असुर पुष्कलावती में रहनेवाले थे, जो आर्यों को पशुमानव समझते थे । पुरुधान और उसके वर्ग के कुछ लोग जब उनकी भाषा समझने लगे, तब इस सत्य का पर्दाफाश हुआ और दोनों में शत्रुता बढ़ने लगी । अंत में सुमेध की मृत्यु हो जाती है । इससे पहले ही उषा, पुरुधान को पति के रूप में स्वीकार कर चुकी थी । सुवास्तु की सुन्दरियाँ चतुर असुर शिल्पियों के हाथ के बने आभूषणों पर मुग्ध थीं । इसलिए हर साल अनेक आर्य स्त्रियाँ पुष्कलावती आती थीं । पुष्कलावती का नगराधिपति, आर्य सुन्दरियों के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उन्हें लूटने के उद्देश्य से युद्ध छेड़ता है । पुरुधान की सेना असुरराज को दयनीय रूप से पराजित करती है । इस युद्ध में व्यापारियों, स्त्रियों और बच्चों को छोड़, अन्य सभी लोग मारे गए । पुष्कलावती के अनेक भागों में आग भी लगा दी गई । राहुल इसको देवासुर संग्राम की शुरुआत मानते हैं ।

6. अंगिरा (1800 ई. पू) – यह आज से एक सौ पचीस पीढ़ी पहले की हिन्दी – आर्य जाति की कहानी है । इसका आधार ऋग्वेद है । प्रथम दृश्य में मद्र के पाल और सौवीर के वरुण नामक दो मित्रों की बातचीत है, जिससे पता चलता है कि वे असुरों की अपेक्षा आर्यों की वैभवहीनता पर सोचते हैं और आर्यों के आर्यत्व की रक्षा करना चाहते हैं । इसके लिए वे गांधार नगर के अंगिरा ऋषि के यहाँ जाने को सोचते हैं । अंगिरा ऋषि लिंगपूजा, जाति-भेद, पुरोहित प्रथा, राजधर्म आदि के विरोधी थे तथा असुरों के साथ आर्यों का रक्त-सम्मिश्रण नहीं चाहते थे । उनका आग्रह था कि आर्य अपने रक्त तथा दूसरे आचार व्यवहारों की शुद्धता को न छोडें । ऋषि की राय में जीवन की आवश्यकताओं में जो कुछ भी ज़रूरी लगे, उसे ले लेना चाहिए । ऋषि के

पास ज्ञानार्जन के लिए सुदूर से भी आर्यकुमार आए । ऋषि ने दूर दूर से उच्चजाति के घोड़े घोडियों को जमाकर वंशवृद्धि की थी । राहुल की राय में लोकप्रिय सैंधव घोड़ों का आरंभ ऋषि अंगिरा के अश्वस्थ से ही हुआ था ।[1] इस कहानी में यह भी दिखाया गया है कि एक आर्य तरुण सुमित्र, असुरों के संपर्क में आ गया था, जो वरुण के प्रयत्नों से बच गया और आर्यजनता इस प्रकार पहली भीषण परीक्षा में सफल हुई । वरुण ने असुरों को न छोड़ा और आर्यों को असुरों के प्रभाव से अलग रखने के लिए उसने एक अलग आर्यपुर बसाया और ऋषि अंगिरा की बतलाई बातों को काम में लाना शुरु किया ।

7. सुदास (1500ई. पू.) – सुदास कहानी आज से एक सौ चवालीस पीढी पहले की वैदिक आर्य जाति की है और स्थान कुरु पांचाल है । इसी समय प्राचीन ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वज आदि ऋग्वेद के मंत्रों की रचना कर रहे थे और इसी समय आर्य पुरोहितों की सहायता में कुरु पंचालक के आर्य सामन्तों ने जनता के अधिकार पर सबसे जबरदस्त प्रहार किया ।[2] जेता ऋभु-पुत्र माद्र की लड़की अपाला से, सुदास भूखे प्यासे राजगीर के रूप में मिलता है । अपाला उसकी सहायता करती है । अपने माता-पिता की एकमात्र संतान सुदास अपाला से प्रेम करता है । अपाला के मन में भी सुदास के प्रति प्रबल आकर्षण है । लेकिन वह विवाह के बाद सुदास के साथ पांचाल जाने के लिए तैयार नहीं, जहाँ स्त्रियों को स्वतंत्रता नहीं, मानवों के साथ मानवोचित व्यवहार नहीं होता । दूसरे दृश्य में सुदास जेता और अपाला से यह कहकर विदा लेता है कि माता-पिता को देखकर वापस आ जाऊँगा । वह अपने देश

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 82.
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 105.

के लिए जाता है । माता के प्रति विशेष स्नेह और अपाला की याद, दोनों उसे उद्विग्न कर रहे थे । सुदास अपने पिता को, पांचाल की सारी भूमि जनों को वापस कर देने की प्रेरणा देता है। दिवोदास सम्मति भी देते हैं। वे राजाओं की वृत्ति को 'दस्युवृत्ति' कहते हैं।[1] वे अपने पुत्र को इसके लिए प्रेरित करते हैं कि वह पिता के पतन से शिक्षा लेकर प्रयत्न करे । सुदास को अपाला के पास जाने का कोई रास्ता न दीख पड़ती है।

अंत में सुदास पंचालकों का राजा बनता है और आर्य-अनार्य दोनों की सेवा करने का संकल्प लेता है । इसके लिए जन को विश्वास दिलाना था कि उस पर देवताओं की कृपा है । ऋषि-ब्राह्मण उनकी प्रशंसा करने पर ही यह संभव है । ऋषियों की प्रशंसा पाने के लिए उसे हिरण्य, सुवर्ण, पशुधान्य, दासी-दास्य आदि दान देना पड़ा । पीवर – गोवत्स के मांस और मधुर सोमरस से तोंद फुलाए इन ऋषियों की राय में वस्तुतः अब सुदास बहुत दान देनेवाला हुआ।[2]

8. प्रवाहण (700ई. पू) – प्रवाहण कहानी आज से 108 पीढ़ी पहले पांचाल में घटी कहानी है, जबकि उपनिषद और ब्रह्मज्ञान की रचना शुरु हुई थी।[3] इसमें बृहदारण्यक के प्रसिद्ध गार्गी-याज्ञवल्क्य शास्त्रार्थ को कथानक का आधार बनाया गया है । इसके अलावा छान्दोग्य तथा बौद्धों की अट्ठकथाएँ भी इसके आधार हैं। प्रवाहण पांचाल राजा का पुत्र एवं लोपा की बुआ का पुत्र है। वह मामा के पास वेदाध्ययन के लिए जाता है । राजा बनने पर प्रवाहण राजवाद, ब्रह्मवाद, पुनर्जन्मवाद, पितृयानवाद,

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 103
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 104
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 120

यज्ञवाद आदि को जन्म देता है । लेकिन लोपा इनका विरोध करते हुए कहती है कि इन वेदों में मानवों के लिए कोई सुख समृद्धि की योजना नहीं । प्रवाहण ने अपने शोषण कार्य को सफल रुप में आगे बढ़ाने के लिए ही उपनिषद् रहस्य की उद्भावनी की है।

9. 'बन्धुलमल्ल (490ई.पू) – यह आज से सौ पीढ़ी पहले की ऐतिहासिक कहानी है, जिसके आधार बौद्ध ग्रंथ हैं । इससे संबन्धित इतनी अधिक सामग्री थी कि राहुलजी ने एक अन्य उपन्यास "सिंह सेनापति" की भी रचना की ।[1] इस कहानी का मुख्य केन्द्र श्रावस्ती (कोशल) था। उस वक्त तक सामाजिक विषमताएँ बहुत बढ़ चुकी थीं। धनी-व्यापारी वर्ग समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका था। परलोक का रास्ता बतलानेवाले, नरक के उद्धार करनेवाले कितने ही पथ-प्रदर्शक पैदा हो गए थे, किन्तु गाँव-गाँव में दासता के नरक को धधकता देखकर भी सबकी आँखें उधर से मूँदी हुई थी।[2]

कहानी इस प्रकार है कि बन्धुलमल्ल और मल्लिका कुशीनारा में रहनेवाले हैं । कुशीनारा में प्रजातंत्र भवन के गणपति, बन्धुल को उपसेनापति का पद देना चाहता था । लेकिन एक सदस्य रोज़मल्ल ने कहा कि इससे पहले बन्धुल की परीक्षा होनी चाहिए । इस परीक्षा में बन्धुल ने धोखा खाया। नाराज़ होकर वह मल्लिका के साथ श्रावस्ती चला जाता है। वहाँ कोशलराज प्रसेनजित अपने सहपाठी बन्धुल को कोशल का सेनापति बनाता है। बन्धुल के बढ़ते प्रभाव को देखकर उसके विरोधियों ने उसके विरुद्ध राजा को भड़काया । लेकिन धोखे के कारण बन्धुल और उसके दसों पुत्र खुद

---

1. "वोल्गा से गंगा" – 'परिशिष्ट' से
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 138.

लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए । वास्तविकता समझने पर प्रसेनजित दुःखी हुआ और अपने मन की सांत्वना के लिए उसने बन्धुल की बहन का पुत्र दीर्घकारायण को सेनापति बनाया। दीर्घकारायण प्रसेनजित से अपने मामा का बदला लेता है। विदूडभ के राजा बनने पर प्रसेनजित को निष्कासित कर देता है। सहायता के लिए वह अजातशत्रु के पास जाता है और वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है। राहुल इस कहानी में यह दिखाना चाहते थे कि इस युग में मालिक, दासों के पति-पत्नी संबन्ध को भी नहीं मानते थे। मालिक को दास की स्त्री को भी बेचने का अधिकार था। इस समय दासी से मालिक का बच्चा भी पैदा होता था।

10. नागदत्त (335ई. पू) – 'नागदत्त' कहानी का कथानक सिकन्दर के आक्रमण-कालीन भारत से संबन्धित है। इसके ऐतिहासिक आधार कौटिल्य का अर्थशास्त्र, यवन-यात्रियों के वृतांत, जायसवालजी की हिन्दू पालिटी और विन्सेंट स्मिथ का इतिहास है। कथा का विस्तार तक्षशिला से एथेंस तक है। नागदत्त वैद्य और विष्णुगुप्त ज्योतिष और सामुद्रिक यंत्रमंत्र के अधिकारी है। दोनों के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि उनमें गणसंस्था के प्रति सम्मान तथा धर्म एवं राजाओं के प्रति घृणा की भावना है। नागदत्त, पर्शुपुरी के सम्राट की बहन की चिकित्सा करके उसे स्वस्थ बनाता है। दक्षिणा के रूप में नागदत दासी सोफिया को माँगकर अपने देश यूनान के एथेंस नगरी ले जाता है। यह परिचय विवाह में परिणत हो जाता है। सलामी की खाड़ी देखने के लिए जाते समय समुद्र के भयंकर तूफान में दोनों एक दूसरे से लिपटकर मृत्यु का वरण करते हैं।

11. प्रभा (50ई.) – यह कहानी सिर्फ ऐतिहासिक कहानियों की दृष्टि से नहीं, बल्कि विशुद्ध साहित्यिक कहानियों की कसौटी पर भी राहुल की अविस्मरणीय सृष्टि है। इसमें प्रेम के आदर्श रूप को दिखाने की कोशिश है। इस कहानी ने कहानी के रूप में अच्छी ख्याति पाई है। इसके पीछे अश्वघोष के "बुद्धचरित" तथा "सौन्दरानन्द", सभी संस्कृत नाटक, विन्टर्निट्ज का "भारतीय साहित्य का इतिहास" और रीज़ डेविड्स का "बौद्ध भारत" भी है।[1]

कहानी इस प्रकार है। सरयू नदी की तैराकी प्रतियोगिता में सुवर्णाक्षी पुत्र अश्वघोष और यवनकुल की कन्या प्रभा प्रथम आते हैं। दोनों आपस में प्रेम करते हैं। लेकिन कुलीन ब्राह्मण कहलानेवाले अश्वघोष के माता-पिता इससे सहमत नहीं थे। अश्वघोष संस्कृत नाटककार एवं कवि है। वह प्रभा को अपने काव्य के लिए प्रेरणास्रोत मानता है। प्रभा, अश्वघोष को शारीरिक प्रेम की अपेक्षा आत्मिक प्रेम करने की प्रेरण देती है। वह अपने प्रेम को चिरस्थाई बनाने के लिए अपने को सरयू नदी के लिए समर्पित करती है। प्रभा के इस बलिदान से प्रेरणा प्राप्त कर अश्वघोष विख्यात नाटककार बनता है। अंत में वह पिता से अनुमति मांगकर बौद्ध भिक्षु बनता है। इसमें प्रभा और अश्वघोष केवल प्रेम ही नहीं करते, बल्कि जीवन और जगत के गंभीर प्रश्नों पर भी विचार-विमर्श करते हैं।

12. सुपर्ण यौधेय (420ई) – विष्यवस्तु की दृष्टि से इसे समाजेतिहासिक कहानी कहा जा सकता है। इसकी सामग्री गुप्तकालीन अभिलेख, रघुवंश, कुमारसंभव, अभिज्ञानशाकुन्तलम, और पाणिनी एवं चीनी यात्री फाहियान के यात्रा विवरणों से ली गई है। कहानी का नायक सुवर्ण मलावा का यौधेय है। वह वेद-वेदांगों का पंडित है।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – 'परिशिष्ट' से

वह राजशासन को दासवृति के रूप में स्वीकारता है और यौधेय भूमि के पुनरुद्धार करने का प्रण भी लेता है । इस कहानी के माध्यम से राहुलजी ने भारतीय जातियों और वर्णों के बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया को रेखांकित किया है । यथार्थ में यह कहानी संस्कृतियों की पृष्ठभूमि में निहित उनके सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक कारणों और यथार्थ की एक वस्तुनिष्ठ वैचारिक तलाश है । राजतंत्र और गणराज्य की भिन्न भिन्न राजनीतिक प्रवृतियों का संघर्ष इसमें है ।

13. दुर्मुख (630ई) – इस कहानी में हर्षकालीन सामाजिक, धार्मिक वातावरण पर प्रकाश डाला गया है । इसके पीछे हर्षचरित, कादंबरी, ह्वेन्यांग और इत्सिंग के यात्रा वृत्तांत हैं । यह कहानी एक ही युग के यथार्थ और उसकी सच्चाइयों को विभिन्न आयामों में सामने लाती है ।

इसके प्रथम दृश्य में हर्षवर्धन का आत्मकथन है । वह स्वयं कहता है कि हर्ष अपने को कोमल स्वाभाववाला एवं धर्म का रक्षक बतलाता है तथा यह व्यक्त करता है कि मेरे राज्य में चोरों डाकुओं का भय नहीं है । हर्ष बाण को अपना हितैषी नहीं समझता । हर्ष की राय में बाण ने उसके बारे में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है । दूसरे दृश्य में बाणभट्ट की आत्मकथा है । बाण के अनुसार, वह दरबारी कवि नहीं बनना चाहता था । उसकी, देशाटन में रुचि है । वह हर्ष को अच्छा कहता हुआ भी दोषी ठहराता है । हर्ष के चरित्र में दिखावा है । बाण कहता है कि हर्ष ने जो दान दिया है, वह शोषित जनों की आहों का ढ़ेर है । उनकी राय में ब्राह्मण राजा लोग पाखंड़ी हैं । तीसरे दृश्य में दुर्मुख की आत्मकथा है । नग्न-सत्य बोलने के कारण बाण का नाम 'दुर्मुख' है । वह राजाओं और ब्राह्मणों के खिलाफ है । वह राजव्यवस्था के रहते जन विकास असंभव मानता है और राजप्रासादों की ऊँचाई तथा वैभव में प्रजा के शोषण और उनके रक्त की छाया देखता है ।

G8534

14. चक्रपाणि (1200ई) – इसमें पृथ्वीराज और जयचंद के शासनकाल का चित्रण तथा तुर्कों और हिन्दुओं का संघर्ष भी दिखाया गया है । इसका स्रोत नैषध, खंडनखंडखाद्य एवं अनेक शिलालेखों तथा अभिलेखों में है । इस कहानी में 1200ई के भारतीय इतिहास के पतनोन्मुख स्वरूप को कनौज के राजघराने के माध्यम से सामने लाया गया है । इसके पहले दृश्य मे भारत में मुस्लीम शासन के प्रारंभ के बारे में बताया गया है । दूसरे में कनौज नरेश जयचंद के विलासी जीवन को चित्रित किया गया है । तीसरे में हर्ष और जयचंद का वार्तालाप है, जो प्रेम, धर्म एवं शासन से संबन्धित है । इससे पता चलता है कि जयचंद को पृथ्वीराज से वैमनस्य है । चौथे में कुमार हरिश्चन्द्र और चक्रपाणि राज्य की कमज़ोरियों के बारे में बातचीत करते हैं। पाँचवें में यह दिखाया गया है कि तुर्कों से युद्ध में जयचंद की मृत्यु होती है, जयचंद के बाद पुत्र हरिश्चन्द्र तुर्कों से युद्ध करता है और घायल होता है । घायल हरिश्चन्द्र चक्रपाणि की चिकित्सा से पुनः स्वस्थ होता है ।

15. बाबा नूरदीन (1300ई) – यह कहानी अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल के प्रगतिशील और समाजोपयोगी पक्षों को उजागर करती है । इस कहानी का मुख्य केन्द्र पटना है, जहाँ सूफी फकीर बाबा नूरदीन रहते हैं । अलाउद्दीन दिल्ली का बादशाह था । राज्य व्यवस्था की दृष्टि से कहानी में उसके शासन प्रबन्ध की प्रशंसा की गई है । इसमें नूरदीन के माध्यम से सूफी सन्तों के त्याग का वर्णन किया गया है, जिनके पास एक कंबल और कफनी को छोड़कर कुछ नहीं होता था । उनकी उदार धार्मिक भावना, हिन्दु-इस्लाम दोनों की अच्छी बातों को स्वीकार करना और प्रचार करना, उस युग के लिए सबसे उपयुक्त मार्ग थे ।

16. <u>सुरैया (1600ई)</u> – यह अकबर शासनकाल की कहानी है । इसके प्रथम दृश्य में अबुल फज़ल की बेटी सुरैया और टोडरमल का पुत्र कमल आपस में प्रेम करते हैं । दूसरे में, अकबर, बीरबल, टोडरमल और अबुलफसल का वार्तालाप है । हिन्दू-मुस्लीम एकता इनकी इच्छा है । मुगल सम्राट अकबर हिन्दू-मुस्लीम एकता पर अत्यधिक आग्रह रखते थे । उनकी राय में ये दोनों भिन्न जातियाँ अपने अपने धर्म के प्रति श्रद्दा रखते हुए भी एक दूसरे से विवाह-संबन्ध स्थापित करें । इसलिए अकबर, कमल-सुरैया के प्रेम का सम्मान करता है । दोनों विवाह के स्वप्न देखते हैं । सागर विजय के लिए जाते समय जहाज़ पर समुद्री डाकुओं के हमले में दोनों की मृत्यु होती है । इस कहानी द्वारा लेखक ने हिन्दू-मुस्लीम रक्त को सम्मिलित कराने का प्रयत्न किया है।

17. <u>रेखाभगत (सन् 1800ई.)</u> – यह ब्रिटीश साम्राज्यवाद के विरोध की कहानी है। इसमें अंग्रेजी शासनकाल के भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्था का चित्रण है । रेखाभगत नामक किसान के माध्यम से ईस्ट इंडिया कंपनी के अत्याचारों से पीडित जनता का चित्र इसमें है । कहानी के पूर्वार्द्ध में संवाद के माध्यम से ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्वरूप, प्रशासन और उसकी नीतियों की आलोचना की गई है । ज़मीदांरी प्रथा का इतिहास, कारणों और उसके तत्कालीन तंत्र से भी पाठकों को परिचित कराया गया है । कहानी के अंतिम भाग में रेखाभगत के नैतिक प्रतिकार से क्षुब्ध ज़मींदार के कारिन्दों के अनैतिक और अश्लीलतम अत्याचार की झांकी इसमें है। रेखाभगत ज़मींदार के चपरासी को सिर्फ अपने झोंपडी के ऊपर फली लौकी तोडने से मना करता है । इसके प्रतिशोध में ज़मींदार अपने पालतू गुण्डों के माध्यम से रेखाभगत से एक सेर दूध की मांग करता है । जबकि उसके पास दूध देनेवाले एक भी पशु नहीं था । दुधारु पशु के अभाव में ज़मींदार को दूध देने में वह असमर्थ हो

जाता है । तब ज़मींदार के आदमी ने रेखाभगत को मारा और उसकी आँखों के सामने ही उसकी पत्नी के स्तन से दूध निकाल लिया । इसके फलस्वरुप रेखाभगत बागी हो जाता है और अपने घर में आग लगाकर ज़मींदार एवं उसके कारिन्दों की हत्या कर देता है । इस कहानी के परिवेश में फ्रांस की क्रांति का हवाला देते हुए वहाँ की स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के सिद्धांत को सारे विश्व के लिए आदर्श रूप में आपनाने का सुझाव भी राहुलजी प्रस्तुत करते हैं ।

18. <u>मंगलसिंह (1857ई)</u> – यह कहानी सन् 1857ई. के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास, परिवेश एवं सामाजिक – सांस्कृतिक-धार्मिक यथार्थ पर आधारित है । यह कहानी तीन भागों में विभाजित है । पहले भाग में एनी रसल और मंगलसिंह के संवाद के माध्यम से तत्कालीन ब्रिटिश समाज, उसकी आर्थिक शक्तियों, औद्योगिक स्वरूप और भारत संबन्धी ब्रिटिश नीतियों को भारत के प्रति मार्क्स के दृष्टिकोण के आधार पर विश्लेषित किया गया है । दूसरे भाग में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नाना साहब आदि क्रांतिकारियों की सामंती महत्वाकांक्षाओं तथा विद्रोह की प्रगतिशील सीमाओं का विश्लेषण है । तीसरे भाग में सन् 1857ई. के विद्रोह की झांकी प्रस्तुत है । कहानी इस प्रकार है । वाराणसी के नरेश चेतसिंह का प्रपौत्र मंगलसिंह सन् 1857ई. के स्वतंत्रता संग्राम का प्रसिद्ध नायक था । वह भारत की समृद्धि को लौटाने के उद्देश्य से पादरियों की सहायता से इंगलैंड जाकर अध्ययन करता है । वह समानता का पक्षधर एवं कार्लमार्क्स और ऐंजिल्स से प्रभावित भी था । वह एक तरफ अंग्रेज़ों का विरोध करता था, तो दूसरी तरफ भारत के पुराण पंथियों की भी आलोचना करता था । इसका स्वतंत्रता-संग्राम के भागीदार सामन्तों पर विश्वास नहीं, बल्कि जनशक्ति पर विश्वास था । वह भारत की स्वाधीनता संग्राम में मेरठ के सिपाहियों का

नेता बनकर पूरब की ओ जाता है । इस यात्रा में गंगा में नाव घिर जाने से वह मारा जाता है ।

19. सफदर (1922ई.) – यह कहानी गाँधी-युग के भारतीय इतिहास पर आधारित है । कहानी का पूर्वाद्ध सफ़दर और शंकरसिंह के माध्यम से भारत के प्रति उपनिवेशवादी ब्रिटिश नीतियों की पोल खोली गई है । उत्तरार्द्ध में कांग्रेस के साथ साथ गाँधी की ऐतिहासिक भूमिका और उनकी नीतियों के स्वरूप, प्रभाव तथा परिणामों की समीक्षा और आलोचना की गई है । अंत में, आलोचना और असहमति के बावजूत गाँधीवाद की तत्कालीन भूमिका और महत्व को स्वीकारते हुए सफदर और शंकरसिंह का सपरिवार असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होना और उनका जेल जाना दिखाया गया है ।

20. सुमेर (1942ई.) – यह "वोल्गा से गंगा" की अंतिम कहानी है । यह कहानी सुमेर नामक एक हरिजन छात्र के माध्यम से गाँधीजी की अछूत नीति की आलोचना से प्रांरभ होती है । इसका आरंभ पटना में गंगा की बाढ़ के समय बाँध की रक्षा के लिए तैनात दो स्वयंसेवकों के संवाद के माध्यम से होता है । उनमें से एक रामबालक ओझा, एक साथ ही गांधीवादी और अभिजात्य-सुधारवादी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है । दूसरा स्वयंसेवक पात्र सुमेर अछूतोद्धार के नाम पर गाँधी की हरिजनवादी नीतियों की पोल खोलता है । कहानी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश शासन की शोषक नीतियों पर विचार किया गया है तथा द्वितीय विश्वयुद्ध और उसमें सम्मिलित होनेवाली शक्तियों के पक्ष-प्रतिपक्ष का विश्लेषण है । सुमेर, जो निम्नवर्गीय शोषित जातियों का प्रतीक है, इतिहास की माँग समझकर फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध लड़ने के लिए वायुसेना में

भरती होकर युद्ध में भाग लेता है । यहाँ राहुलजी ने फासिस्टों को साम्यवाद एवं मानवता विरोधी मानकर उनके विरुद्ध संघर्ष और प्रतिशोध की वकालत की है ।

कथ्यगत विशेषताएँ

वस्तुतः कहानी में विचार की अवधारणा वह बुनियादी तत्व है, जिसके अभाव में कथाकार उपयुक्त और प्रभावशाली कथानक का निर्माण नहीं कर सकता । "वोल्गा से गंगा" में विचारपक्ष ही प्रबल हो उठा है । इसमें राहुलजी के विचार जो हैं, उनका पूर्ण रूप से पर्दाफाश हुआ है । इसकी प्रारंभिक कहानियों में कल्पना का सहारा अधिक लिया गया है, पर आगे आते-आते राहुल के उग्र विचार अधिक झंकृत हो उठे हैं । इसमें उन्होंने निस्संकोच रूप से अपने विचारों को खुल्लमखुल्ला प्रकट किया है, जो सुई की नोक के समान चुभनेवाले हैं ।

"वोल्गा से गंगा" में राहुल सांकृत्यायन ने आदिमानव पर कहानियाँ लिखकर आदिमानव को निपट भौतिकवादी ठहराया है । आदिमानव का इतिहास प्रकृति के साथ संघर्षों का इतिहास है । वह प्रकृति को समझने में असमर्थ था, लेकिन प्रकृति को बदलने तथा अपने वश में करने का अदम्य आग्रह उसमें था । उसकी प्रमुख समस्या अपने अस्तिव को बनाए रखने की थी । 'निशा', 'दिवा' और 'अमृताश्व' कहानियों में इसका संकेत मिलता है । आत्मरक्षा के लिए आदिमानव नए नए अनुसंधान करते थे । प्रागैतिहासिक काल में उसके जीवन-यापन का साधन शिकार था। क्रमशः वह कृषि, पशुपालन, वस्त्र-निर्माण, यातायात समुद्री-व्यवसाय आदि से आगे चलकर वैज्ञानिक आविष्कारों तक पहुँच गया । युद्ध कौशल की बात को लें तो भी इसमें भी युगानुसार विकास हुआ है । आदिम मानव पाषाण-परशु का प्रयोग करता था, बाद में धनुष-बाण, फिर काष्ठ का शिल्प और काष्ठ मुगदर, सींगों के लंबे भाले, तांबे का खड्ग आदि बने । उसके बाद कुठार के साथ-साथ वक्षत्राण का

आविष्कार हुआ । बाद में रथ और घोडे आए । आगे चलकर युद्ध कौशल में विस्मयकारी परिवर्तन हुए । उपर्युक्त बातों का क्रमानुसार विवरण कहानीकार ने इसमें दिया है । राहुल युद्ध को बुरा मानते हैं, लेकिन उनका विश्वास है कि "बिना एक के उच्छेत हुए वह कैसे बन्द होगा"?[1] उनकी राय में जिसने अतीत को छोड़कर नए-नए आविष्कारों के साथ चलना सीखा है, वह प्रगतिशील है और वह जीवित है । जो अतीत विलाप करता है, वह पुरुहूत बाबा के समान ज़माने की चाल से पिछड़ जाता है। इस प्रकार कहानीकार अतीत की मिथकीय कथाओं के भीतर से भी इतिहास के विकासगामी तत्वों को बड़ी सावधानी से पकड़ लेते हैं ।

"वोल्गा से गंगा" में कई स्थानों पर जन-समाज की वकालत की गई है । राहुल ने कबिलाई व्यवस्था में जन-समाज के मज़बूत जड़ों की तलाश की है । सुदास द्वारा पांचाल की राजतंत्रीय व्यवस्था की कटु आलोचना तथा मद्र देश की गणव्यवस्था की वकालत राहुल की प्रजातांत्रिक ऐतिहासिक दृष्टि का एक सहत्वपूर्ण हिस्सा है । 'अमृताश्व' में कुरु-सोम संस्कृति, शिथिल यौन-संबन्ध, पशुपालन और कबीलाई संघर्षों का रेखांकन है । इसमें कुरु संस्कृति और उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने की प्रथा के माध्यम से कहानीकार ने नारी मुक्ति को प्रोत्साहित किया है । इसकी अधिकाश कहानियों में दास-प्रथा का विरोध एवं नारी मुक्ति के समर्थन का स्वर है । सुदास की प्रेयसी अपाला बार बार पांचाल न जाने की जिद्द करती है । कारण यह है कि पांचाल में दास-दासियों के अस्तित्व को अपाला सामाजिक पिछडेपन का कारण मानती है । यहाँ राहुल की इतिहास दृष्टि एवं उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट झलकती है कि उन्होंने सुदास द्वारा पांचाल के अधिपति जो कि उनके पिता थे, से मानव-मूल्य का

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 28

अपघटक करनेवाली व्यवस्था को समाप्त करने का निवेदन तथा इसके लिए निरन्तर संघर्ष करने का आग्रह प्रकट किया है ।[1] अतीत के बड़े राज्यों की राजनीतिक संस्कृति का हवाला देते हुए राहुलजी अंग्रेज़ी इतिहासकारों की इस अवधारणा का ज़ोरदार खंडन करते है कि अतीतकालीन भारत में राष्ट्रीय चेतना का अभाव रहा है । उन्होंने मगध और कोसल जैसे विशाल राज्य को राष्ट्रीय चेतना के आधार के रूप में चित्रित किया हैं।

"वोल्गा से गंगा" में राहुल ने मातृसत्ता से लेकर पितृसत्तात्मक और जनसमाज तथा गणव्यवस्था से लेकर प्रजातांत्रिक व्यवस्था तक के विभिन्न रूपों को चित्रित किया है । इसके सिवा देव-असुर की सांस्कृतिक यात्रा, आर्य-अनार्य संघर्ष, दास व्यवस्था, सामन्तवाद एवं राजतंत्र के तत्व आदि भी इसमें है । राहुल आर्यों से अधिक विकसित अनार्यों का विरोध करते हैं । कहीं-कहीं वे शुद्धतावादी नारों में भी उलझ जाते हैं । असुरों के पराभाव के कारण वे उनकी विलासिता, भोगविलास, कायरता, राजा को देवता मानना, दासप्रथा आदि मानते हैं ।[2] राहुलजी सत्य को मानवीय समानता के मूल्यों से युक्त तथा उसे शासक की भूमिका में नहीं, सेवक की भूमिका में देखना चाहते थे । 'दिवा' कहानी में उन्होंने यह संकेत दिया है कि पशुओं के शिकार और हत्या से नहीं, बल्कि आपसी युद्धों में हुई मानव-हत्याओं की स्मृतियों से भूतप्रेत की अवधारणा विकसित हुई है ।

'प्रवाहण' कहानी में कहानीकार ने प्राचीन भारतीय समाज के धार्मिक विश्वासों में अन्तर्निहित शोषक वर्ग के आर्थिक स्वार्थों का पर्दाफाश किया है । भारतीय दर्शन

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 100

2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 69

का चिरपरिचित 'ब्रह्म', को भौतिक भोगविलास के एक भाषिक उपकरण के रूप में इसमें चित्रित किया गया है । राहुल इस प्रगतिशील सन्देश को संप्रेषित करने में सफल हुआ कि ब्रह्म तो व्यर्थ की बात है । उस विश्वव्यापी ब्रह्म की सामाजिक-आर्थिक भूमिका क्या है? यह कहानी ब्रह्म और ब्रह्मवादियों की धोखेबाजी पर प्रहार करती है । 'बन्धुलमल्ल' में राहुल ने प्राचीन विश्व के गणराज्यों में से एक कुसीनारा मल्लगण के माध्यम से गणतंत्र की विशेषताओं एवं उसकी विनाशकारी दुर्बलताओं की ओर संकेत किया है । यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि इस कहानी में राहुलजी द्वारा रेखांकित गणतंत्र की समस्याएँ और बाधक प्रवृत्तियाँ ही वर्तमान भारतीय गणतंत्र को भी विनाश की ओर ले जा रही हैं । यहाँ राहुल की प्रासंगिकता स्पष्ट है । उनके अनुसार गणतंत्र को जीवित रखने की सबसे महत्वपूर्ण कसौटी है अपने नागरिकों की प्रतिभा और क्षमता । षड्यंत्र से देशभक्त प्रतिभाएँ भी रूढकर विद्रोही हो जाते हैं, फिर उनका प्रतिशोध उसी गणतंत्र के लिए महँगा पड़ सकता है । प्रतिभाओं की अवहेलना गणतंत्र के लिए ज़हर है ।

चूँकि राहुल की प्रतिबद्धता जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति है, इसलिए वे सांस्कृतिक रूढ़िबद्धता पर तीखा प्रहार करते हैं । एक ओर वे 'अंगिरा' में असुर कन्याओं से आर्यों के विवाह को रक्तगत शुद्धता के नाम पर रोकने में सफल होते हैं, वहीं दूसरी ओर अश्वघोष तमाम जातीय बन्धनों को तोड़कर प्रभा से विवाह करने को तैयार दिखाई देते है । वे जातिवाद, भाग्यवाद, मायावाद तथा धार्मिक अन्धविश्वास को सामन्ती सभ्यता के हथियार मानते हैं । 'पुरुधान' कहानी में पति सुमेध के मर जाने पर विधवा उषा अपने देवर को प्रति के रूप में स्वीकार करती है – इस प्रसंग में राहुलजी तत्कालीन व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं, जिसमें पुनर्विवाह सहज कार्य था । 'सुपर्ण यौधेय' में उन्होंने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को विदेशी हूणों से भारत को मुक्त

करनेवाला गोब्राह्मण रक्षक और धर्मसंस्थापक कहा ।[1] इस कहानी में राहुल दिग्नाग द्वारा प्रजातंत्र, वर्ग-जातिहीन समाज, बुद्ध का समतावाद, दासीप्रथा की समाप्ति आदि का उपदेश देते हैं । सुपर्ण, उज्जयिनी को मिली-जुली संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं ।[2]

राहुल ने छुआछूत जैसी अत्याधुनिक समस्या को भी उजागर किया है । छुआछूत की समस्या एक छूत की बीमारी का रूप धारण करती जा रही है । 'सुमेर' में राहुल का वक्तव्य है – "हिन्दुओं को हज़ार वर्षों से सस्ते दासों की ज़रूरत थी और हमारी जाति ने उसकी पूर्ति की । पहले हमें दास ही कहा जाता था, अब गाँधीजी 'हरिजन' कहकर हमारा उद्धार करना चाहते हैं । शायद हिन्दुओं के बाद हरि ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन रहा है ।"[3]

राहुल धर्म को पाखंड समझते हैं । राहुल का ब्राह्मणवाद से विरोध का भाव अश्वघोष की वाणी से प्रकट है । दुर्मुख कहानी में भी तत्संबन्धी विचार अवलोकनीय है – "ब्राह्मणों के धर्म से मुझे नफरत है । वस्तुतः कामरूप-नृपति जैसे कितने ही दिल के भले लोगों को कायर बनाने का दोष इसी ब्राह्मण धर्म को है । जिस दिन यह धर्म इस देश से उठ जाएगा, उस दिन पृथ्वी का एक भारी कलंक उठ जाएगा ।"[4] वे इस धर्म को 'धूपछांह' की संज्ञा देते है ।[5] ब्राह्मण धर्म के खोखलेपन के समर्थन के लिए राहुल ब्राह्मण संस्कृति के पुत्र राजा रन्तिदेव की बात भी कहते हैं ।[6] उनकी राय में "जिस धर्म से आदमी का हृदय ऊपर नहीं उठता, जिस धर्म में आदमी का स्थान

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 198
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 201
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 328
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 189
6. "वोल्गा से गंगा" – पृ 165

उसकी थैली या डंडे के अनुसार होता है, मैं उसे मनुष्य के लिए भारी कलंक समझता हूँ ।"[1] उनके विचार में "स्वस्थ मानव का मन जिसे उचित समझता है, वही धर्म है।"[2]

सभी धर्मो का विरोध करनेवाले राहुल केवल एक धर्म पर आस्था रखते हैं वह है बौद्ध धर्म । बौद्ध धर्म के प्रति उनकी आस्था 'प्रभा' कहानी में अत्यंत निखरे रूप में है । यथा – "यहाँ बौद्ध ही सबसे उदार धर्म है ।"[3] पर राहुल ने बौद्ध धर्म के बुरे पक्षों पर प्रहार भी किया है । बौद्ध दर्शन किस प्रकार सामन्ती सत्ता का एजेन्ट बन गया था, किस प्रकार वह जाति व्यवस्था को दृढ़ करने में सहायक बना, इस पर भी 'बन्धुलमल्ल' कहानी में टिप्पणी मिलती है । गौतम स्वयं कोसल के अन्तर्गत शाक्यगण के निवासी थे, अतः उनके अनात्मवाद पर कोसल के ब्राह्मण, क्षत्रिय, सामन्तों की विशेष आस्था थी । गौतम जडवादियों की तरह कहते थे – "आत्मा, ईश्वर आदि कोई नित्यवस्तु विश्व में नहीं है, सभी वस्तुएं उत्पन्न होती हैं और शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं । संसार वस्तुओं का समूह नहीं, बल्कि घटनाओं का प्रवाह है।"[4] गौतम ने आत्मा को जहाँ पुनर्जन्म से जोडा, वहीं वह सामन्ती सत्ता का प्रिय धर्म बन गया । जडवाद की कडवाहट को उन्होंने अनात्मवाद से जोडकर दूर किया । उनका कहना था कि "किसी नित्य आत्मा के न होने पर भी चेतना प्रवाह स्वर्ग या नर्क आदि लोगों के भीतर एक शरीर से दूसरे शरीर-एक शरीर-प्रवाह से दूसरे शरीर प्रवाह में बदलता रहता है ।[5] इस विचार में प्रवाहण राजा के आविष्कृत हथियार

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 177
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 139
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 174
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 133
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 133

पुनर्जन्म की पूरी गुंजाइश हो जाती थी ।[1] राहुल की तार्किक टिप्पणी भी इसके साथ है कि "यदि गौतम कोरे जडवाद का प्रचार करते तो निश्चय ही श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, राजगृह, भद्रिका के श्रेष्ठिराज न अपनी थैलियाँ खोलते और न ब्राह्मण-क्षत्रिय-सामन्त तथा राज़ उनके चरणों में सिर नवाने के लिए होड़ लगाते ।"[2] राहुल बौद्ध धर्म के उसी रूप को स्वीकार करते हैं, जो मानवजीवन के विकास के लिए उर्वर है ।

कार्लमार्क्स के मानव जीवन दर्शन से प्रभावित राहुल ने "वोल्गा से गंगा" में वर्ग-वैषम्य को वाणी दी है । 'सुपर्ण यौधेय' में वे आक्रोश करते हैं – "यदि ऐसा शासन शताब्दियों तक चलता रहा तो यह देश सिर्फ दासों का रह जाएगा, जो सिर्फ अपने राजाओं के लिए लडना-मरना भर जानेंगे, उनके मन से यह ख्याल ही दूर हो जाएगा कि मानव के भी कुछ अधिकार है ।"[3] उनकी राय में मानव की प्रगति का बड़ा अवरोधक तत्व आर्थिक विपन्नता है । सुमेर में ऐसा एक उद्धरण है – "उनकी एक एक हरकत मुझे शोषितों और भारत में सबसे अधिक शोषित हमारी जाति के लिए खतरनाक है । हमें दिमागी गुलामी के अड्डे, शोषकों के जबरदस्त पोषक पुरोहितों की दूकानों – इन मन्दिरों में ताला लगवाना चाहिए ।"[4] राहुल, जीवन की बोझ के तले दबे शोषित और बेसहारे लोगों का उद्धार चाहते हैं । इसके लिए उन्होंने सामन्तवादी मूल्यों का विरोध किया है ।[5] मार्क्स के समान, राहुल भी निश्चिन्त, लक्ष्ययुक्त समाज का स्वप्न देखते हैं । पूँजीवाद का विरोध और समाजवाद का नारा लगाते हुए राहुल कहते हैं – "साम्यवाद कहता है नफे का ख्याल छोड़ो । अपने राष्ट्र या सारे संसार को एक परिवार मानकर उसके लिए जितनी आवश्यकताएँ हों, उन्हें

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 115
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 133
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 203
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 332
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 336

पैदा करो – अर्थात् सारे उत्पादन के साधनों पर उस महापरिवार का अधिकार हो।"[1] यहाँ मार्क्स के समान राहुल ने भी समवितरण पर ज़ोर दिया है। उनकी राय में आर्थिक विषमता के नाम पर मेहनत, मज़दूरी करनेवाले दीन-हीनों का शोषण करना एकदम पशुता है ।[2] समाज की इन दूषित प्रवृत्तियों के विरोध में राहुल की वाणी सुमेर में सशक्त हो उठी है, यथा – "हम जीते जी इस भीषण कांड को अपनी आँखों के सामने होते हुए चुप नहीं देख सकते ।"[3] वे कहते है कि शासक को प्रजा के आधिकारों को अवगत कराने में प्रयासरत रहना चाहिए ताकि प्रजा अपने अधिकारों का संपूर्ण प्रयोग कर सकें ।[4] 'रेखाभगत' कहानी में कहानीकार ज़मींदारी व्यवस्था पर कठोर प्रहार इस प्रकार करते हैं – "पहले प्रजा के ऊपर एक राजा था । किसान बस एक राजा को जानता था – मालगुजारी चुकानी होगी ।"[5] कहानीकार ने कंपनी के शासन में पीडित जनता का स्वर सुनाया है और ग्रामपंचायत की दायित्वहीनता पर भी हँसी उठाई है । वैज्ञानिक चिन्तक राहुलजी सामंतवाद,साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद का खुल्लमखुल्ला विरोध करते हैं – "साम्राज्यवाद शोषण की वृत्ति का पोषक है, धर्म, ईश्वर एवं पुरोहितवाद का संरक्षक है तथा मनुष्य की स्वतंत्रता का अपहारक ।"[6] राहुल देश की सारी समस्याओं के समाधान के रूप में साम्यवाद को ही एकमात्र साधन मानते हैं । वे रूस के किसानों और मज़दूरों पर आशा रखते हैं और इंगलैंड और अमेरिका की विजय की आकांक्षा करते हैं । वे साम्यवाद को स्वदेशी मानकर उसका समर्थन भी करते हैं ।[7] राहुल बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद के समन्वयवादी साहित्यकार हैं, क्योंकि बुद्ध का आनात्मवाद उन्हें मार्क्सवाद के अधिक निकट लगता है ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 316
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 96
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 335
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 203
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 272
6. "वोल्गा से गंगा" – पृ 340
7. "वोल्गा से गंगा" – पृ 334

राहुल ने गाँधीवाद को आधार मानकर जाति व्यवस्था पर प्रहार किया है ।[1] यथार्थ रूप में शांति के लिए क्रांति आवश्यक है । गाँधीजी ने कभी भी हिंसा का समर्थन नहीं किया । इसलिए राहुल गाँधी के आदर्शों के विरोधी हैं । यथा वे कहते हैं – "गांधी की तमाम बातों और उनके तमाम विचारों को मैं क्रांतिकारी नहीं मानता, शंकर । क्रांतिकारी शक्ति के स्रोत साधारण जनता को जो उन्होंने आवाहन किया है, मैं उतने अंश में उनके इस काम को क्रांतिकारी कहता हूँ । उनकी धर्म की दुहाई खिलाफत खासकर को मैं सरासर क्रांति-विरोधी चाल समझता हूँ ।"[2] गाँधीजी की राय में परस्पर हितों की रक्षा हेतु कठोर संघर्षमय जीवन बिताना परमावश्यक है । लेकिन राहुल गाँधी के इस आदर्श का विरोध भी करते हैं ।[3] मार्क्स शांति के लिए क्रांति को आवश्यक मानते हैं । गाँधीजी ने समाज के निम्नवर्ग के उत्थान हेतु दार्शनिक विचारधाराओं का उल्लेख किया है । उस समय हरिजनों को एक अलग जाति मानकर गाँधीजी उनके बीच में रहा करते थे । राहुल गाँधीजी की हरिजन नीति का विरोध भी करते है ।[4]

राहुल की प्रगतिशीलता "वोल्गा से गंगा" में सर्वत्र व्याप्त है । उनका वक्तव्य देखिए – "हम उन्नीसवीं सदी में दाखिल हो गए हैं । दुनिया में उथल-पुथल हो रही है। इस उथल-पुथल में भाग लेना चाहिए और इसके लिए पहला काम है छापाखाना और समाचार पत्र कायम कर जनता को विस्तृत दुनिया के हलचल का ज्ञान कराना।"[5] 'मंगलसिंह', 'प्रभा' आदि में भी ऐसे प्रसंग देख सकते हैं । कहानीकार ने अंगिरा ऋषि के माध्यम से प्राचीन आर्यों की प्रगतिशीलता और विकासप्रियता की ओर

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 192
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 317
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 330
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 328
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 283

ध्यान आकर्षित किया है । उनके अनुसार शैक्षणिक-सांस्कृतिक, कृषि वैज्ञानिक और वैचारिक प्रयोगों से भरपूर ऋषि अंगिरा का विद्यालय ही आगे चलकर तक्षशिला विद्यालय के रूप में विकसित हुआ । इसमें राहुल इतिहास के माध्यम से मनुष्य जाति के विकास और प्रगति के नियमों की खोज करते हैं ।

मानवतावादी साहित्यकार होने के नाते राहुल मानव की स्वतंत्रता चाहते हैं । 'सुमेर' में राहुल के शब्द हैं – "हम मर रहे हैं उस दुनिया के लिए, जो इस पृथ्वी के छठे हिस्से पर है और जिसको फासिस्ट खतम करने जा रहे हैं । हम उस आनेवाली दुनिया के लिए मरने जा रहे हैं, जिसमें कि मानवता स्वतंत्र और समृद्ध होगी ।"[1] मानव के पशुत्व से लेकर बुद्धिसंपन्न होने तक के चित्रण करनेवाली इस कृति में इस सन्देह का स्वर सुना जा सकता है कि इस प्रगतिशील कहे जानेवाले समाज में मानव की प्रगति क्यों नहीं होती? उनकी राय में कुछ लोग अपने को प्रगतिशील कहकर गरीब मानव के उत्थार हेतु उन्हें धोखा देते हैं । ऐसे लोगों का विरोध राहुल ने खुले रुप से किया है । उन्होंने मानव-सभ्यता के विकास का चित्रण करने के साथ साथ व्यक्तिगत संपत्ति तथा राजसत्ता की उत्पत्ति का भी कारण ढूँढा है । आगे चलकर ये संस्थाएँ राजतंत्र, सामन्तवाद तथा पूँजीवाद के रूप में बदल जाती हैं । राहुल ने इन संस्थाओं को 'धरती का नरक' कहा है ।

'प्रभा' कहानी की यह पंक्ति कि "कविता, भीतर की अभिव्यक्ति बाहर नहीं है, बल्कि वह बाहर की अभिव्यक्ति भीतर है, इस तथ्य को मुझे तुमने समझाया"[2] मार्क्सवादी साहित्यिक दृष्टिकोण तथा उसके औचित्य को प्रमाणित करती है । 'सुपर्ण यौधेय' में, मार्क्सवादी जीवनदर्शन के प्रकाश में बुद्धिजीवियों के अर्थशोषक सांस्कृतिक

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 338
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 20

षड्यंत्रों की सतत चलनेवाली परंपरा से अपने युग की जनता को राहुलजी सजग करना चाहते हैं । कहानीकार द्वारा एक विद्रोही आचार्य दिङ्नाग के मुख से कहलाई गई यह पंक्ति कितनी मार्मिक है" – सुपर्ण ! प्रजा के ही बल पर हम कुछ कर सकते थे, किन्तु प्रजा दूर तक बहक चुकी है ।"[1]

'दुर्मुख' कहानी के अंतिम भाग में धर्मकीर्ति नामक विद्रोही विचारक के माध्यम से मध्यकालीन इतिहास की यथार्थवादी चिन्तनधारा को रेखांकित किया गया है । इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह, सतीप्रथा, सामन्तों के अन्तपुरों में नारी शोषण आदि अन्य सामाजिक समस्याएँ भी इसमें विश्लेषित हैं ।

'चक्रपाणी' में तत्कालीन वृद्ध राजाओं का अतिरेकपूर्ण कामाचार, भोगविलास, उनकी अमानवीय सामाजिक, गतिहीन जीवनदृष्टि आदि की ओर संकेत है । व्यक्तिवादी अहं मानसिकता और ईर्ष्याजन्य असहयोग, संघर्ष के अभाव में किस प्रकार असफल हो जाता है इसकी स्थापना राहुल ने इसमें की है । इस कहानी द्वारा कहानीकार का सन्देश है – 'मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते' ।

'बाबा नूरदीन' कहानी का सर्वाधिक प्रगतिशील पक्ष भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक जन वैमनस्य के समाधान के लिए सन्तों द्वारा किए गए क्रांतिकारी दार्शनिक प्रयास और उनके मानव एकता के ऐतिहासिक विचार हैं ।

'सुरैया' में वर्तमान समय के लिए भी प्रासंगिक, हिन्दू-मुसलमान के सांप्रदायिक विभाजन एवं जातिप्रथा की समस्याओं के समाधान के लिए, राहुल ने अकबरकालीन कथानक के माध्यम से अकबर के धर्म-निरपेक्ष आदर्शों की सराहना कर, अन्तर्जातीय अन्तर्धार्मिक विवाहों के प्रचलन को समाधान के रूप में प्रस्तुत किया है । कहानी में नारी-स्वातंत्र्य के प्रश्न पर पाश्चात्य संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति की

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 238

तुलना भी की गई है । इस कहानी में अन्तर्जातीय विवाह द्वारा राहुल ने सन् 1600ई. के सामाजिक परिवर्तनों पर भी प्रकाश डाला है । युद्धपोतों, तोपों, छापाखाना आदि की चर्चा द्वारा कहानीकार ने आनेवाले युग का पूर्वाभास भी दिया है ।

"वोल्गा से गंगा" में सामाजिक अवस्था के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है । उन्होंने इसमें अध्यापक और अध्येता संबन्ध को पवित्र माना है । लेकिन आज और पुराने समय के अध्यापक-अध्येता संबन्ध में बड़ा अन्तर है । उन्होंने गुरुकुल शिक्षा का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है ।[1] पहले मनुष्य को वैवाहिक जीवन बिताने के लिए समाज की परिधि में रहना पड़ता था । राहुल का वक्तव्य इस प्रकार है – "मैं और तू नहीं रहेंगे, किन्तु वह समय आएगा, जबकि सारी दरिद्र प्रजा इस पुनरागमन के भरोसे सारे जीवन की कटुता, कष्ट और अन्याय को बर्दाश्त करने के लिए तैयार हो जाएगी ।"[2]

राहुलजी के भाषाई दृष्टिकोण की झलक इस प्रकार मिलती है – "भाषाओं को मैने नहीं बनाया । जनता के राज्य में उसकी मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाना होगा, और मातृभाषा वही है, जिसके व्याकरण में बच्चा भी कभी गलती नहीं करता ।"[3]

"वोल्गा से गंगा" के संबन्ध में डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी का वक्तव्य है – "वोल्गा से गंगा" की कहानियों को लिखने की मूल प्रेरणा में कथावृत्ति कम, विचारवृत्ति अधिक है । आरंभ की कहानियों में जहां कल्पना को विहार करने का अवकाश मिला है, कथाप्रवाह बना रहा है । परंतु धीरे धीरे राहुलजी के ऐतिहासिक तथा अन्य

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 217
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 116
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 340

सामाजिक दृष्टि तथ्य प्रबल होते गए, जिससे कथातत्व प्रायः क्षीण हो गाय । सिद्धांत विवेचन अधिक हो गया ।"[1] डॉ. शरण बिहारी का यह कथन अक्षरशः ठीक है । "वोल्गा से गंगा" की कहानियों में कथा तत्व ढूँढना व्यर्थ का प्रयास है । कहानीकार के मन में कहने के लिए इतने अधिक थे कि उन्हें साहित्यिक सीमाओं की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ी ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि "वोल्गा से गंगा" ऐसी रचना है, जिसमें दो लक्ष्यों की पूर्ति हुई है – एक है मानव-समाज के विकास का चित्रांकन और दूसरा कहानीकार के विचारों का पर्दाफाश । यद्यपि इसके कथ्य का तथ्य एकांगी है, तो भी बहुत सशक्त एवं प्रबल हो उठा है ।

खंड ख : शिल्पगत दृष्टि से "वोल्गा से गंगा" का विश्लेषण

1. कथाशिल्प

"वोल्गा से गंगा" को कथाशिल्प की दृष्टि से विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि इसमें निश्चित एवं क्रमबद्ध कथानक का अभाव है । इसकी कहानियों की घटनाएँ परस्पर संबद्ध नही, प्रवाहमयता भी नहीं । कथानक तो परंपरागत कहानी कहने की शैली में विकसित हुआ है । अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों की योजना से कथा की गति विच्छिन्न हो गई है तथा इसका कहानीपन लुप्त हो गया है । इसमें कथाप्रवाह को रोककर कहानीकार पात्रों के गुणों को प्रदर्शित करने के लिए अनेक उदाहरण, घटनाएँ, प्रसंग आदि को प्रस्तुत करने में उलझे हुए दिखाई देते हैं ।

---

1. डॉ. शरण बिहारी गोस्वासी – "राहुल सांकृत्यायन – व्यक्तित्व और कृतित्व" – सं. डॉ. ब्रह्मानन्द – पृ 80

"वोल्गा से गंगा" की अधिकतर कहानियों का आरंभ लंबी भूमिका के साथ हुआ है । उदाहरण के लिए 'प्रभा' कहानी का प्रस्तावना अंश दो पृष्ठों का है । कई कहानियों का आरंभ वर्णनात्मक, साधारण एवं चमत्कार शून्य है । घटनाओं एवं पात्रों की परिस्थिति का पूरा परिचय देने के कारण निबन्ध का आभास मिलता है । ऐसी कहानियाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करने के साथ साथ तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के इतिहास को भी प्रस्तुत करती हैं । 'निशा', 'दिवा', 'अंगिरा', 'प्रवाहण', 'नागदत्त' और 'बाबा नूरदीन' कहानियों का आरंभ प्रकृति चित्रण एवं पात्रों के संवादों से हुआ है, जो आरंभ की दृष्टि से आकर्षक एवं नाटकीय बन पड़ा है । प्रकृतिचित्रण से शुरु होनेवाली 'निशा' कहानी में नाटकीयता एवं चित्रात्मकता का दर्शन संभव है, यथा – "दोपहर का समय है, आज कितने ही दिनों के बाद सूर्य का दर्शन हुआ । यद्यपि इस पाँच घंटे के दिन में उसके तेज़ में तीक्ष्णता नहीं है, तो भी बादल, बर्फ, कुहरे और झंझा से रहित---न पक्षियों का कलरव, न किसी पशु का ही शब्द ।"[1]

"वोल्गा से गंगा" की कहानियाँ आरंभ, उत्कर्ष एवं चरमस्थिति की दृष्टि से असफल हैं । इसमें नाटकीयता का तत्व कम मिलता है । लेकिन 'सुदास' कहानी में अपाला और सुदास का प्रणय प्रसंग, सुदास का बीच में पिता दिवोदास के पास जाना, उसकी मृत्यु के बाद राजा बनना, फिर लौटकर दिवंगत अपाला के गाँव जाना, 'बन्धुलमल्ल' में कुसीनारा के मैदान में जनता का समवेत होना, बन्धुल की परीक्षा, उसमें प्रवंचना, बाद में प्रसेनजित के पास जाना,पत्नी मल्लिका के कहने पर उसे लिच्छवियों की अभिषेक पुष्करिणी में स्नान करवाना, अन्य सभासदों द्वारा प्रसेनजित के भडकाए जाने पर बन्धुल का एवं उसके पुत्रों का परस्पर युद्ध और मृत्यु, इसके प्रतिशोध स्वरुप दीर्घाकारायण के षड्यंत्र द्वारा प्रसेनजित की मृत्यु आदि प्रसंग रोचक

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 1 – 2

एवं कुतूहलवर्द्धक बन पड़े हैं । 'निशा', 'प्रभा', 'नागदत्त' और 'सुरैया' कहानियाँ भावसौन्दर्य एवं जिज्ञासावृत्ति के कारण श्रेष्ठ बन पड़ी हैं । 'प्रभा' कहानी में कथा संगठन से लेकर कुतूहलता और सरस-काव्यमय और सहज संवाद एवं कथोत्कर्ष की चरमसीमा आदि शिल्प की दृष्टि से कहानी को कहानी का रुप प्रदान करते हैं और साथ ही कथाप्रवाह में लेखक के ज्ञान का भी समावेश है ।

कहानियों के आरंभ में ही नहीं, कलेवर में भी राहुलजी ने तत्कालीन सामाजिक – राजनीतिक परिस्थितियों का विशद अंकन किया है । 'सुदास' में गणतंत्र की उत्कृष्टता और राजतंत्र की हीनता से संबद्ध चार पृष्ठों का वादविवाद है । 'सुमेर' में गाँधीजी के सिद्धांतों के विरोध में लंबी चर्चा है । 'दिवा' में भी निशाजन के राजनीतिक एवं सामाजिक विकास का विशद चित्रण है ।

"वोल्गा से गंगा" में सुखान्त एवं दःखांत कहानियाँ हैं । दुःखांत कहानियाँ अधिक मार्मिक हैं । संदेश को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अधिकतर कहानियों को उन्होंने दुःखांत बनाया । 'सुरैया' का अन्तर्जातीय विवाह का सन्देश, 'मंगलसिंह' का स्वतंत्रता के निमित्त बलिदान विषयक सन्देश, 'सुमेर' का साम्यवादी सन्देश आदि को ह्रदयस्पर्शी बनाना राहुल का लक्ष्य था । 'निशा', 'सुदास', 'नागदत्त', 'रेखाभगत' आदि कहानियों का अंत तीव्र संवेदनाजनक है ।

इसकी कई कहानियाँ चरमसीमा को भी पार कर जाती हैं । यह भी एक दोष है । उदाहरण के लिए इसकी एक सर्वोत्कृष्ट कहानी है 'प्रभा' । इसकी परिसमाप्ति नायिका प्रभा की मृत्यु के साथ होनी चाहिए थी । लेकिन कहानीकार ने अश्वघोष के शेष जीवन की घटनाएँ उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया है । 'सुरैया' में भी सुरैया और कमल के विवाह के साथ कहानी की समाप्ति होनी चाहिए थी । लेकिन विवाह के बाद की घटनाओं को राहुल ने अपने विचारों के प्रदर्शन मात्र के लिए प्रस्तुत किया है। इन दोनों कहानियों के अंत को इतना विस्तृत किया गया है कि पाठकों की कल्पना

के लिए कुछ शेष नहीं रहता । उसी प्रकार 'निशा' कहानी का अंत भी निशा एवं लेखा की मृत्यु से होना चाहिए था । लेकिन 'रोचना निशा परिवार की स्वामिनी बनी'[1] – सूचना से हमारे मन के दुःख की तीव्रता नष्ट हो जाती है । 'प्रभा' कहानी में भी अभिधात्मक रूप में अश्वघोष के व्यक्तित्व की चर्चा की गई है । विख्यात तथ्य होने के कारण प्रबुद्ध पाठक बड़ी सुविधा से यह समझ सकता था । 'नागदत्त' कहानी का अंत भी चरमसीमा का अतिक्रमण करता है ।

राहुल वैयक्तिक चिन्तन और कथा की मानसिक रूपरेखा का सुनिश्चित निर्वाह करने में सफल नहीं हुए । उनका वैयक्तिक दर्शन एवं उसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के कारण कहानी के मर्म को आघात पहुँचा है । इसका कारण अनुभूति की तीव्रता का अभाव है । इसके अपवाद, 'निशा', 'दिवा', 'सुदास', 'नागदत्त' और 'सुरैया' कहानियाँ हैं । वैयक्तिक दर्शन की अभिव्यक्ति को मुख्य लक्ष्य माननेवाली कहानियों में लेखक के विस्तृत अनुभव एवं इतिहास ज्ञान का परिचय मिलता है । उदाहरणार्थ 'पुरुहूत' में आर्य-अनार्य की व्याख्या वैयक्तिक संदर्भ में की गई है । 'सुपर्ण यौधेय' में यौधेय जाति के अतीतकालीन गौरव और उनके पुनरुत्थान के प्रयासों का जिक्र है । 'मंगलसिंह' और 'सुमेर' में राहुल का अपना जीवनदर्शन मार्क्सवाद का प्रचार है । 'सफदर' में गाँधीवादी दर्शन के संबन्ध में राहुल के वैयक्तिक विचार हैं ।

"वोल्गा से गंगा" की कहानियों में काल की गति होती है । कहानियों का प्रतिपाद्य एवं पात्रों का चरित्र-चित्रण देशकाल एवं दूरी के अनुरूप हुआ है । सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ साथ कहानियों की पृष्ठभूमि बदलती जाती है और मानवीय विकास के विभिन्न सोपानों का प्रतिनिधित्व करती जाती है । कथा की सरल गति में ज्ञानवर्द्धक उपादान एवं दैनिक जीवन का चित्रण भी मिलता है ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 14

कहानियों की घटनाएँ पात्रों के समस्त जीवन अथवा उनके जीवन के अधिकांश भागों से संबद्ध हैं । उदाहरण के लिए 'प्रवाहण' कहानी का संबन्ध प्रवाहण और लोपा के बचपन से उनके अंतिम समय तक की घटनाओं से है । "वोल्गा से गंगा" में सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण को मुख्य और पात्रों के चरित्र चित्रण को गौण स्थान दिया गया है, जो कहानी के लिए आवश्यक तत्व है ।

"वोल्गा से गंगा" में संघर्ष के विविधरुप देख सकते हैं । यहाँ मनुष्य के पशुत्व से लेकर मनुष्यत्व तक पहुँचने के लिए जिन जिन संघर्षों का सामना करना पड़ा, इसका जिक्र है । राहुलजी ने कहा है – "मानव आज जहाँ है, वहाँ प्रारंभ में ही नहीं पहुँच गया था, उसके लिए बड़े-बड़े संघर्षों से होकर गुज़रना पड़ा ।"[1] 'निशा' में जीने और मरने का संघर्ष है । 'प्रभा' में चित्रित अश्वघोष की संघर्षपूर्ण आकृति का चित्र भी उल्लेखनीय है । यथा – "इन शब्दों को सुनकर अश्वघोष का अन्तस्तल – अश्वघोष का कंठ रुद्ध हो गया ।"[2]

"वोल्गा से गंगा" में कतिपय ऐसे तथ्यों का भी उल्लेख हुआ है जिनसे आधुनिक पाठक सहमत नहीं हो सकते । इन विसंगतिपूर्ण तथ्यों के कारण भी कथाशिल्प के नैसर्गिक सौन्दर्य पर आघात लगा है । मुख्य रूप से डॉ. नगेन्द्र, श्री भगवतशरण उपाध्याय, डॉ. रामविलास शर्मा जैसे वरिष्ठ आलोचकों ने इनपर विचार किया है । इसका एक आलोच्य तथ्य यह है कि 'प्रभा' में राहुल ने भारतीय नाटक को यवन अभिनय का रुपान्तर स्थापित किया है ।[3] यह तथ्य संगत नहीं । यवन नाट्यकला का भारतीय नाटक पर प्रभाव तो है, लेकिन उसे बिलकुल अनुकरण मानना

---

1. "वोल्गा से गंगा" – "प्रथम संस्करण का प्राक्कथन"
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 184
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 167

अनुचित है ।[1] इसी प्रकार आदिकवि वाल्मीकि रामायण के रचनाकाल को देखने पर यहाँ भी असंगति है ।[2] 'प्रवाहण' और 'दुर्मुख' कहानियों में वशिष्ठ, विश्वामित्र एवं वैदिक ऋषियों को धर्म द्वारा शोषण करनेवाला कहा गया है, तो भी सर्वजनता से पूजनीय इन ऋषियों को ऐसा कहना हास्यास्पद है । इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्रजी का यह तर्क सराहनीय है कि यह स्वभावतः स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़नेवाले मानव ज्ञान का स्पष्ट शब्दों में अपमान है ।[3] डॉ. नगेन्द्रजी के इस कथन से सहमत होना पड़ेगा कि राहुल ने सारे ऋषिवर्ग को ही अपमानित किया है ।

यह तो सत्य है कि "वोल्गा से गंगा" की कहानियाँ हमारे ज्ञान एवं बुद्धि का विकास तो करती हैं । लेकिन कथा के कलात्मक पक्ष की दृष्टि से हमारे मन में अतृप्ति उत्पन्न करती हैं । इसमें प्रचीनता के संदर्भ में आधुनिकता का प्रभाव भी है । उदाहरण के लिए सूरश्रवा और दिवा, सोमा-ऋज्राश्व आदि के प्रेमालाप में बिलकुल आधुनिक परिवेश को लिया गया है । मुक्तप्रेम, नृत्य आदि में आधुनिक नृत्य का आभास है । बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रसिद्ध स्थल ब्रह्मवाद की आलोचना वे प्रवाहण द्वारा आडंबर कहकर करवाते हैं । यह भी अविश्वसनीय है ।

श्री भगवतशरणजी का कहना है कि "राहुल ने असुरों के सारे कृत्यों और आचार-विचारों को द्राविडों पर आरोपित किया है । सिन्धु सभ्यता में एक नर्तकी की मूर्ति के आधार पर उस समाज में उन्होंने वेश्या के अस्तित्व को स्वीकारा, जबकि भागवत के अनुसार नर्तकी और वेश्या एक नहीं होती । इसी प्रकार उन्होंने विलासी व्यभिचारी पृथ्वीराज चौहान की अपेक्षा जयचंद को चरित्रहीन नारी सेवी कहा । यह

---

1. K.B Keith – "The Sanskrit Drama is its Origin, Development Theory and Practice – पृ 28-75
2. यह काल विवादास्पद होते हुए भी इसे 3100ई. पू से पूर्व की रचना माना जाता है – A A Macdonell – "A History of Sanskirt Literature – पृ 302
3. डॉ. नगेन्द्र – "विचार और विश्लेषण" – पृ 158

इतिहास का अपमान करने के समान है ।"[1] इस प्रकार भगवतशरणजी ने अनेक स्थानों पर आपत्ति प्रकट की है । इस कृति में कुछ ऐतिहासिक असंगतियाँ ज़रुर हैं, लेकिन भगवतशरणजी की आलोचना राहुल के लक्ष्य, सत्यप्रयास और परिश्रम की पूरी अवहेलना करनेवाली है । इतिहास को लेकर राहुल का कुछ पूर्वाग्रह ज़रूर है, लेकिन उनके इस कार्य का स्थाई महत्व है । राहुलजी की ऐतिहासिकता की आलोचना करनेवाले यह बात ध्यान में रखें कि उनका मुख्य लक्ष्य इतिहास की त्रुटिहीन व्याख्या नहीं, मानव समाज की प्रगति का चित्रण है । राहुल की कुछ कहानियों पर आरोपित प्रचारवाद के उत्तर में स्वयं राहुलजी ने कहा – "मेरे उपन्यासों या कहानियों में प्रोपेगेंडा के तत्व ढूढने के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनके लिखने में मेरा उद्देश्य ही है कुछ आदर्शों की ओर पाठकों को प्रेरित करना । अगर यह उद्देश्य मेरे सामने न रहता, तो शायद मैं कहानी या उपन्यास लिखता ही नहीं, इसलिए जिसे मेरे दोस्त प्रोपेगेंडा कहते हैं उसे मैं अपनी मजबूरी मानता हूँ ।"[2] यद्यपि राहुलजी अपने साहित्य पर प्रोपेगेंडा के आरोप से सहमत है, तो भी सामान्य जनता के लिए लिखे गए इस साहित्य को सिर्फ प्रचारवादी कहकर तिरस्कृत करना अन्याय होगा ।

डॉ. रासविलासशर्माजी का आरोप जो कि 'राहुल नग्नवादी हैं'[3] के उत्तर में कहा जा सकता है कि वास्तविकता के चित्रण में सेक्स का भी यथार्थ चित्रण करना पड़ता है । यथार्थवाद की त्रुटिपूर्ण समझ के कारण ही प्रगतिशील साहित्य में नग्न यौनवर्णन की प्रवृत्ति देखी गई । यह भी बताया जा सकता है कि राहुलजी पर प्रसिद्ध

---

1. श्री भगवतशरण उपाध्याय – "वोल्गा से गंगा समीक्षा के संदर्भ" - पृ 289
2. राहुल सांकृत्यायन – "राहुल निबन्धावली" – पृ 4
3. डॉ. रामविलासशर्मा – "प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ" – पृ 25

पाश्चात्य मनोविश्लेषणवादी फ्रायड का परोक्ष प्रभाव पड़ा होगा । फ्राइड ने काम प्रवृत्ति को सर्वाधिक महत्व प्रदानकर उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया । उनके अनुसार शिशु में जन्म के साथ कामभाव की उत्पत्ति होती है ।[1] वस्तुतः साहित्यकारों का प्रधानकार्य मनुष्य की अन्तः प्रवृतियों का उद्घाटन करना होता है । समस्त विश्व साहित्य में इस प्रबल प्रवृति की अभिव्यंजना प्रकट या प्रच्छन्न रुप में हुई है । साहित्य मूलतः जीवन की अभिव्यक्ति है और यूँकि जीवन में काम या प्रेम की अनिवार्यता है, साहित्य में भी उसकी महता सुप्रतिष्ठित है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक समस्त साहित्य में काम या प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है । चार्वाक् दर्शन भी कहता है कि मानव जीवन के लिए काम ही पुरुषार्थ है । भारत में भी काम एक पुरुषार्थ के रूप में स्वीकृत है । यहाँ स्वयं राहुलजी की यौन संबन्धी विचारधारा को भी प्रस्तुत करना उचित होगा, यथा – "जीवन में यौन संबन्ध का भी स्थान है । इसे यदि हम इनकार करते हैं तो हम दूसरी आति पर पहुँचते हैं और वास्तविक नहीं, अवास्तविक चीज़ का चित्रण करते हैं, इसलिए हमारा यह हरगिज मतलब नहीं कि हमारे साहित्य और कला में यौन संबन्धों का जिक्र न आए । लेकिन उसी का रोज़गार खोल देना और आज के समाज की बुराइयों के कारण उत्पन्न वैयक्तिक कमज़ोरियों से फायदा उठाने की कोशिश करना कभी अच्छा नहीं समझा जा सकता ।"[2]

श्री रामविलास शर्मा ने राहुल को प्रगतिशीलता को बाधा डालनेवाले के रूप में चित्रित किया है ।[3] कुछ एक तथ्यों के आधार पर उन्हें पूर्ण रूप से प्रगतिविरोधी

---

1. डॉ. रूपचन्द गोविन्द चौधरी – "कामसूत्र और फ्रायड के संदर्भ में हिन्दी काव्य का अनुशीलन" – पृ 1
2. राहुल सांकृत्यायन – "साहित्य निबन्धावली" – पृ 18
3. डॉ. रामविलास शर्मा – "प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ" – पृ 146

स्थापित करना उचित नहीं । इस कृति में अनेक असंगतियाँ ज़रुर हैं – इस बात से हमें भी सहमत होना पड़ता है । यह प्रकट सत्य है कि राहुलजी एक विशेष दर्शन के आग्रही थे । यह भी कहा जा सकता है कि यह तो बड़ा काम है, एक नई दिशा है और अनेक त्रुटियाँ संभव हैं । कोई भी लेखक अपने द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को सर्वस्वीकार्य तक का दावा पेश नहीं कर सकता । राहुलजी ने इसे खुले रुप से बताया भी है कि "मैने हर एक काल के समाज को प्रामाणिक तौर से चित्रित करने की कोशिश की है, किन्तु ऐसे प्राथमिक प्रयत्न में गलतियाँ होना स्वाभाविक है । यदि मेरे प्रयत्न ने आगे के लेखकों को ज्यादा शुद्ध चित्रण करने में सहायता की तो मैं अपने को कृतकार्य समझूँगा ।"[1]

कुछ पंडितों ने राहुल के भारत में आर्यों के आगमन संबन्धी विचारों की भी आलोचना की । यह विवाद तो अब तक कोई निर्णायक दौर में नहीं पहुँचा है । उन्होंने जब इन कहानियों की रचना की , तब तक मानवीय विकास से संबन्धित जो ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध थे, उनका पूरा पूरा उपयोग किया होगा । डॉ. नगेन्द्रजी राहुल की धर्म विषयक अवधारणा पर भी अविश्वसनीयता प्रकट करते हैं ।[2] बात यह है कि बौद्ध दर्शन के प्रति वे इतने आकृष्ट हुए कि अन्य सभी धर्म उन्हें निकृष्ट सा जान पड़ा ।

कथाशिल्प की दृष्टि से यह रचना असफल है । डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहें तो विशेष रुप में 'सुदास' और साधारणतः 'नगदत्त' और 'सुरैया' को छोड़कर शेष कोई भी प्रसंग कहानी के गौरव का अधिकारी नहीं । इनमें घटनाओं या मनोवृत्तियों के उत्थान-पतन का सर्वथा अभाव है – चरमस्थिति का कहीं भी पता नहीं है ।[3] उपर्युक्त कथन

---

1. "वोल्गा से गंगा" – "प्रथम संस्करण का प्राक्कथन"
2. डॉ. नगेन्द्र – "विचार और विश्लेषण" – पृ 157
3. डॉ. नगेन्द्र – "विचार और विश्लेषण" – पृ 157

ठीक ही जान पड़ता है । वस्तुतः कहानी कहना राहुलजी का लक्ष्य नहीं था । बुद्धिवाद की अधिकता के कारण सामान्य कहानी जैसी सरलता इनमें नहीं ।

सारांश है कि पारंपरिक रूप से देखने पर तो "वोल्गा से गंगा" का कथाशिल्प अविकसित है, तो भी प्राचीन सांस्कृतिक कथा का उसके ध्वंसावशेषों एवं खंडहरों के प्राचीरों से चयनकर उनका कलात्मक पुनराख्यान अपने आप में एक विलक्षण प्रयास है । समस्याओं की विविधता के कारण इसमें रचनात्मक प्रयोजन का कोई एक रूप नहीं मिलता । इसमें राहुल सांकृत्यायन ने कथाशिल्प को एक नया रूप दिया है ।

2. पात्र और चरित्र-चित्रण

"वोल्गा से गंगा" के पात्र ऐतिहासिक – सांस्कृतिक वातावरण से संपुष्ट हैं । ये पात्र युग सत्य की अभिव्यंजना करनेवाले हैं । इसके पात्रों को ऐतिहासिक पात्र, ऐतिहासिक एवं कालपनिक पात्र, काल्पनिक पात्र आदि श्रेणियों में रखा जा सकता है । वैदिकयुगीन ऐतिहासिक पात्र हैं – कृशाश्व, गाग्र्य, अरुणाश्व, उशीनर, सुदास, दिवोदास, गार्गी, दिङ्नाग, पुरुकुत्स, शम्बर आदि । मध्ययुग के ऐतिहासिक पात्र हैं कुमारगुप्त, अशोक, भगवान बुद्ध, प्रसेनजित, कारायण, अजातशत्रु, विदूडभ, अश्वघोष, सुवर्णाक्षी, कनिष्क, हर्षवर्धन, जयचंद, पृथ्वीराज, अलाउद्दीन खिलजी, अक्बर और उसके नवरत्न। ऐतिहासिक एवं काल्पनिक पात्र हैं प्रवाहण, वशिष्ठ, विश्वामित्र, चाणक्य, बन्धुलमल्ल, मल्लिका और बाणभट्ट । नागदत्त, सोफिया, चक्रपाणि, निशा, दिवा, लेखा, रोचना, सुरैया, नूरदीन, रेखाभगत, सुमेर, मंगलसिंह आदि काल्पनिक पात्र हैं । इनमें कुछ समाज-सुधारक एवं स्वार्थी पात्र भी होते हैं । ऋषि अंगिरा, सुदास, नागदत्त, सुपर्ण-यौधेय, बाबा नूरदीन, रेखाभगत, मंगलसिंह, सफदर, सुमेर, लोपा, प्रभा एवं सुरैया

समाज-सुधारक हैं । प्रवाहण और जयचंद स्वार्थी पात्र हैं । "वोल्गा से गंगा" में अनेक नारी पात्रों का युगानुरूप चित्रण मिलता है ।

ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के कारण ऐतिहासिक पात्रों के व्यक्तित्व में ओज आ गया है । अकबर एवं अश्वघोष के चरित्र इसके उदाहरण हैं । काल्पनिक पात्र राहुल के विचारों का वाहन अधिक करते हैं । सफल चरित्र-चित्रण के लिए जिस मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है, वह राहुलजी में नहीं । वे पात्रों के अन्तर्मन का विश्लेषण नहीं करते, बल्कि उनके गुणों एवं क्रियाकलाप का वर्णन स्थूल ढंग से करते हैं । इसके ऐतिहासिक पात्र अपने व्यक्तित्व को साथ लेकर नहीं चलते, राहुलजी ने नूतन तत्वों को जोड़कर उन्हें अलग ढंग से चित्रित किया है ।

कुछ कहानियों के पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन में राहुल को सफलता मिली है । उदाहरण, प्रवाहण और लोपा के सहज आकर्षण का चित्रण, प्रभा और अश्वघोष का प्रेमालाप, सुदास का अपाला के प्रति एकनिष्ठ प्रेम आदि । इसके कथानायक सूत्रधार के समान संपूर्ण कथा पर छाए हुए हैं । राहुल के विचारों के वाहक पात्रों का स्वतंत्र व्यक्तित्व फीका पड़ा है । पुरुहूत, प्रवाहण, सुपर्ण यौधेय, अंगिरा, सफदर, सुमेर आदि पात्रों के द्वारा राहुल ने अपनी मान्यताओं की प्रतिष्ठा करके उपलब्ध नई मान्यताओं का खंडन किया है । 'दुर्मुख' एवं 'सुपर्णयौधेय' कहानियों में आत्मविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग है । प्रभा, सुरैया, अश्वघोष, कमल, अकबर आदि के चरित्र पर नाटकीय शैली के माध्यम से प्रकाश डाला गया है । इसमें वर्णन द्वारा चरित्र चित्रण किया गया है, जिससे पता चलता है कि कहानी शैशवावस्था में है ।

प्रतिपाद्य विषय एवं उसकी ऐतिहासिक परिसीमा के विशद आयाम को दृष्टि में रखते हुए "वोल्गा से गंगा" के पात्रों का चरित्र-चित्रण विशेष कलात्मक न होते हुए भी युगीन सत्य एवं सामाजिक वैषम्यों की यथार्थ अभिव्यंजना में समर्थ है ।

3. संवाद

"वोल्गा से गंगा" में राहुल सांकृत्यायन ने कथोपकथनों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है । 'दिवा', 'अंगिरा', 'प्रवाहण', 'नागदत्त' और 'बाबा नूरदीन' कहानियों का आरंभ कथोपकथनों से होता है । उदाहरण के लिए नागदत्त कहानी का आरंभ इस प्रकार है – "उचित पर हमें ध्यान देना चाहिए, विष्णुगुप्त ! मनुष्य होने से हमारे कुछ कर्तव्य हैं, इसलिए हमें उचित का ख्याल रखना चाहिए ।

कर्तव्य धर्म है न ?"[1]

जहां राहुलजी को अपने विचारों का प्रतिपादन कथोपकथन द्वारा करना होता है, वहाँ वे कुछ समय के लिए कथानक के प्रवाह को रोक देते हैं । विषय के सर्वांगीण विवेचन के उपरान्त वे कथानक को आगे बढ़ाते हैं । मसलन के रुप में 'अंगिरा' में आर्य एवं अनार्य रक्त सम्मिश्रण एवं आर्य जाति के उत्कर्षक तत्वों की चर्चा, 'सुपर्ण यौधेय' में आर्य जाति का इतिहास, 'चक्रपाणि' में जयचन्द की विलासिता पर आक्षेप आदि को लिया जा सकता है । 'सुदास' में सुदास तथा उसके पिता पांचाल नरेश दिवोदास की वार्ता चार पृष्ठों में है । 'सफदर' में, सफदर और उसके मित्र शंकर का वार्तालाप ग्यारह पृष्ठों में है । ये संवाद लंबे एवं गंभीर चिन्तन से संबद्ध होने के कारण शुष्क बन पड़े हैं ।

पर कुछ स्थलों में संवाद, भावपूर्ण एवं सार्थक है । 'प्रभा' में प्रभा एवं अश्वघोष के संवाद में ब्राह्मण धर्म की दुर्बलता एवं उनके आत्मीय प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। यह संवाद रोचक है ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 139

कहानीकार ने संवादों का उपयोग कथानक के विकास तथा पात्रों के चरित्रांकन के लिए भी किया है । 'सुदास' में सुदास तथा अपाला के संवाद संक्षिप्त एवं सजीव हैं। यह कथाक्रम के विकास में सहायक है । 'नागदत्त' में सोफिया और नागदत्त का प्रणयवार्ता संबन्धी वार्तालाप भी रोचक बन पड़ा है । इसमें पात्र और पात्रों के चरित्र चित्रण पर भी प्रकाश डाला गया है ।

"वोल्गा से गंगा" के कथोपकथनों में नाटकीयता का अभाव भी है । इसमें वांछित संक्षिप्तता एवं गति नहीं । संवादों के साथ वक्ता के हावभाव का प्रकाशन भी नहीं । इसमें संवादों का उपयोग वातावरण चित्रण के लिए किया गया है । 'दिवा' का संवाद तत्कालीन आर्य पूर्वचों की युद्ध नीति, शिकारवृत्ति एवं धर्मप्रवणता के वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए है । सफदर और शंकर के संवाद में राजनीतिक स्थिति का अंकन है । सुन्दर और संक्षिप्त संवाद 'निशा' और 'दिवा' कहानियों में है ।

"वोल्गा से गंगा" में संवादों की भाषा में युगानुरूप परिवर्तन मिलता है । इसके पूर्वार्द्ध की कहानियों में कथोपकथन संक्षिप्त है उत्तरार्द्ध में वे लंब एवं शुष्क हैं । इसमें कथोपकथन कला उत्कृष्ट हुई है तो भी इसका प्रतिपाद्य एवं कहानीकार की विचारधारा, कथोपकथनों के सहज प्रवाह में बाधक हुई हैं ।

4. वातावरण

"वोल्गा से गंगा" में वातावरण तत्व ही अधिक उभरकर आया है । इसकी प्रथम पाँच कहानियों का संबन्ध वोल्गा और सुवास्तु नदी के मध्य स्थित प्रदेशों से है। अन्य 15 कहानियाँ तक्षशिला एवं पटना के मध्य में स्थित विभिन्न प्रदेशों से संबन्धित हैं । इसकी प्रत्येक कहानी का आरंभ स्थान, वर्ग और काल के परिचय के बाद होता है ।

"वोल्गा से गंगा" की विशेषता यह है कि इसमें मानव-समाज के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का युगानुसार विकास चित्रित है । राहुल मूलतः यायावर थे, इसलिए इसका प्रकृति चित्रण अद्वितीय है । प्रकृति चित्रण ऋतुओं, पर्वतीय स्थानों, उपवनों, नदियों और वनस्पतियों से संबन्धित है । पूर्वाद्ध की कहानियों में प्रकृतिचित्रण अधिक है । देवदारु का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है ।

सरोवरयुक्त उद्यान की छटा का चित्र राहुल ने इस प्रकार किया है – "बाग़ के बीच में एक सुन्दर पुष्करिणी थी-----अभिनय कर रहे थे ।" इस वर्णन में राहुल का ध्यान बाग़ की सुन्दरता बढ़ानेवाले उपकरणों की गणना पर अधिक है । फिर भी सरोवर के विभिन्न प्रकार के कमलों का जिक्र एवं जलतंत्र के जलशीकरों के वर्णन के कारण सजीवता आ गई है । 'निशा' कहानी के आरंभ में हिमाच्छादित धरती का चित्रण वास्तव में चित्रात्मक ही है ।[1] "वोल्गा से गंगा" में प्रकृति के शुष्क पक्ष का चित्रण भी मिलता है ।[2]

"वोल्गा से गंगा" में चारों ऋतुओं का प्रयोग हुआ है । राहुल ने शरत, हेमन्त, शिशिर तीनों को एक मानकर वर्णन किया है । राहुल की प्रियऋतु वसन्त है । इसलिए इसका चित्रण अधिक हुआ है । 'निशा' में चित्रित वसन्तागमन का चित्र[3] अत्यंत आकर्षक है जबकि वर्षा ऋतु का चित्रण उतना आकर्षक नहीं बना पड़ा । शरत काल का चित्रण 'प्रभा' में है ।[4] यहाँ केवल चाँद के निकलने तक की सूचना मात्र है। शरत्कालीन रात्री के वश्य सौन्दर्य का चित्रण नहीं किया गया है ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 1
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 143
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 11
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 182

5. भाषा

"वोल्गा से गंगा" के भाषा पक्ष पर विचार करने पर मालूम होता है कि इसकी भाषा अधिक परिमार्जित है । इसमें भाषा संबन्धी प्राचीन शैलियाँ जैसे तुलनात्मक आधार पर भाषा वैज्ञानिक पद्धतियाँ और संसार का आचार-व्यवहार, रीति, ऐतिहासिक अनुसंधान संबन्धी विवरण आदि पर आधारित शैलियाँ इसमें हैं । इन्दो यूरोपियन तथा इन्दो ईरानियत भाषा शास्त्री की शैलियां भी यहाँ आ गई हैं ।

"वोल्गा से गंगा" में कहानीकार सुमेर द्वारा निसंकोच लंबे लंबे आर्थिक तथा राजनीतिक विशेलेषण ही नहीं, बल्कि आँकड़े तक देते हैं ।[1] ऐसे विवरणों को देने के पीछे उनका उद्देश्य इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या से पाठकों को अवगत कराना था । लेकिन इससे कहानी के सामान्य गुणों को आघात लगा है ।

वर्णन को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए अर्थालंकारों में उपमा एवं शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग किया गया है । कहानियों में प्रयुक्त उपमान कम प्रयोग में आनेवाले हैं । उदाहरणार्थ "कहते कहते सुरैया की आँखों में नर्गिस में शबनम् की तरह आँसू भर आए" ।[2] इस उपमान का प्रयोग उर्दू-फारसी कवि करते है ।[3] 'प्रभा' कहानी में प्रयुक्त उपमालंकार का उदाहरण देखिए – "प्रभा, सूर्य प्रभा की भाँति अश्वघोष के हृदय-पद्म को विकसित रखती थी । दूध सी छिटकी चाँदनी के प्रकाश में दोनों अकसर सरयू की रेत में जाते ।"[4] पहले वाक्य में रूपक और उपमा का प्रयोग हुआ है, दूसरे में चाँदनी की उज्जवलता की उपमा दूध से किया गया है । "वोल्गा से गंगा" में 'जले पर नमक छिडकना'[5] मुहावरे का प्रयोग भी मिलता है ।

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 336
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 267
3. "उर्दू हिन्दी कोश" – पृ 62
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 173
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 330

"वोल्गा से गंगा" में स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । उदाहरणार्थ,

प्रतिसंस्कार[1] – इसका प्रयोग 'मरमत' के अर्थ में किया गया है ।

धूमनेत्रक[2] – 'चिमनी' के स्थान पर इसका प्रयोग हुआ है ।

दीपयष्टि[3] – यह मशाल का पर्याय है ।

"वोल्गा से गंगा" में कुछ स्थानों पर विशेषणों का प्रयोग भी मिलता है । कुछ स्थानों पर यह सार्थक हो गया है और कहीं सिर्फ पाण्डित्य प्रतर्शन मात्र रह गया है ।

साहित्य में समय और दूरी का संकल्प (Time and Space Concept in Literature)

वर्णनात्मक भाषा में विषय, काल एवं संदर्भ के अनुसार बदलाव "वोल्गा से गंगा" की उल्लेखनीय विशेषता है । इसकी प्रारंभिक कहानियों की भाषा आर्यपूर्वजों की संस्कृति के अनुकूल थी । 'अमृताश्व', 'सुदास', 'अंगिरा' और 'प्रभा' में संस्कृतभाषा, 'बाबा नूरदीन' में उर्दू तथा 'सफदर', 'सुमेर' और 'रेखाभगत' में बोलचाल की भाषा का प्रयोग है । ये क्रमशः इस प्रकार हैं –

1. "निशा उठकर गुहा के एक कोने में गई, वहाँ से चमडे की फूली हुई झिल्ली को लाकर कहा – 'बस यही मधु सुरा है, आज पियो, नाचो, क्रीडा करो ।'"[4]
2. "बेकार है यह कपास वस्त्र, न इससे जाडा रुकता है न वर्षा से बचाव । अपने भीगे कंचुक को हटा कम्बल ओढते हुए तरुण ने कहा ।"[5]
3. "जब उन्हें आप काफिर मानते है तो कुफ्र की रस्म के लिए शिकायत क्यों? मेरे चाचा सुल्तान जलालुद्दीन मेरी तरह तय नहीं कर पाया था कि उन्हें अपने को स्थाई हिन्द शासक समझना चाहिए ।"[6]

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 8
2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 12
3. "वोल्गा से गंगा" – पृ 34
4. "वोल्गा से गंगा" – पृ 10
5. "वोल्गा से गंगा" – पृ 73
6. "वोल्गा से गंगा" – पृ 242

4. "हमारी तो भैंस बिक गई । तीन महीने से भोलू भाई । खूब खिला पिलाकर तैयार किया था । बीस रुपए वैसी भैंस के लिए कम दाम नहीं है । किन्तु आजकल लक्षिमि आँख से देखते देखते उड जाती है ।"[1]

6. उद्देश्य

"वोल्गा से गंगा" की मूलचेतना तीन रूपों में प्रकट हुई है । पहली है, व्यक्ति के माध्यम से समष्टिगत चेतना की अभिव्यक्ति । आदिकालीन आर्यजाति वोल्गा तट से चलते चलते गंगा तट तक पहुँच गई है । अतएव वोल्गा एवं गंगा तट के निवासियों का रक्त-सम्मिश्रण हो गया है, जो मानवता के समतावादी मूलस्वर का उद्घोषक है ।[2] इसकी दूसरी चेतना आदर्श एवं यथार्थ की भावना है । आदर्श को सक्षम बनाने के लिए उन्होंने यथार्थ घटनाओं एवं तथ्यों से कथावस्तु का चयन किया है । इसकी तीसरी चेतना, साम्यवादी एवं सांस्कृतिक चेतना है । राहुलजी का आदर्श बुद्ध की करुणा, गणतंत्र की क्षमता एवं रुसी साम्यवाद के उपयोगी तत्वों के योग से सुन्दर मानव-जीवन की सृष्टि है ।

"वोल्गा से गंगा" में मानवता के विकास में आस्था, धार्मिक रुढ़ियों का खंडन, बौद्ध धर्म एवं साम्यवाद का समन्वय, साम्राज्यवाद की आलोचना एवं गणतंत्र की स्थापना, गाँधीवाद का खंडन, पुनर्जन्म का विरोध, प्रकृति पर आश्रित प्रागैतिहासिक मानव का चित्रण, हिन्दुओं और मुसलमानों का वैमनस्य, मानव-मानव के बीच में प्रेम, अन्तर्जातीय विवाह की आवश्यकता सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन, भारत में प्रजातंत्र प्रणाली की स्थापना आदि राहुलजी के उद्देश्य रहे हैं । अधिकतर कहानियों में

---

1. "वोल्गा से गंगा" – पृ 271

2. "वोल्गा से गंगा" – पृ 332

उद्देश्यव्यंजन शैली अभिधात्मक है । कुछ कहानियों में उद्देश्य प्रथम या अंतिम वाक्य में सूक्ति के रूप में दिया गया है ।

निष्कर्ष रूप में कहें तो "वोल्गा से गंगा" की कहानियाँ चरित्र-चित्रण, कथाशिल्प, कथोपकथन, उद्देश्यकथन आदि की दृष्टि से साधारण कोटि की हैं । लेकिन ये कहानियाँ प्रतिपाद्य एवं वातावरण की व्यापकता के कारण श्रेष्ठ बन पड़ी हैं ।

****

चौथाअध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण

बहुरंगी मधुपुरी

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

सारांश

''बहुरंगी मधुपुरी'' का कथ्य पक्ष शिल्पपक्ष की अपेक्षा प्राणयुक्त है। इसमें राहुलजी ने स्वयं एक शिल्प की सृष्टि की है। मसूरी के जीवन का एक जीता जागता चित्र इसमें मिलता है। कहानिकार ने ऐसे अनेक राजनीतिक सामाजिक समस्याओं को उठाया है, जो आज भी प्रासंगिक हैं कल भी प्रसंगिक होंगे।

चौथा अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण

"बहुरंगी मधुपुरी" राहुल सांकृत्यायन का तीसरा कहानी संकलन है, जिसकी रचना सन् 1954 ई में हुई थी । राहुलजी की मधुपुरी, मसूरी है. जहाँ ब्रिटीश सरकार के बड़े अफसर लोग छुट्टियाँ बिताते थे । सवा सौ वर्ष पूर्व अंग्रेजों द्वारा अपनी इच्छानुसार बसाई गई इस शीतकालीन बस्ती के बसने, विकसित होने और आजादी के बाद अंग्रेजों के भारत छोड़कर पूरी तरह चले जाने के पश्चात् उसके वैभव और अर्थशास्त्र में आनेवाले उतार-चढ़ाव तथा वहाँ के विभिन्न वर्ग के निवासियों की आर्थिक सामाजिक जीवनस्थिति की वैज्ञानिक प्रक्रिया का गंभीरतापूर्वक चित्रण इन कहानियों में है । प्रायः अधिकतर कहानियों में मनुष्य की आर्थिक स्थिति, उसके स्रोतों और अर्थ उपलब्धता का मनुष्य पर पड़नेवाने प्रभावों को दर्शाया गया है ।

"बहुरंगी मधुपुरी" काल के विकास क्रम को चित्रित करने के साथ साथ मधुपुरी के जीवन के विभिन्न पक्षों को भी दर्शाती है । "बहुरंगी मधुपुरी" के संदर्भ में स्वयं राहुलजी का वक्तव्य इस रचना को समझने में सहायता प्रदान करेगा । उन्होंने कहा है – "इस संग्रह में मेरी 21 कहानियाँ हैं, जिनमें पर्वतीय विलासपुरियों के जीवन को अंकित किया गया है । यद्यपि यह कहानियाँ केवल काल्पनिक नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन के आधार पर लिखी गई हैं, तथापि यह भूल होगी यदि इनमें से एक एक को किसी एक व्यक्ति की जीवन कथा मान लिया जाए । मैंने हर एक कहानी के चित्रण के लिए वस्तुतः बहुत से व्यक्तियों को लिया और ऊपर से कुछ कल्पित बातें भी दी हैं।"[1] इससे यह स्पष्ट है कि राहुल एकाकी द्वारा सामूहिक सत्य को प्रस्तुत करने का

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" के प्रकाशकीय से

प्रयास इन कहानियों में करते है, जिनमें कल्पना का भी हाथ है, लेकिन जीवन और जगत से संबद्ध भी है ।

इस संग्रह की 21 कहानियाँ क्रमशः "बूढ़े लाला", "हाय बुढ़ापा", "कुमार दुरंजय", "मेमसाहब", "महाप्रभु", "लिप्स्टिक", "ठाकुरजी", "रायबहादुर", "गुरुजी", "मीनाक्षी", "गोलू", "रूपी", "राउत", "कमलसिंह", "झोरा", "बिसुन", "पेड़बाबा", "सुलतान", "मास्टरजी", "चंपो" एवं "काठ का साहब" हैं । इन कहानियों के जरिए कहानीकार ने मधुपुरी के अन्दर रहनेवाले विभिन्न वर्गो के जीवन को कथारूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

खंड क: कथ्यगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण

पहले हम कथावस्तु से परिचित हो जाएँगे । उसके पश्चात कथ्यगत विशेषताओं पर नजर डालेंगे ।

1. बूढ़े लाला

"बूढ़े लाला" कहानी में बूढ़े लाला के जीवन से संबन्धित घटनाओं में मधुपुरी के वैभव एवं ह्रास को दिखाया गया है । कहानी का मुख्य केन्द्र बूढ़े लाला है । वे मार्टिन होटल के ठेकेदार थे। वे अपनी छोटी आयु में ही पितृग्राम को छोड़कर मधुपुरी आए थे । शाकाहारी लाला बुरी संगत में पड़कर शराब पीने लगते हैं. जिसके फलस्वरूप उसके परिवार की हालत भी बुरी बन जाती है । ठेकेदारी के साथ साथ लाला एक दूकान भी खोलते हैं। किराया कमाने की लालच में लाला, मधुपुरी में एक राजा साहब से कर्ज लेकर मकान बनवाते हैं, जिसके बनवाने में बड़ी ही शाखर्ची दिखलाई थी । अंग्रेजों के पतन का परिणाम विलासपुरी मधुपुरी पर भी पड़ता है।

नतीजा यह हुआ कि लाला के उस बंगले को किराए पर लेने के लिए कोई नहीं आया और उनके ऊपर म्युनिसिपेलिटी ने टेक्स भी बकाया है। लाला बहुत दुःखी होते हैं और इस तरह जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार यह कहानी एक व्यक्ति और परिवार के अर्थिक जीवन चक्र को समूचे परिवार के साथ जोड़कर देखती है।

2. हाय बुढापा

"हाय बुढापा" कहानी में एक विलासी सैलानी का जीवन चित्र है। इसके प्रथम दृश्य में मधुपुरी के सीजनों का वर्णन है। नवंबर-दिसंबर, जनवरी-फरवरी को छोड़, बाकी आठ महीनो में मधुपुरी, यात्री लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। दूसरे दृश्य में प्रमोदबाला नामक फैशनपरस्त नवयुवती का विवरण है, जो मधुपुरी के प्रमोदभवन में किराए पर रहती है। उसका पति एक सरकारी उच्च अफसर है, जो पैसेवाला है। प्रमोदबाला और पति दोनों के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर है। वह पति से अलग स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती है. वह तो होटलों में नृत्य,जुआ, शराब आदि का शिकार है। उसके दिन का अधिकाँश समय बनाव-शृंगार में चला जाता है, पर यह श्रंगार उसकी बढ़ती हुई आयु को ढ़क नहीं पाता। पति भी आमदनी बढ़ने के साथ दुर्व्यसन करने लगता है। उस प्रमोदबाला को तरुणों को आकर्षित करने के लिए घंटो तक शीशे के सामने व्यतीत करना पड़ता है। लेकिन उसका बुढ़ापा उसे धोखा देता है। तरुणियाँ उसके इस बनाव श्रंगार पर व्यंग्य भी करती हैं।

3. कुमार दुरंजय

इसमें आज़ादी के बाद रियासतों के उत्तराधिकारियों की आर्थिक स्थिति एवं आभिजात्य जीवन शैली की अन्तर्गाथा है। यह कहानी विलासी राजकुमार की कहानी है। "दुरंजय" एक रियासती राजकुमार है। रियासतों के भारत राज्य में विलीन का

प्रभाव दुरंजय पर भी पड़ा है। अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र होने पर भी राज्य उसे नहीं मिल सकता था, क्योंकि राजगद्दी, उसी को मिलती थी, जो कुलीन हो। फिर भी उसके पिता ने मधुपुरी में उसको दो तीन बंगले और कुछ जमीन दे रखी थी। उसका अधिकांश समय मधुपुरी में व्यतीत हो रहा है। विलासी जीवन बिताने के कारण वह ऋणी हो जाता है। अपनी आय को बढ़ाने के लिए वह मधुपुरीवाली कोठी के बदले में किसी अन्य राजकुमार से उसका कृषि फार्म ले लेता है। इस बात से उसको संतोंष है कि मधुपुरी के सेठों के कर्ज का तकाजा भी छूट गया है। कुल मिलाकर अब उसका जीवन सुखमय हो गया ।

4. मेम साहब

इस कहानी की मूल अन्तर्वस्तु आभिजात्य वर्ग, उसकी मानसिकता और उसके जीवन पर व्यंग्य है। इसमें विलासी सैलानी का जीवन चित्र है। मेमसाहब सेठ वर्ग की आधुनिक नारी है। यदपि वह वेशभूषा से भारतीय है, पर आचार-विचार से पूरी मेम। वह प्रतिवर्ष अपने बच्चों के साथ ग्रीष्मकाल, मधुपुरी में व्यतीत करती है। सेठसाहब, मेमसाहब से अलग मैदानी नगर में रहते है। मेमसाहब का रहन-सहन आडंबरपूर्ण है। सात मास के मधुपुरी जीवन में वह तीस-चालीस हजार रुपए खर्च करती है। जिन दूकानदारों से वह ऊधार लेती है, उन्हें रुपयों की प्राप्ति के लिए लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

5. महाप्रभु

यह कहानी धार्मिक ढ़ोंग, आडंबर और पाखण्ड की पोल खोलनेवाली कहानी है। अंधश्रद्धा एवं धार्मिक पूँजीवाद, जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था की अपनी विशेषताएँ हैं, यह कहानी उस प्रक्रिया को रेखांकित करती है । टीकाराम का जन्म एक निर्धन

परिवार में हुआ। उसने शिवपुरी में नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त की । धनी बनने के लिए वे अब "महाप्रभु" बने हुए हैं। हरिद्वार में गंगा तट पर उनके उपदेश सुनने के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है। महाप्रभु, श्रद्धालु स्त्रियों में से करमा नामक स्त्री की और आकृष्ट होते हैं ओर उससे शादी भी करते हैं। श्रद्धालु लोग उनके इस कार्य की निन्दा न कर उनकी शक्ति (करमा) की भी पूजा करने लगते हैं।

6. लिपस्टिक

यह कहानी नारी जाति के सौन्दर्य और प्रसाधन-प्रियता के वर्गीय स्वरूप और आर्थिक कारणों की तलाश करती है। नारी की आर्थिक मुक्ति और उसकी श्रंगार वृति में विलोम संबन्ध दिखाते हुए दो अल्प आर्थिक वर्ग की युवतियों के माध्यम से इस फैशन के सामाजिक-बौद्धिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। कुंजा की बहू मधुपुरी के एक वैश्य परिवार की वधू है। अंग्रेज और ईसाई सैलानी महिलाओं के प्रभाव से वह लिपस्टिक का प्रयोग करने लगती है। गली-मुहल्ले की रुढ़िवादिनी स्त्रियाँ उसके इस अभिनय की कटु आलोचना करती हैं। कुंजा की बहू का यह व्यवहार उन्हें अच्छा नहीं लगता। यह इसलिए कि उसकी देखा-देखी उनके घर की बहू-बेटियाँ भी ओंठ लाल करने लगेंगी। सिनेमा देखने के साथ साथ मधुपुरी में भी लिप्स्टिक का प्रयोग अधिक हुआ । पति को लुभाने का वह एक अच्छा साधन था। अतएव धीरे धीरे अन्य तरुणियाँ भी उसकी ओर आकर्षित होती हैं।

7. ठाकुरजी

यह कहानी ब्रिटिश भारत के जागीरदार राजाओं की शान-शौकत, अभिजात्य लाड़-प्यार, पुत्री मोह तथा आर्थिक भव्यता का प्ररर्शन करनेवाले भवन-निर्माण की मानसिकता का वर्णन करती है। कहानी इस प्रकार है कि एक राजा का अपनी पुत्री

से बहुत प्रेम है। विवाह के बाद भी पुत्री अपने पिता के पास ही रहती है । वेशभूषा तथा चालढाल से वह पूर्ण रूप से यूरोपीय नजर आती है, पर धार्मिक विचारों की दृष्टि से भारतीय प्राचीनता की झलक है । राजा अपनी लड़की के लिए मधुपुरी में एक ठाकुरजी का मन्दिर बनवा देते हैं । भारत की स्वतंत्रता के बाद राजाओं के ह्रास के साथ ठाकुरजी के भी बुरे दिन आ जाते हैं । मंदिर की दशा भी वैसी हो जाती है ।

8. रायबहादुर

यह कहानी कांग्रेस के नैतिक अध:पतन और वर्ग-चरित्र पर एक तीखी टिप्पणी है। लाला दयाचन्द वकील था। वकालत से ऊबकर वह क्लर्क हो गया। वह अंग्रेजों की अनन्य भक्ति द्वारा रायबहादुर की उपाधि प्राप्त करता है । भारत से अंग्रेजों के जाने के बाद रायबहादुर का, आर्थिक रूप से पतन होता है । समय को पहचानकर वह कांग्रेस भक्त बन जाता है । वह मधुपुरी में होटल खोल देता है और आर्थिक रूप से संपन्न बन जाता है । वहाँ अब उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी ही नहीं रह जाता है । इस कहानी के माध्यम से राहुल ने अंग्रेजो की प्रशासनिक कूटनीति और शैली को रेखांकित किया है।

9. गुरुजी

गुरुजी एक भद्रपुरुष की कहानी है, जो मिथिला निवासी है । उनकी शिक्षा गाँव में हुई थी। परिवार चलाने के लिए एक दिन वे पश्चिम की ओर जाते हैं । अधिक वेतन पाने की इच्छा से वे संस्कृत के साथ साथ अंग्रेजी भी पढ़ते हैं। वे मधुपुरी पहुँचकर पादरियों के स्कूल में अध्यापक बन जाते हैं और दो वर्ष बाद कुछ रुपए कमाकर एक सौराष्ट्र लड़की से शादी भी करते हैं । मधुपुरी में उनके मित्रों की संख्या बढ़ जाती है और मधुपुरी उन्हें घर से भी अधिक सुखद लगता है । तीस वर्ष तक

मधुपुरी में रहने के बाद 56 वर्ष की आयु में रिटायर होकर वे अपनी जन्मभूमि में वापस आते हैं।

10. मीनाक्षी

यह, विलासिता में डूबी हुई सैलानी युतती का चित्र खींचती है । कहानी की नायिका मीनाक्षी विशाल तथा सुन्दर आँखोंवाली आधुनिकतम राजकुमारी है । यद्यपि वेशभूषा और खानपान में वह पूर्णत: पाश्चात्य है, विचारों की दृष्टि से वह रूढ़िवादी है। आयु के बढ़ जाने पर भी उसका विवाह अभी तक नहीं हुआ । वह अपने सामन्तवर्ग से बाहर किसी सुयोग्य पुरुष से विवाह करना चाहती है, लेकिन वह इसी प्रतीक्षा में है कि पहले कोई अन्य राजकुमारी ऐसा करे, तब वह भी कर ले ।

11. गोलू

गोलू इस कहानी का नायक है, जो मधुपुरी का मजदूर है । उसे जवानी से बुढ़ापे तक पशुओं की तरह बोझ ढ़ोना पड़ता है । केदारखंड़ के एक पहाड़ी गाँव में गोलू का जन्म हुआ था । बचपन में उसका काम पशुओं को चराना था । जब उसकी उम्र चौदह-पन्द्रह वर्ष की हुई, तब वह अपने माँ-बाप के साथ खेतों में भी काम करने लगा। जब वह सत्रह साल का हुआ, तब उसकी माँ की मृत्यु हुई। जीविका चलाने के लिए उसे मधुपुरी में मजदूरी करना पड़ा । उसकी कमाई के पैसे से उसके पिता दूसरी शादी करता है । इस शादी से भी दो बच्चे पैदा हुए । अब परिवार की बोझ भी बढ़ी। गोलू भी शादी करता है । पिता द्वारा लोगों से लिए हए ऋण को उतारने के लिए उसे कठिन परिश्रम करना पड़ता है । मजदूरी के बीच में उसकी आँखें नष्ट हो जाती हैं। पुन: आँख बनवाकर घर लौटते वक्त देखता है कि उसकी पत्नी ने देवर से विवाह कर लिया है । अत्यंत दु:खी गोलू यांत्रिक रूप से अपना जीवन व्यतीत करता है ।

12. रूपी

'रूपी' आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करनेवाली एक कहानी है । यह कहानी नायिका रूपी पर केन्द्रित है । वह मधुपुरी के मूल निवासियों की निर्धन कन्या है। जब उसकी उम्र चार साल की थी, तभी उसके पिता की मृत्यु हुई थी । उसकी माँ पुनः एक चौकीदार से विवाह करती है, जिससे उसे तीन चार पुत्र पैदा होते हैं । परिवार का खर्च बढ़ने पर रूपी की माँ उसे शरीर बेचने पर विवश करती है। ऐसी परिस्थिति में वह आतशक का शिकार हुई । रूपी अब समझदार बन गई । उसे समझ में आने लगा कि रूप हमेशा स्थिर नहीं रह सकता, इसलिए पाकिस्तान से आए हुए एक दर्जी के प्रस्ताव पर उससे विवाह कर लेती है । दर्जी तो अच्छा था । उसने रूपी को अच्छे ढंग से रखा । लेकिन पुनः रूपी जब अपनी माँ के यहाँ आई तो असकी माँ ने उसे फिर उसी दलदल में फंसा दी । बाद में एक दिन दर्जी आकर रूपी को ले जाता है । लेकिन जब उसे पता चला कि रूपी को पाँच महीने का गर्भ है, तो वह उसे घर छोड़ चला जाता है और रूपी पुनः वही नारकीय जीवन शुरु करती है ।

13. राउत

इस कहानी का नायक राउत पूर्वी भारत का एक अहीर है । बीस बर्ष की अवस्था में आजीविका चलाने के लिए वह पश्चिम की ओर गया । बहुत दिनों तक मलेरिया की भूमि में मजूरी करता रहा । कुछ पैसा कमाकर उसने विवाह कर लिया और उसके बाल-बच्चे भी हुए । मजूरी में असफल होकर राउत, रौताईन के साथ मधुपुरी पहुँचा और 'होटल चार्म' में प्रधान माली का कार्य करने लगा। पर उससे भी जीविका चलता न देख उसने सब्जी बेचने का काम आरंभ किया । पर इस काम से भी वह संतुष्ट न हुआ और कुछ बंगलों को मालगुज़ारी पर लेकर उसने खुद खेती शुरु

की। राउत ने एक विधवा मेम की एक ड़ेढ़ एकड़ जमीन में अच्छी खासी फसल उगा ली। खेत जोतने के लिए उसने दो बैल भी रख लिए । फसलों की सुरक्षा के लिए उसने एक कुत्ता भी पाल लिया । सब मिलाकर उसका जीवन संतोषजनक बन गया। अब पूर्वी भारत को भूलकर वे दोनों राऊत और रौताइन मधुपुरी के हो गए ।

14. कमलसिंह

यह कहानी निम्नवर्गीय जीवन शैली, समस्याओं आदि का अन्यंत मार्मिक सजीव चित्र प्रस्तुत करती है । गढ़वाल निवासी कमलसिंह रोटी कमाने की लालच से मधुपुरी आता है । सबसे पहले वह मामूली सी मजदुरी करता है । उसके बाद उसे मुनिसिपालिटी की मजदूरी मिलती है । वह किसी बिजली मिस्त्री का मजदूर बन जाता है। कुछ वर्षों के बाद थोड़ा रुपया कमाकर वह विवाह भी कर लेता है । दूसरे महायुद्ध से पहले, उसको दूसरे नंबर के लाईनमैन का काम और रहने के लिए कमरा भी मिला। माता-पिता के देहांत के बाद वह अपनी पत्नी को भी यहाँ ले आता है । अपने कमरे के बगल में दोनों कुछ खेती बाडी भी करते थे । कुछ दिनों के बाद इनके तीन लड़कियाँ और दो लड़के पैदा हुए । अब सात आदमियों के परिवार की बोझ अपनी छोटी आमदनी में ही उठाना पड़ा । इसी अवसर पर उसकी बदली हो जाती है और वह अपने पुराने सामानों को आधे-तिहाई मूल्यों पर बेचकर बदली हुई जगह पर चला जाता है । इस तरह स्थानान्तरण की सूचना उसके लिए वज्रपात बनकर उसकी आर्थिक व्यवस्था और जीवनयापन के अब तक के विकसित साधनों को पूरी तरह नष्ट कर देती है ।

15. डोरा

'डोरा' में राहुल ने आजादी के बाद अंग्रेजों के भारत छोडकर चले जाने तथा द्वितीय विश्वयुद्ध जैसी ऐतिहासिक घटनाओं से एक परिवार पर भी पडनेवाले आर्थिक प्रभाव को दर्शाया है । गोपालू पहाड़ी राजपूत था, जो मधुपुरी के 'आल्पस क्लब' का होशियार खानसामा और रसोइया था । इस कहानी की नायिका इसी गोपालू की बेटी थी। बचपन में बडी लाड़-प्यार में पली डोरा को फौजी गोरे सिपाहियों के आतंक से बचाने के लिए गोपालू जल्दी में एक गोआनी तरुण से शादी करा लेता है । वह तरुण तो एक नंबर का शराबी है । शराब के नशे में वह डोरा को मारता-पीटता था। दो लड़कियों को पैदा करने के बाद वह डोरा की उपेक्षा करता है । माता-पिता की मृत्यु के बाद दो लड़कियों की देखभाल करने में वह असमर्थ हो जाती है और दुसरे पुरुष का आश्रय लेती है, वह भी एक लड़की पैदा कर भाग जाता है। फिर डोरा दूसरे पुरुष की शरण में आती है, उसने भी वही किया । अपने पाँच बच्चों को लेकर डोरा एक अन्य पुरूष के साथ रहती है। फिर भी डोरा को अपने परिवार चलाने के लिए उधार लेना पड़ता है, लेकिन ऐसे कितने दिनों तक काम चलता – इस चिन्ता से वह व्याकुल होती रहती है ।

16. बिसुन

यह मंगोल नस्ल की खंबा नामक पहाड़ी जनजाति के एक युवक की कहानी है। किन्नर देश के 'कनम्' में पैदा हुए केशवसिंह का उपनाम 'बिसुन' था । घुमक्कड़ी उसके लिए सबकुछ थी । व्यापार के लिए वह अपने पिता के साथ तिब्बत जाया करता था। एक खम्बा तरुणी से उसका प्रेम हो गया । एक दिन रात को दोनों भाग निकले। पहाड़ी रास्ते की यात्रा के बीच बिसुन एक खड्डे में जा गिरा और वह हमेशा के लिए लँगड़ा हो गया उसके मधुपुरी में एक दूकान खोली एक लड़के को जन्म देने

के बाद उसकी खम्बा पत्नी मर गई । पुन: बिसुन ने एक दूसरी खम्बा तरुणी से शादी की। अंग्रेजों के यहाँ से पलायन ने उसके व्यापार को भी प्रभावित किया । फलस्वरुप सन् 1954 ई. में कुछ कमाने के उद्देश्य में वह पूरे परिवार के साथ दिल्ली गया और वहीं उनकी मृत्यु हुई । इसमें तिब्बत-भारतीय सीमा पर बसे पहाड़ियों के जीवन-संघर्ष, मौसम के अनुसार उनकी पहाड़ों में मैदानी भागों एवं मैदानों से पहाड़ों पर विस्थापित होते रहनेवाली यायावर जीवन संस्कृति तथा उनके कठोर आर्थिक संघर्ष और कठिनाइयों को रेखाकिंत किया गया है।

17. पेड़बाबा

यह कहानी भारतीय जनता में व्याप्त अंधश्रद्धा और चमत्कारवादी यथार्थ को सामने लाती है । मधुपुरी में किसी वृक्ष के ऊपर सकान बनाकर गेरुआ वस्त्र धारण किए कोई बैठा था । अन्ध श्रद्धालु भक्तों के द्वारा उसे 'पेडबाबा' का नाम दिया गया। पेडबाबा के यहाँ भक्तों की बडी भीड़ थी । एक महीने की अपनी तपस्या को खतम करने के बाद पेड़बाबा एक पैर पर खड़े हो भागवत की कथा सुनाने लगा । इसके बाद उसने यज्ञ किए और हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराया। मधुपुरी में जगह जगह उनको लेकर जुलूस निकाला गया । बाबा के मधुपुरी छोड़ने पर सब नागरिक क्षुब्ध थे । कार पर चढ़कर जब बाबा नीचे के नगर में पहुँचा, तब पुलीस ने उन्हें गिरफ्तार किया और बाद में पता चला कि वह बाबा डाकुओं के गिरोह का सरदार था ।

18. सुल्तान

इसमें श्रमजीवी वर्ग की संप्रदाय-निरपेक्ष दुनिया और राजनीति प्रेरित सांप्रदायिकता की समस्याओं को भारत-विभाजन के एतिहासिक परिवेश में विश्लेषित किया गया है । इस कहानी का नायक सुल्तान मधुपुरी का धुनिया है । सभी लोग

उसके काम की प्रशंसा करते हैं। वह औसत से अधिक नाटा और आकार में छोटा है। उसका कोई स्थाई निवास स्थान नहीं । भारत की स्वतंत्रता के बाद जब भारत-विभाजन हुआ, तब उसका लड़का और बहू उससे अलग होकर लाहौर में चले जाते हैं। काम न मिलने पर वह रिक्शा चलाने जाता है । उसको मालूम है कि जब तक जीना है, तब तक पेट पालने के लिए कुछ काम करना ही पड़ता है ।

19. मास्टरजी

यह, एक फौजी स्कूल मास्टर की संघर्ष कथा और जीवनयात्रा के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्दकालीन परिवेश, परिस्थितियों और समाज-इतिहास का चित्रण करती है। मास्टरजी एक गरीब ब्राहमण परिवार में पैदा हुए । उनकी शादी बारह वर्ष की उम्र में हुई थी । सोलहवीं उम्र में उन्होंने मिडिल पास किया और अपने चपरासी पिता की सिफारिश पर एक प्राईमरी स्कूल में अध्यापक बन गए । दो वर्ष गाँव के इस स्कूल में पढ़ाने के बाद उन्हें ट्रेनिंग स्कूल में नौकरी मिली, बाद में शहर की म्युनिसिपल स्कूल में उन्हें जगह मिल गई । चार बच्चे होने के बाद मास्टरजी ने मधुपुरी में पढ़ाना शुरु किया । फिर एक दिन वे फौजी स्कूल में अध्यापक बने, जिसके कारण उन्होंने मधुपुरी छोड़ा उसके बाद असाम की एक छावनी में भेज दिया गया । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सेवामुक्त होकर कुछ दिन वे बेकार रहे । फिर मधुपुरी में वे अध्यापक हो गये । ग्यारह प्राणियों को इतनी कम आमदनी में भरण-पोषण करना उनके लिए कठिन हो गया ।

20. चम्पो

चम्पो जातिपाँति के भेदभाव से उत्पीड़ीत मानव जाति की कहानी है । चम्पो, हिन्दू जमादार की लड़की है । वह अपने माँ-बाप के साथ मधुपुरी के केन्द्रीय बाजार

में रहती है । उसके माँ-बाप जहाँ जमादारी करते थे, वहाँ के मालिक की लड़की सहेली से चंपो का बड़ा स्नेह था । दोनों सहलियाँ हमेशा साथ खेलती और मौज उठाती थीं। मालिक के परिवारवाले आधुनिक विचार वाले हैं । उन्होंने अपनी लड़की को चंपो के साथ खेलने से कभी नहीं रोका । कुछ साल बाद चंपो की सहेली स्कूल जाने लगती है, चंपो भी स्कूल जाना चाहती है, लेकिन उसके माँ-बाप उसे नहीं जाने देते हैं । स्कूल जाने पर चंपो की सहेली को अन्य अनेक सहेलियाँ मिलती है। ये सहेलियाँ चंपो से बातें करने से मना करती हैं । इससे दु:खी होकर अपनी प्रिय सहेली की याद में चंपो की मृत्यु होती है । यह कहानी इस जीवन-सत्य को व्यक्त करती है कि जन्म से सभी मनुष्य बराबर होते हैं, लेकिन आर्थिक - सामाजिक शक्तियाँ उसे विभाजन और विषमता में डाल देती हैं ।

21. काठ का साहब

यह कहानी स्वतंत्रतापूर्व के ब्रिटिश अफसरों और स्वतंत्रता पश्चात के भारतीय अफसरों की प्रवृत्तियाँ, चरित्र, कार्य-व्यवहार और मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती है । ऐश और आराम के लिए अपनी जलवायु से समानता के कारण मधुपुरी को अंग्रेजों ने अपने लिए विशेष तौर पर बनाया था । भारत के स्वतंत्र होने के बाद हिन्दुस्तान के आइ. सी. एसों का यहाँ आगमन हुआ । इनका ही राज्य था। इनका आतंक अंग्रेजो से अधिक था । इन अफसरों में कार्यक्षमता या अनुशासनप्रियता नहीं थी । ये केवल अपने लोगों के लिए लाभ पहुँचानेवाले हैं । सचमुच ये 'काठ के साहब' हैं ।

कथ्यगत विशेषताएँ

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता राहुल सांकृत्यायन की प्रसिद्ध प्रगतिशील लोकचिन्ता है । अंग्रेजों द्वारा बसाई गई इस मधुपुरी को एक विलास नगरी के रुप में ख्याति मिली। जब सन् 1954 ई. में इस संग्रह की कहानियों का प्रकाशन हुआ, तब अंग्रेजों का भारत से प्रस्थान हुआ था। लेकिन कुछ लोगों को यहाँ रहना पड़ा। इन कहानियों द्वारा हम भिन्न-भिन्न स्तरों के मनुष्य के जीवन से साक्षात्कार पा सकते हैं । "बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियों में भारतीय रियासतों के विलासी राजा-रानी और राजकुमार हैं, जो रियासतों के विलयन के बाद अपने बचे हुए धन की सहायता से भोग और विलासपूर्ण जीवन में अपने दुःख को भूलने की कोशिश करते हैं। इन कहानियों में गुरुजी, राउत कमलसिंह जैसे परिश्रमी किसान, मजदूर और अन्य साधारण लोग भी हैं, जो जीवन को सार्थक बनाने का आग्रह रखते हुए भी असफल होते हैं । मेमसाहब, प्रमोदबाला एवं मीनाक्षी जैसी नारियाँ भी हैं, जो स्वच्छन्द जीवन बिताना चाहती हैं। प्रमोदबाला की सबसे बड़ी चिन्ता उसकी खिसकती हुई जवानी है यथा कहानीकार उसका चित्रण इस प्रकार करते हैं- "वे कभी एक होटल में और कभी दुसरे होटल में चली जाती । ब्रिज खेलने का उनको शौक था और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि खेल में उन्हें हारना ही पड़ता था। प्रमोद भवन में वे कुछ गंभीर मुद्रा में देखी जातीं, लेकिन होटल के हाल में उनका चेहरा खिला और मुँह से हँसी के फव्वारे निकलते रहते । उनके बाल काले और स्थाई लहरोंवाले थे, आँखों की भौंहों पर काली पेन्सिल चली होती । पलकों को कृत्रिम रुप से बड़ी किए, मृगनयनी बनने के लोभ में आँख की कोरों को काजल की रेखा से लंबी किए अपने कदरदानों से घिरी रहते समय वे आनन्द विभोर देखी जा सकती

थी।"[1] 'महाप्रभु' में धर्मोपजीवी वर्ग के जीवन दर्शन और महत्वाकांक्षा की व्यावहारिक प्रक्रिया को राहुल ने व्यक्त किया है । 'रायबहादुर' कहानी में राहुल कांग्रेस के नैतिक पतन और वर्ग – चरित्र पर व्यंग्य करते है। उनकी राय में अंग्रेजों के इशारे पर देशभक्तों पर अत्याचार करनेवाला ही आज दिल्ली के देवताओं का सबसे बड़ा कृपापात्र बना है। कहानी-कार के शब्दों में कहें तो "रायबहादुर अंग्रेजों के अनन्य भक्त थे, जैसा कि हरेक रायबहादुर के लिए होना चाहिए । आखिर अंग्रेजों की राय से राय मिलाने में बहादुर होने के कारण ही तो रायबहादुरी दी जाती थी । फिर उपाधियों का क्या यहीं अन्त था । रायबहादुर के हृदय में आशा थी कि अंग्रेज बरकरार रहें, एक दिन मैं सर और राजा की उपाधि लेकर रहूँगा ।"[2] रायबहादुर अंग्रेजों के लाडले थे और कांग्रेस और कांग्रेसियों से नफरत करते थे। इस कहानी में राहुल ने तत्कालीन राष्ट्रीयता में दिखाई पडनेवाले एक नग्न सत्य की ओर भी इशारा किया है कि "कानून छोटे-मोटे लोगों के लिए होता है, बडे लोग कानून से ऊपर हुआ करते है।"[3] पचास वर्ष बाद भी राहुल का यह कथन प्रासंगिक है।

राहुल हमारे यहाँ के कांग्रेसी शासन की अपेक्षा अंग्रेजों के शासन को श्रेष्ठ समझते हैं यथा- "दफ्तरों में फाइल भले ही कछुए से भी धीमी गति से चलती हो- अंग्रेजों के समय जिस काम को एक आदमी समय पर कर सकता था, उसके लिए पाँच आदमी रखे गए और तब भी फाइलें तब तक पड़ी रहती हैं, जब तक कि उनके कुछ भाग को दीमक नहीं चाट जाता ।"[4] आज के भी सरकारी दफ्तरों की हालत ऐसी ही है। 'कुमारदुरजय' कहानी में कहानीकार ने रियासतों में वैध-अवैध संतानों के झगड़ों के शिकार, विलास एवं फिजूलखर्ची में जीनेवाले लोगों की कहानी बताई है।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – छठाँ संस्करण – सन् 1997ई. – पृ 20
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 94
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 98
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 103

अंग्रेज़ों के पलायन के बाद विलासपुरी के बुरे दिन आए हैं । इसका प्रभाव कोठियों की कीमत पर भी पड़ा है। रियासतों के बिखराव के कारण मुसाहबों और खवासों को वहाँ से भागना पड़ा । रियासती राजाओं का चित्रण 'कुमारदुरंजय'. के माध्यम से राहुल करते हैं यथा – "जब पहाड़ों में उनकी सवारी आती, तो अखबारों और शहरों से बहुत दूर पिछड़े युग में रहनेवाने भोले-भाले पहाड़ियों में भी आतंक छा जाता। बहू-बेटियों की हिफाज़त करो-वाला राजा आया है। लेकिन इस तरह बहू बेटियों की रक्षा होनेवाली नहीं थी। राजा स्वयं हर जगह लूट करने नहीं जाता । उन्होंने अपने कितने ही रंगरूट अफसर छोड़ रखे थे, जो राज्य और बाहर की सुन्दरियों को जमा करने का काम किया करते थे।"[1] इस कहानी में भी राहुल काँग्रेसी शासन की निन्दा करते हैं, यथा – "कांग्रेसी शासन को न्याय – अन्याय देखने की फुरसत नहीं थी, वह सभी जगह इसी तरह चल रहा था । वह पुराने संभ्रान्त कुलों की मर्यादा को भी गिरने देना नहीं चाहता था ।"[2] 'महाप्रभु' में कहानीकार धार्मिक पाखंडता पर तीखा व्यंग्य करते हैं। महाप्रभु सोचता है कि "हमारे देश में श्रद्धा रखनेवालों की कमी नहीं । श्रद्धा गली-गली फिर रही है। अधिकतर लोग श्रद्धाप्रधान हैं। उसी श्रद्धा को रास्ते लगाने की आवश्यकता है। मैं इसे कर सकता हूँ। उतने खर्च की भी आवश्यकता नहीं । मैं गुरु बन सकता हूँ, सिद्द बन सकता हूँ । रंगमंच पर अभिनेता दो तीन घण्टे अभिनय करता है, सिद्ध और महात्मा बनने के लिए प्रायः चौबीसों घण्टे अभिनय करना पड़ता है। यह कठिन जरूर है, लेकिन मेरे लिए असाध्य नहीं है।"[3] राहुल की राय में विवेकहीन श्रद्धा, बुद्धि के लिए घातक है। उनका वक्तव्य है कि – "वस्तुतः श्रद्धा ऐसा अभेद कवच है, जिसमें तर्क या बुद्दि के बाण घुस नहीं सकते।"[4] इस अंध श्रद्धा के कारण ही समाज में ढ़ोंग

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 27
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 36
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 63
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 65

और पाखंड को बढ़ावा मिलता है। इस कहानी में राहुल ने खुले रूप से बताया है कि स्त्री-पुरुष का घनिष्ठ संपर्क, चाहे वह ब्रह्मज्ञान के क्षेत्र में हो या किसी और क्षेत्र में, वह उनके स्वाभाविक संबन्ध में परिणत हुए बिना नहीं रहता । इस कहानी में भगवान के आवतारों पर राहुलजी का अविश्वास भी प्रकट है, यथा – "भगवान के अवतारों की संख्या गिनना बिलकुल गलत है। वह स्वार्थी रहा होगा, जिसने अवतारों की संख्या दस या चौबीस तक सीमित कर दी। गीता से बढ़कर कोई पुस्तक धर्म के लिए प्रमाण नहीं हो सकती और उसमें भगवान ने एक नहीं, अनेक जगह बतलाया है कि जो वैभव संपन्न तेजस्वी व्यक्ति है, वह मेरा अवतार है, उसे मेरे अंश से उत्पन्न समझो। जब जब जरूरत पड़ती है, तब तब मैं अवतार लेता हूँ । इसलिए अवतारों की संख्या दो दर्जनों तक निश्चित कर देना केवल कपोल कल्पना है ।"[1] 'गुरूजी' में पहाड़ों के खुले और सहज जीवन की तुलना में मैदानों की तंगदिली पर कहानीकार ईष्या करते हैं। मैथिल पंड़ित अपनी जवानी के दिनों में अनजाने ही यहाँ आए थे, लेकिन अंग्रेजों के स्कूल में तीस वर्ष नौकरी करके अब गाँव लौटने की कल्पना से वे डरते हैं। इसका जिक्र राहुल ने यों किया है- "चलते समय मधुपुरी अपने पूरे गुणों के साथ उनके सामने खड़ी थी । तीस से अधिक गर्मियाँ और बरसातें उन्होंने यहाँ कितने आनन्द के साथ बिताए । न कभी पसीना आया, न पंखा झलने की ज़रुरत पड़ी । मधुपुरी में उनके कितने अधिक मित्र और परिचित थे। अब उनकी जगह गाँव के वे चेहरे मिलेंगे, जिनके ऊपर पारस्परिक सहानुभूति कम और ईष्या की रेखाएँ ही अधिक दिखाई पड़ेंगी।"[2] 'गुरुजी' के द्वारा राहुल भारतीय संस्कृति के अनुसार आदर्शों के प्रति

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 55
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 118

निष्ठावान एक पुरुष की झांकी देते हैं । परंतु अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुरुजी जैसे प्राचीन धर्मियों का ज़माना ढह रहा है और नई पीढ़ी, युग को अपने अनुकूल बनाती जा रही है । इस कहानी में मैथिल ब्राह्मणों के मांसाहार और उनका वर्ष में एक बार आयोजित होनेवाले सामूहिक विवाह सभा का विशिष्ट सांस्कृतिक वर्णन किया गया है । 'राउत' कहानी में राउत माली का काम करके, सबजी की फेरी लगाकर जीवन की गाड़ी चलाता है । खेती के लिए ज़मीन देनेवाली मेम से लड़कर और मुकदमा जीतकर वह वहीं डटे रहता है । फलों की खेती और बिक्री के लिए असुविधाओं के बीच पड़े हुए राउत को देखकर राहुल को रूस की याद आती है। वे सरकार के निकम्मेपन पर आक्रोश करते हैं, जो श्रम को मूल्य नहीं देती । हमारे देश की एसी व्यवस्था पर हँसी उड़ाते हुए राहुल कहते हैं कि "हमारे देश में शारीरिक श्रम को शर्म की बात समझी जाती है । जो बड़ा और ऊँचे कुल का बनना चाहता है, उसके लिए यह जरूरी है कि वह अपने हाथ से कोई काम न करें ।"[1] इस कहानी में कहानीकार ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई वर्ण व्यवस्था पर भी आक्रोश करते हैं। किन्तु ब्राह्मणों की बनाई वर्ण-व्यवस्था केवल प्रणाम और आशीर्वाद की योग्यता का ही निर्णय नहीं करती, बल्कि वह बड़ी जातियों (ब्राह्मण, क्षत्री, लालों, बनियों-कायस्थों) को धनागम के सभी स्रोतों को दे देती है ।"[2]

'मीनाक्षी' में परिवर्तन के क्रम में उत्थानशील नव आभिजात्यवर्ग और पतनशील पुराने आभिजात्य वर्ग की इतिहास कथा भी कही गई है। 'बिसुन' कहानी का किशनसिंह राहुल के घुमंतू स्वभाव से समानता रखनेवाला पात्र है, जो तिब्बत के सीमांत पर स्थित कनौर का मूल निवासी है। यद्यपि उनके परिवार में पांड़व-विवाह की

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 162
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 158

प्रथा है, तो भी वह स्वतंत्र रूप से एक खम्बा[1] युवती के साथ शादी करके भाग आया था। दिल्ली में फेरी लगाते हुए भारतीय पुलीस ने उसको तिब्बती मानकर चीन का नागरिक घोषित कर दिया। आखिर वह मसूरी में बस जाता है । यद्यपि उसका जीवन सुखमय नहीं था, तो भी दूसरों की दया से वह जीवन-यापन करता था । 'काठ का साहब' में भारतीय शाहबों के ऐश-आराम से पूर्ण जीवन को दिखाकर राहुल ने बताया है, उनके जीवन के मूल तत्व नौकरशाही और हिन्दी विरोध है । वे ऐसा महसूस करते हैं कि अंग्रेजों के शासन की तुलना में अबके शासन में भ्रष्टाचार अधिक बढ़ा है। अंग्रेजों में वक्त की पाबन्दी और अनुशासन का भाव था । इस कहानी में राहुल ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति की ओर संकेत किया है तथा आजादी की निरर्थकता की ओर भी । 'ठाकुरजी' में कहानीकार ने आध्यात्मिक तथा धार्मिक मूल्यों को नकारते हुए नए प्रतिमानों तथा मानव सूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। 'राउत' कहानी का राउत समझदार एवं अग्रसोची है । उनके संपूर्ण जीवन का निष्कर्ष लेखक इस प्रकार दैते हैं- "राउत और शैताइन अब मधुपुरी के हैं । यह भूमि उनके पैरों से इतनी चिपक गई है कि अब उन्हें यहीं से महाप्रयाण करना होगा। राउत सोच समझ रखनेवाले साहसी और उद्योगी पुरुष है। लेकिन उन्होंने सारे जीवन के प्रयत्न से अपने लिए जो प्राप्त किया है, क्या उनकी मजूरी उतनी ही है?"[2] इसी कहानीमें राहुल एक मजदूर के अर्थिक संघर्ष विस्थापन-स्थापन के बहाने 'अहीर' शब्द की उत्पति और समाज-इतिहास की जानकारियाँ देते हैं । श्रम की महत्ता को वे मानवीय उत्थान और प्रगति के लिए विज्ञापित करते हैं । 'रूपी' में मधुपुरी की एक रूपजीवा युवती के माध्यम से राहुल ने वेश्यावृत्ति में लगी महिलाओं का अत्यंत कारुणिक और नारकीय चित्र खींचा है।

---

1. 'खम्बा' – 'खामवाला' – अर्थात् 'खाम' – चीन की सीमा पर अवस्थित तिब्बत का पूर्वी प्रदेश है।
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 169

धर्म संबन्धी सभी पाखंडताओं को नज़दीक से अनुभव करने का अवसर राहुल को मिला था । इसलिए उनकी लेखनी मन्दिर, मसजिद और गिरजे के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थी । उनकी राय में अपने को आस्तिक कहकर मन्दिर, मसजिद और गिरजे के बनवानेवाले लोगों की आत्मा के अन्दर इन्हें बनवाते समय एक अहं का भाव रहता है कि मेरा नाम अमर होगा । राहुल कुछ कहानियों के माध्यम से ऐसे अन्ध श्रद्धालुओं की आँखों को खोलने की कोशिश करते हैं । वे अन्तर्जातीय विवाह के संबन्ध में लोगो के संकीर्ण विचारों की आलोचना इस प्रकार करते हैं – "अवश्य आनेवाला जमाना लेकिन कब जाएगा? उस वक्त आने पर क्या हुआ 'जब चिडियाँ चुग गई खेत' का वर्षा जब कृषी सुखानेः । मीनाक्षी के लिए उससे क्या आशा हो सकती है ? ----- तब मैं उसपर कदम रखूँगा ।"[1] 'सुलतान' में राहुल ने सुलतान जैसे श्रमजीवी सर्वहारा पात्र को कहानी के केन्द्र में रखकर सांप्रदायिकता के सामाजिक यथार्थ का गंभीर विश्लेषण किया है ।

राहुल के मन में नारियों के प्रति एक विशेष स्थान था । वे नारियों की वर्तमान स्थिति से संतुष्ट नहीं । हमारे यहाँ तो नारी को छूते ही अपवित्र होनेवाले कच्चे घड़े के समान चित्रित किया गया है । राहुल इस बात का विरोध करते हैं । नारियों की स्थिति विशेष का उद्घाटन वे अनेक कहानियों में करते हैं । 'लिप्स्टिक' में उनका उद्गार इस प्रकार है – "जब तक स्त्री अपने पैरों पर खडी नहीं होती, तब तक वह रूपाजीवा रहेगी, चाहे वह कोठे पर बैठे या महल के भीतर ।"[2] सदियों से चले आ रहे सामाजिक बन्धनों से त्रस्त नारी आज उन बन्धनों को समूल दूर फेंकने को तैयार है । 'रूपी' में नारी स्वतंत्रता तथा नारी समानता के जीवनमूल्यों को प्रस्तुत किया गया है ।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 130
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 75

'मीनाक्षी' में कहानीकार पिछलगू बने रहने की संभावनाओं को समाप्त करने की प्रेरणा देते हैं । 'गोलू' में वे अथक परिश्रम के बावजूद भी निरन्तर संघर्षों के चक्र में पिसते मज़दूरों की ओर इस प्रकार संकेत करते हैं – "भारत के और प्रदेशों की तरह यहाँ भी हरेक लड़के-लड़की जीने के लिए नहीं होते । उनके जीवन की अवधि निश्चित है । कोई पैदा होते ही मर जाता । पूरी जवानी पर पहुँचनेवाले आधे भी नहीं होते और आधी शताब्दी लाँघनेवाले तो विरले ही होते हैं ।"[1] 'चंपो' कहानी में राहुलजी ने जातिगत संकीर्णता का चित्र भी खींचा है ।

"बहुरंगी मधुपुरी" की अंतिम कहानी में राहुलजी के विचार उग्र रूप धारण करके सामने आए हैं । अंग्रेजों की दासता से भारतीय मुक्त हुए । लेकिन इने-गिने लोगों ने इसका गलत अर्थ लिया और मनमानी शुरु किए । ऐसे लोगों को लक्ष्य करके राहुल कहते हैं – "दिल्ली के देवताओं ने गला दबाने पर ही अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी को रखना मंजूर किया, पर इसकी बात 15 वर्ष बाद ही की जा सकती है । सन् 1965ई. से पहले हिन्दी का उनके सामने नाम लेना अक्षंतव्य अपराध है ।"[2] इस कहानी में राहुलजी की यह अभिलाषा प्रकट हैं कि भारत में जनराज्य हो, कार्यालयों और संस्थाओं में कार्य करने वाले कर्मचारी प्रजा हितैषी बने । वे जनता से सहानुभूति रखते हुए अपने में कार्यक्षमता तथा अनुशासनप्रियता जैसे गुण उत्पन्न करें । इसमें हमें असमंजस में डालने की एक बात भी आ गई है कि अंग्रेज़ों के समय में ही उन्होंने मधुपुरी का वैभव दिखाया है । उनके जाने के बाद मधुपुरी के ह्रास का चित्रण ही कहानियों में मिलता है । यह भावना शायद राजनीति प्रेरित हो सकती है ।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 134 – 135
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 274

संक्षेप में कहें तो "बहुरंगी मधुपुरी" का मूल विषय स्वतंत्रता के पहले और बाद के मधुपुरी की आर्थिक एवं सामाजिक अवस्था का चित्रण है । इन कहानियों में कहानीकार के विचार सशक्त रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष होते दीखते हैं । इस प्रकार इसका कथ्यपक्ष सशक्त है ।

खंड – ख शिल्पगत दृष्टि से "बहुरंगी मधुपुरी" का विश्लेषण

1. कथाशिल्प

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि इनमें निश्चित एवं क्रमबद्ध कथानक की कमी है । संवाद, जीवन चित्रण आदि के द्वारा इसकी सृष्टि हुई है । कहानियों में घटित घटनाएँ आपस में संबद्ध भी नहीं । पात्रों के चरित्र को विकसित करने के लिए कहानीकार ने अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों का समावेश किया है । बीच-बीच में कथा के प्रवाह को रोककर कहानीकार पात्रों के गुणों के समर्थन एवं उनके जीवन की अन्य घटनाओं का वर्णन करने के लिए तत्पर होते हैं । उदाहरण के लिए 'कुमारदुरंजय' कहानी का नायक कुमारदुरंजय को कुत्ते पालने का व्यसन है । इससे संबन्धित प्रसंग का तीन पृष्ठों में उल्लेख मिलता है । 'मेमसाहब' में भी ऐसा प्रसंग आ गया है, जहाँ शैली में शिथिलता आई है । अधिकतर कहानियों में नाटकीयता का भी अभाव है । 'ठाकुरजी' कहानी इसका स्पष्ट उदाहरण है, जिसमें किसी समस्या का आरंभ, विकास, चरम तथा रहस्योद्घाटन नहीं । इस कहानी के कथानक में इस विषय का विस्तार मात्र है कि एक राजा को अपनी पुत्री से अत्यधिक स्नेह है, वह अपनी पुत्री के लिए उसके घर के सामने ठाकुरजी का मन्दिर बनवाता है।

"बहुरंगी मधुपुरी" की 21 कहानियों में चौदह कहानियाँ जैसी 'बूढेलाला', 'हाय बुढापा', 'कुमारदुरंजय', 'मेम साहब', 'ठाकुरजी', 'गुरुजी', 'मीनाक्षी', 'राउत', 'कमलसिंह', 'बिसुन', 'पेडबाबा', 'मास्टरजी', 'चम्पा' और 'काठ का साहब' विशद भूमिका के साथ शुरू होती हैं । 'हाय बुढापा' के आरंभ से पहले ढाई पृष्ठों में मधुपुरी के सैलानियों का वर्णन है । 'कुमारदुरंजय' के आरंभ में सामंतवाद संबन्धी चर्चा एवं गुरुजी के आरंभ में मैथिल पंडितों के आचार-व्यवहार से संबन्धित वक्तव्य हैं । लेकिन 'रूपी' कहानी का आरंभ आकर्षक एवं जिज्ञासामूलक है । इसकी प्रारंभिक अंश इस प्रकार है – 'वह इस जीवन के लिए पैदा नहीं हुई थी । कई बार इस दलदल से निकलने की उसने कोशिश भी की' ।

कुछ कहानियों के आरंभ में ही नहीं, कलेवर में भी सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का विशद चित्रण है । उदाहरण के लिए 'लिप्स्टिक' में विमला और शैला के मध्य, समाज में स्त्रियों की स्थिति से संबन्धित विषयों पर वार्तापाप छः पृष्ठों में व्याप्त है । अधिकतर कहानियों में घटनाओं का इतना स्थूल एवं विशद वर्णन है कि पाठकों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती है । इसकी कहानियाँ इतिवृत्तात्मक हैं । अतः यहाँ वर्णनात्मक शैली को अपनाया गया है । समाज के सम्मुख किसी आदर्श को पस्तुत करने के लिए घटनाओं का बनाव-कटाव नहीं । उदाहरण के लिए 'राउत', 'कमलसिंह' एवं 'मास्टरजी' में केवल जीवनवृत्त प्रस्तुत किए गए हैं । इनमें किसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत नहीं । उसी प्रकार 'हाय बुढापा' में प्रमोदवाला के बनावश्रृंगार एवं विलासी जीवन का विशद वर्णन है । वह अपने पति के प्रति अन्यमनस्का क्यों है क्या यह उचित है आदि विषयों की ओर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है । डोरा और चंपो कहानियाँ दुःखान्त हैं ।

कुछ कहानियों के बीच में अनावश्यक प्रतीत होनेवाले प्रसंग भी आए हैं । उदाहरण के लिए 'सुलतान' कहानी की धुनिया को देखकर कहानीकार सियार और धुनिया की कथा कहने लगता हैं । उसी प्रकार मधुपुरी के मुसलमानों की दशा से परिचित कराने के लिए एक मुसलमान का पत्र भी उद्धृत किया गया है । ऐसे प्रसंग कथाप्रवाह में बाधक सिद्ध हुए हैं । इसके सिवा प्रत्येक कहानी में मधुपुरी की ऋतुओं एवं इसके विकास तथा पतन का चित्रण है, जिससे कथा-गति रुक गई हैं । कुछ कहानियों में विवेचनात्मक शैली आ गई है । अर्थात् एक तथ्य को प्रस्तुत कर उसके समर्थन में अपने मत को प्रस्तुत करना, उपन्यास में तो इसे स्थान मिलता है । लेकिन कहानी में यह अवांछनीय है ।

इतना होने पर भी ऐसे प्रसंग भी आए हैं, जिनमें रोचकता का तत्व मिलता है। 'हाय बुढापा' में प्रमोदबाला का अपने बुढापे को छिपाने के लिए शृंगार करने का प्रसंग, 'कुमार दुरंजय' में लादूराम का प्रसंग, 'ठाकुरजी' में ठाकुर की तपस्या का वर्णन आदि इसके मसलन हैं । इसकी अधिकतर कहानियाँ संस्मरणात्मक शिल्प में लिखी गई हैं ।

2. पात्र और चरित्र-चित्रण

"बहुरंगी मधुपुरी" में पात्रों की संख्या अधिक नही । प्रत्येक कहानी में एक-एक पात्र को प्रधानता दी गई है । इसके अधिकतर पात्र जैसे कुमारदुरंजय, सुलतान, मीनाक्षी, प्रमोदबाला, मेमसाहब, रूपी, डोरा और चंपो राहुल के अनुभव से गृहीत हैं । कुछ पात्र ऐतिहासिक तथ्यों पर भी आधारित हैं । इन पात्रों या इन जैसे पात्रों के विषय में कहानीकार ने जो कुछ देखा या सुना, उन्हीं के आधार पर इनके जीवनवृत्त प्रस्तुत किए गए हैं । ये पात्र सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से विभिन्न वर्ग के हैं ।

"बहुरंगी मधुपुरी" में समाज सुधारक पात्र, स्वकेन्द्रित या स्वार्थी पात्र एवं परिस्थितियों द्वारा संचलित पात्र हैं । 'लिप्स्टिक' कहानी की विमला एक सशक्त समाज सुधारक नारी पात्र है । केवल अपने सुख-दुःख की चिन्ता में रहनेवाले स्वकेन्द्रित पात्र हैं कुमारदुरंजय, महाप्रभु, रायबहादुर, प्रमोदबाला, मेमसाहब एवं मीनाक्षी । परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र सामाजिक आर्थिक स्थितियों से उत्पीडित हैं, जो कमलसिंह, सुलतान, मास्टरजी, रूपी, डोरा और चंपो हैं ।

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियाँ चरित्र चित्रण प्रधान हैं । चरित्र चित्रण सांकेतिक नहीं, स्थूल हैं । 'महाप्रभु', 'बूढेलाला', 'रायबहादुर', 'गोलू', 'रूपी', 'राउत', 'कमलसिंह', 'डोरा', 'बिसुनसिंह', 'मास्टरजी' एवं 'चंपो' कहानियों का संबन्ध पात्रों के प्रायः संपूर्ण जीवन से है ।

पात्रों के चरित्र के विस्तृत चित्रण तथा कथा के विकास के लिए कहानीकार ने कल्पना का भी उपयोग किया है । उदाहरण के लिए 'गोलू' में गोलू के जीवन के पचास वर्षों से संबन्धित घटनाओं का उल्लेख मिलता है । गोलू के जीवन की कुछ घटनाओं को कहानी के रूप में विकसित करने तथा उसके चरित्र-चित्रण के लिए कहानीकार ने कल्पना का आश्रय लिया है ।

समाज सुधारक पात्र विमला को राहुल ने इस प्रकार चित्रित किया है कि विमला सुशिक्षित महिला है । वह महिलाओं को समाज में उचित स्थान देने के पक्ष में है । इसलिए वह क्रांति चाहती है । इसके लिए वह महिलाओं में नव विचारों का प्रचार आवश्यक मानती है ।

स्वकेन्द्रित पात्र कुमारदुरंजय का चरित्र-चित्रण इस प्रकार हुआ है – कुमारदुरंजय एक रियासती राजकुमार है । रियासत के भारत में विलय के उपरांत वह अधिकांश समय मधुपुरी में ही रहता है । भोग विलास के लिए वह दूसरों से उधार भी लेता है । लेकिन कर्ज चुकाना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है ।

महाप्रभु महात्मा है, जो स्वार्थी एवं कामुक व्यक्ति है । धन कमाने की लालच से वह टीकाराम से महाप्रभु बन जाता है । करमा नामक अपनी एक भक्ता से गुप्त रूप में वह प्रेम करता है और अंत में उसे अपनी पत्नी बना लेता है ।

राय बहादुर, केवल अपना ही उत्कर्ष चाहता है । स्वार्थ के लिए वह स्वाभिमान को भी छोड़ता है । चाटुकारिता की नीति के कारण वह अंग्रेजी शासनकाल में रायबहादुर और उसके बाद मधुपुरी का सबसे बड़ा सेठ बन जाता है ।

पेडबाबा नाम से प्रसिद्ध साधु डाकुओं का सरदार है । उसने पुलीस से बचने के लिए ही ऐसा वेश पहना था । अंत में इस ढोंग का रहस्य खुल जाता है ।

प्रमोदबाला भी ऐसा एक पात्र है, जो विलासी एवं स्वतंत्र जीवन चाहती है । वह हमेशा पति से अलग रहना चाहती है । जुआ खेलना, शराब पीना उसके लिए बहुत पसन्द की बातें हैं । तरुण पुरुषों को अपने वश में लाना उसका मुख्य लक्ष्य है।

मेमसाहब एक आधुनिक सेठानी है । उसमें पाश्चात्य सभ्यता का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है । वह फिजूलखर्ची है । कर्ज चुकाना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है ।

मीनाक्षी भी एक स्वकेन्द्रित पात्र है, जो आधुनिकतम राजकुमारी है । यद्यपि वेशभूषा, खानपान आदि में वह पाश्चात्य है तो भी विचार पुराने हैं । वह अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करती है, पर साहस के अभाव में पहल करना नहीं चाहती ।

परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्रों में गोलू आता है, जो मधुपुरी का भारवाहक है । दिन काटने के लिए उसे अत्यंत कठिन परिश्रम करना पड़ता है । उसकी पत्नी उसे छोडकर देवर की पत्नी बन जाती है । दुःख के गर्त में पड़े गोलू किसी तरह अपनी ज़िन्दगी रूपी गाड़ी को आगे चलाता है ।

कमलसिंह आजीविका के लिए मधुपुरी आता है । वह बहुत बड़े आर्थिक संकट में पड़ जाता है । वह स्वाभिमानी है । यद्यपि वह भाग्यवादी है, तो भी परिश्रम में विश्वास रखता है ।

सुलतान मधुपुरी का निर्धन धुनिया है । पाकिस्तान बनने पर उसका लड़का और बहू वहाँ जाते हैं । लेकिन सुलतान मधुपुरी को छोड़ता नहीं । परिश्रम पर उसका विश्वास है । धुनाई का काम न मिलने पर वह रिक्शा चलाने का काम शुरु करता है।

मास्टरजी अपने थोड़े से वेतन में नौ बच्चों के पेट भरने में असफल हो जाते हैं । दिन रात वे इसी चिन्ता में रहते हैं । स्वाभिमानी होने के कारण वे उधार नहीं माँगते । अपने दुःख को छिपाने का प्रयत्न वे करते हैं । लेकिन उनकी आन्तरिक वेदना की स्पष्ट छाप बाह्याकृति में है ।

रूपी आर्थिक संकट में पड़कर अपनी माँ के उपदेशानुसार अपना शरीर बेचने का काम शुरु करती है । एक दर्जी तो इस अभिशाप से उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करता है । लेकिन अब रूपी को गन्दगी का जीवन ही प्रिय है ।

डोरा सामाजिक एवं आर्थिक संकटों में पड़ी हुई महिला है । उसके खानसामा पति के भाग जाने पर वह क्रम से तीन और पुरुषों की पत्नी बनती है । अंत में बूढ़े पति के साथ वह रहती है । सारे संकटों को झेलते हुए वह मृत्यु की प्रतीक्षा करती है।

चम्पो का स्वभाव सरल है । समाज में प्रचलित जाति-पाँति से वह अपरिचित है । अपने दीर्घकाल की सहेली उसका साथ तोड़ती है । इससे उसके हृदय को आघात पहुँचता है और मृत्यु का वरण करती है ।

"बहुरंगी मधुपुरी" के पात्रों की विशेषता यह है कि जो पात्र कहानी के आरंभ में अच्छे हैं, अन्त तक अच्छे हैं । बुरे पात्र अंत तक बुरे हैं । उदाहरण के लिए रूपी, कहानी के आदि से अंत तक बुरा पात्र है । कहानियों के पात्रों के गुणों में परस्पर समानता है । सभी, समाज सुधारक पात्र स्वतंत्र-विचारक एवं दूरदर्शी हैं । सभी

स्वकेन्द्रित पात्र स्वार्थी एवं विलासी हैं । परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र भाग्यवादी एवं विद्रोह शून्य हैं ।

"बहुरंगी मधुपुरी" की सभी कहानियाँ चरितात्मक कोटि में आनेवाली हैं । इसलिए इनमें चरित्र-चित्रण के लिए अधिकांश प्रत्यक्ष शैली का उपयोग किया गया है। कहीं कहीं संश्लिष्ट चरित्र-चित्रण शैली अपनाई गई है, अर्थात् देखे गए और संपर्क में आए हुए व्यक्तियों को मिलाकर एक व्यक्ति की कल्पना कर ली गई है और उसमें भी कुछ बातें पहाडी जीवन के अपने लंबे पर्यवेक्षण और परिचय के आधार पर भी जोड़ दी गई हैं ।

अधिकतर कहानियों में राहुल ने पात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व के चित्रण की ओर ध्यान नहीं दिया । उन्होने केवल पात्रों की आकृति, वेशभूषा तक को ही चित्रित किया है। 'हाय बुढ़ापा' में प्रमोदबाला की आकृति और वेशभूषा का चित्रण उल्लेखनीय है ।[1] इसी प्रकार 'मीनाक्षी' कहानी में मीनाक्षी की आँखों का वर्णन बहुत विशद एवं नीरस है, यथा – "मीनाक्षी उनके लिए अनुपयुक्त नाम नहीं है, बल्कि पिछले हज़ार वर्षों में हिमालय से कुमारी तक, असम से राजस्थान तक फैले इस विस्तृत महादेश में यदि किसी के लिए मीनाक्षी शब्द का ठीक से उपयोग किया जा सकता था, तो इन्हीं के लिए । इतनी बड़ी आँखें देखने के लिए आपको न तो जैन हस्तलिखित पुस्तकों के पन्नों को उलटना पड़ेगा और न ऐसे किसी देवता की झाँकी करनी पडेगी, जिसके चेहरे की अपेक्षा कहीं अधिक बडे आकार की आँखें ऊपर से चिपका दी गई हैं। सचमुच जीते-जागते, चलते-फिरते मनुष्य में ऊपर से बड़ी आँख का चिपकाया जाना असंभव है, लेकिन असंभव बात मीनाक्षी के लिए संभव हो गई है ।[2] इस प्रकार अनेक स्थानों में केवल पात्रों के कार्य एवं बाह्य चित्रण मात्र है । उनके आंतरिक व्यक्तित्व का कहीं भी चित्रण नहीं ।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 16 2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 122

3. संवाद

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियाँ पात्रों के जीवनवृत्त के रूप में है । इसमें कथोपकथन तत्व का प्रायः अभाव है । लेकिन 'लिप्स्टिक', 'महाप्रभु' एवं 'डोरा' कहानियाँ कथोपकथन से आरंभ होती हैं । कथोपकथनों का उपयोग मुख्यतः कथानक के विकास के लिए हुआ है और वातावरण सृजन के लिए भी महाप्रभु में रमेश और श्याम नामक दो मित्रों के वार्तालाप से कहानी विकसित होती है । जो कथोपकथन हैं, वह सहज एवं स्वाभाविक हैं । 'लिप्स्टिक' में मुहल्ले की स्त्रियों के संवादों द्वारा बदलते हुए फेशनों पर टिप्पणी है । कहानियों का संवाद पात्रानुकूल एवं भाषा भी पात्रानुकूल है ।

4. वातावरण

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियाँ देशकाल सापेक्ष हैं । इन कहानियों में वातारवण चित्रण अधिक सशक्त हो उठा है । इनमें काल के विकास क्रम को चित्रित करने का प्रयास भी हुआ है । इसकी समस्त कहानियों की घटनाएँ उत्तरप्रदेश के मसूरी में घटती हैं । इन कहानियों की पृष्ठभूमि स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत के आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवर्तनों पर आधारित है । इन कहानियों के माध्यम से राहुल ने अंग्रेजों से लेकर कांग्रेसी प्रभुत्वकाल की संस्कृति, समाज, परिवेश और व्यवस्था का चरित्र रेखांकित किया है । सन् 1950 ई. के आसपास की राजनीतिक स्थिति की ओर राहुल इस प्रकार संकेत करते हैं – "पुराने बड़े साहब की जगह नए बड़े साहब आए, जिनके रंग में फर्क ज़रुर है, लेकिन तनखाह में कोई फर्क नहीं, जिनकी योग्यता में कमी ज़रुर है, किन्तु रोब में नहीं । यह भी

पुराने साहबों की तरह ही जनता से अलग रहना पसन्द करते हैं ---- ठाठ-बाट में अपने पूर्वाधिकारियों का खूब प्रभाव है ।"[1]

बीसवीं शताब्दी की सामाजिक अवस्था पर विचार करें तो कहा जा सकता है कि इस समय नगरवासियों के रहन सहन में अधिक विलासिता आ गई है । इस पर अधिक व्यय किया जाता है । पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित लोगों की दिनचर्या एवं वेशभूषा में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है । पुरुष के समान स्त्रियाँ भी कोट और पेंट पहनने लगी हैं । रहने के लिए फैशन की भव्य कोठियाँ भी बनने लगीं ।

आर्थिक रूप से नगर में रहनेवाले श्रमिकों और गरीब लोग बडी कठिनाई से गुज़रते हैं । उन्हें पेट भर भोजन भी न मिलता है । भुखमरी से मृत्यु भी हो जाती है। सामन्तों, ज़मींदारों व सेठों के पास पैसा जमा हुआ है ।

सांस्कृतिक स्थिति पर विचार करें तो बीसवी शताब्दी में भारतीय संस्कृति पर अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव दीख पड़ता है । यह प्रभाव भारतीयों के भोजन एवं रहन सहन के अलावा मनोरंजन में भी स्पष्ट है । नगरों में रहनेवाले सामान्त, राजकुमार, सेठ आदि लोग विलासी जीवन के लिए धन का अपव्यय करते हैं । स्त्रियाँ भी विलासपूर्ण जीवन बिताना चाहती हैं । वे होटलों में नृत्य करती हैं, जुआ खेलती हैं और तरुणों को आकर्षित करने पान-गोष्ठियों में भी भाग लेती हैं । तरुण-तरुणियाँ इस समय ग्रीष्मकाल व्यतीत करने के लिए प्रायः पर्वतीय क्षेत्रों में जाते हैं । लेकिन नगरों में रहनेवाले अन्य मध्यवर्ग के लोगों का जीवन सादा अवं आडंबरहीन है । नगरों-व-ग्रामों में रहनेवाले श्रमिकों को मनोरंजन की अपेक्षा पेट भरने की चिन्ता है । आर्थिक विषमता का सशक्त रूप 'गोलू', 'राउत', 'बिसुन' और 'कमलसिंह' कहानियों में मिलता है ।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 274 – 275

राहुल ने प्रकृति को कभी छोड़ा नहीं । उदाहरण के लिए 'बिसुन' कहानी का प्रकृति चित्रण रमणीय बन पड़ा है, यथा – "कनम गाँव के पास होती सतलज से पर्वत पृष्ठ के ऊपर तक जो रेखा खिंचती है, उसकी एक ओर देवदार और धूपी के दरख्त हैं, जो असावधानी के कारण कहीं-कहीं विरल हो गए हैं और कहीं कहीं देवदार वन का रूप लेते हैं । तिब्बत हिन्दुस्तान सड़क को पकडकर के ऊपर की तरफ चलें, तो एक ही दो मोड़ के बाद आपको वृक्षों से रहित पार्वत्य भूमि दिखाई पडेगी····· गिरनेवाला वह सूखा नाला है ।"[1]

घटनाप्रस्तुति में राहुल का दृष्टिकोण देशकालानुकूल है । उदाहरण के लिए कुमारदुरंजय, लादूराम बनिए के ऋण को चुका नहीं पाते, लेकिन कुत्ते को उनके पीछे छोड़ देते हैं । राहुल इस घटना के गतिमय चित्र को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं – "कुमार ने कुछ ऊँची आवाज़ से कहा था, जिसकी ज़रूरत भी नहीं थी, क्योंकि लादूराम कुमार के कमरे से बहुत दूर नहीं थे । भेटिए का नाम सुनते ही लादूराम के प्राण हवा हो गए । वह उल्टे पैर अपनी तोंद हिलाते बाहर की तरफ़ लपके । तुरन्त ही कुछ गज की चढ़ाई शुरू हो जाती थी, लादूराम को न जाने कहाँ से इतनी ताकत पैदा हो गई कि दौड़कर चढ़ गए और फिर सड़क पकडकर तब तक दुलकी ही भागते रहे, जब तक कि बँगला ओट में नहीं चला गया ।"[2] यहाँ चित्रात्मकता के साथ हास्य का पुट भी है, वर्णन शैली में एक विशिष्टता भी है ।

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियों की घटनाचित्रण शैली विशद है । उदाहरण के रूप में 'हाय बुढापा' का एक उद्धरण देखें - "बड़ा सीज़न महीने डेढ महीने का होता है,

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 200 – 201
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 34

लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि उसके बाद मधुपुरी सूनी हो जाती है ----- तो बिहार-बंगालवालों की बारी आती है ।"[1] इसका वातावरण चित्रण अत्यन्त आकर्षणीय बन पड़ा है ।

5. भाषा

भाषा पक्ष पर सोचते समय एक उल्लेखनीय बात यह है कि "बहुरंगी मधुपुरी" में मनुष्य के स्तर, देश, काल और जाति के अनुसार भाषा का प्रयोग हुआ है । उदाहरण के लिए मुसलमान पात्रों की भाषा उर्दू है, इस कारण उनकी भाषा में फारसी-अरबी शब्द आए हैं ।

फारसी शब्द – आखिर[2], दस्तावेज़[3], दरिन्दा[4], अफसोस[5], तनख्वाह[6], पसन्द[7]

अरबी शब्द – आलीशान[8], फिक्र[9], मददगार[10]

पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वातावरण को सूचित करने के लिए एवं शिक्षित पात्रों के संवादों में अंग्रेजी शब्द आए हैं, जो जन साधारण के प्रयोग में आनेवाले हैं । उदाहरण के लिए नेटिव[11], टावर[12], सीज़न[13], इन्कमटैक्स[14] आदि ।

कुछ कहानियों में अंग्रेजी वाक्यों एवं वाक्यांशों का प्रयोग भी मिलता है, यथा अप-टु-डेट[15], व्हाट् नॉन्सेन्स[16] आदि । इनके अलावा तिब्बती भाषा के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जैसे खम्बा[17] और गोवा[18]

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 14
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 24
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 27
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 32
5. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 31
6. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 24
7. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 22
8. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 17
9. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 31
10. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 134
11. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 80
12. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 81
13. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 87
14. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 99
15. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 44
16. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 74
17. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 206
18. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 208

भाषा में स्वाभाविकता लाने के उद्देश्य से इसमें कहानीकार ने स्थानीय बोलियों का प्रयोग भी किया है, जैसे – "पंडितजी, क्या बुज्झों हो, इब तो ये पहाडी भी चालाक हो गए । किनस्टर का किनस्टर डालडा ढो ले जावें और फिर घी के भाव साढ़े चार रुपया सेर बेच जावें ।"[1]

ग्रामीण शब्दों का प्रचुर प्रयोग इसमें हुआ है, जो अत्यंत सराहनीय है, जैसे सासरा[2], मजूर[3], अपढ़[4] । ग्रामीण मुहावरों का प्रचुर प्रयोग देखिए – आस्तीन का साँप[5], उल्लू बनाना[6], गूलर का फूल[7], त्यौरी बदलना[8], नाक-भौंह सिकोडना[9], प्राण हवा होना[10], बाजी मारना[11], मुठ्ठी गरम करना[12], रंग में भंग होना[13], बाल बाँका करना[14], ढोल गले में पड़ना[15], छत्तीस का संबन्ध[16], जान से हाथ धोना[17] ।

"बहुरंगी मधुपुरी" में हिन्दी, संस्कृत, ग्रामीण, अरबी, फारसी लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग मिलता हैं । हिन्दी लोकोक्तियाँ – दान की बछिया के दाँत नहीं देखे जाते[18], सिर ढाँके तो पैर नंगा, पैर ढाँके तो सिर नंगा[19], कभी गाड़ी नाव पर तो कभी नाव गाड़ी पर[20], चिडियाँ चुग गई खेत[21], काला अक्षर भैंस बराबर[22], सब धान बाईस पसेरी[23] ।

<u>अरबी लोकोक्ति</u> – जल्दी का काम शैतान का है ।[24]

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 3
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 73
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 162
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 58
5. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 18
6. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 39
7. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 52
8. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 34
9. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 73
10. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 34
11. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 39
12. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 238
13. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 29
14. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 31
15. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 58
16. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 88
17. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 18
18. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 31
19. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 41
20. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 104
21. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 187
22. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 77
23. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 192
24. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 24

संस्कृत लोकोक्तियाँ

'प्राप्ते मु षोडशे वर्षे गर्दभी ह्यप्सरायते'[1]

'व्यापारे वसति लक्ष्मीः'[2], बुभुक्षित कि न करोति पापं,[3]

'कुपुत्रों' जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति[4]

ग्रामीण लोकोक्तियाँ – 'घोखन्त विद्या खनन्त पानी[5],

'एक लगावे, तब्बे पावे'[6] 'पूस जाडा न माघ जाडा, जब्बे हवा तब्बे जाडा ।'[7]

अरबी-फारसी लोकोक्तियाँ –

'देर आयद् दुरुस्त आयद्'[8], 'जर बरसरे फौलाद नहीं नर्म शबद्'[9]

"बहुरंगी मधुपुरी" में हिन्दी और संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग भी मिलता है ।

हिन्दी सूक्तियाँ – 'परदेश कलेसु नरेसहु को'[10], 'बीती ताहि बिसारि दे'[11]

'का वर्षा जब कृषि सुखाने'[12], तुलसी कर पर कर धरो, कर तर कर न धरो'[13] ।

संस्कृत सूक्तियाँ – 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति', [14]

'द्रव्येण सर्वे वशाः'[15], 'सलज्जा गणिका नष्टा'[16]

इसमें एक स्वनिर्मित शब्द का प्रयोग भी हुआ है । वह है 'अग्रसोची'[17]

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 191
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 126
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 146
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 198
5. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 110
6. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 92
7. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 216
8. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 257
9. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 85
10. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 109
11. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 102
12. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 130
13. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 76
14. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 95
15. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 85
16. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 150
17. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 96

"बहुरंगी मधुपुरी" की कुछ कहानियों में व्याकरण संबन्धी असंगतियां आई हैं। इसमें 'नकली' के विपरीतार्थक शब्द के रूप में सकली[1] का प्रयोग किया गया है, जो अप्रचलित है । लिंग संबन्धी असंगतियाँ भी आई हैं । उदाहरण के लिए एक वाक्य है – 'अब तो ढ़ोल गले में पड़ चुकी थी'[2] – 'ढोल' शब्द पुल्लिंग है । यहां तो स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

"बहुरंगी मधुपुरी" में वस्तुवर्णन या घटनावर्णन वर्णनात्मक रूप में हुआ है । एक ही बात को कई बार दोहराए गए हैं । उदाहरण के लिए 'हाय-बुढापा' में ग्रीष्ऋतु के चहलपहल का विवरण ढ़ाई पृष्ठों में है । यहाँ कहानीकार ने, 'पंजाब के सैलानी तो वस्तुतः जुलाई में ही आते हैं' तथा 'जुलाई-अगस्त में पंजाबी सैलानी ही मधुपुरी में अधिक दिखाई देते हैं'[3] – इन वाक्यों द्वारा एक ही भाव को दोहराया है । इसी कहानी में अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए 'उसका यह मतलब नहीं', 'इसमें शक नहीं', 'जो भी हो', 'जिसका यह अर्थ नहीं', 'यह तो इसी से मालूम है, 'हाँ, इतना ज़रुर है' – आदि वाक्यांशों का प्रयोग कहानीकार ने किया है, जिससे वाक्य विन्यास शिथिल हो गया है । इसके सिवा 'बूढे लाला' कहानी में ऐसा एक वाक्यांश है – 'ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध ही नहीं, बल्कि दुःख्यात भी थे' ।[4] यहाँ 'दुख्यात' प्रयोग ठीक नहीं लगता।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 11
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 31
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 14
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 3

राहुल की भाषा की चित्रमयता मीनाक्षी की विशाल आँखों के चित्रण में देखा जा सकता है ।[1] भाषा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए राहुल ने उसे व्यंग्यात्मक पुट भी दिया है । उदाहरण के लिए 'कुमारदुरंजय' में ऐसा एक उद्धरण है – "भारत के सबसे बड़े निरंकुश तानाशाह थे, जिनकी कीर्ति-सुगन्ध दूर तक फैली हुई थी, भले ही जुकाम के मार अँग्रेज़ प्रभुओं की नाक तक वह नहीं पहुँचती थी ।"[2] यह व्यंग्य अन्य अनेक स्थानों में देखा जा सकता है । 'रूपी' कहानी में ऐसा एक उद्धरण है कि "शाम के वक्त कोई कोई शराब पीने के लिए आते । मालूम होता था कि रास्ते पर फिर घास जम आएगी । जब चलनेवाले पैरों की संख्या कम हो तो वैसा होना ही था।"[3] यहाँ भी हास्य का पुट है ।

6. उद्देश्य

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियों में कहानीकार की जीवनदृष्टि का संकेत इसकी भूमिका से ही मिलता है यथा – "समकालीन चित्रण होते यदि पाठकों को इससे मनोरंजन के साथ साथ कुछ और लाभ भी हुआ, तो मुझे सन्तोष होगा ।"[4]

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियों का मुख्य लक्ष्य भारत की स्वतंत्रता के पूर्व और बाद की मधुपुरी की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को दर्शाना था । प्रथम कहानी 'बूढे लाला' में अंग्रेजों के समय की एवं बाद की आर्थिक परिस्थितियों की तुलना की गई है । 'मेमसाहब', 'हायबुढापा' और 'मीनाक्षी' कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता में डूबी हुई भारतीय महिलाओं के आडंबरपूर्ण जीवन का पर्दाफाश करना राहुल

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 122 – 123
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 27
3. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 154
4. "बहुरंगी मधुपुरी" – की 'भूमिका' से

का लक्ष्य था । 'कुमारदुरंजय' में विलासपूर्ण जीवन बिताने के लिए आय से अधिक व्यय करनेवाले राजकुमार की कहानी है । 'लिप्स्टिक' में फैशन के प्रति नारियों की अंधश्रद्धा पर व्यंग्य करना राहुल का लक्ष्य है । 'महाप्रभु', 'ठाकुरजी' एवं 'पेडबाबा' में लोगों के धर्मिक अंध-विश्वास पर व्यंग्य करना राहुल का लक्ष्य था । उनकी राय में अशिक्षित ही नहीं, शिक्षित लोग भी ठग व पाखंडी साधु महात्माओं के मायाजाल में फंस जाते हैं । 'गोलू', 'कमलसिंह', 'गुरूजी', 'मास्टरजी', 'बिसुन' व सुलतान में उन लोगों की जीवन गाथा प्रस्तुत करना कहानीकार का लक्ष्य था, जिन्हें अपने परिवार का पेट पालने के लिए लहू पसीना एक करना पड़ता है । 'रूपी' में एक ऐसी लड़की की कहानी कहना उनका लक्ष्य था, जिसे निर्धनता से विवश होकर अपने शरीर को भी बेचना पड़ा है । 'डोरा' में ऐसी नारी की कहानी है, जो पति द्वारा परित्यक्ता है और अपने बच्चों को पालने के लिए क्रम से तीन पुरुषों की पत्नी बननी पड़ी है । 'चम्पो' में कहानीकार का उद्देश्य मनुष्य की जातिगत संकीर्णता के दुष्परिणाम का चित्रण करना था । 'काठ का साहब' में आज के अफसरों की अनुशासनहीनता और अयोग्यता का पर्दा खोलना उनका उद्देश्य था ।

"बहुरंगी मधुपुरी" में कहानीकार की मूल चेतना स्पष्ट रूप से प्रकट है । उनकी राय में आधुनिक युग में वैज्ञानिक आविष्कारों और सिक्षा के प्रचार के कारण मानवता का विकास शीघ्रता से हुआ । अंग्रेज़ों के संपर्क में आने से, भारत ने आधुनिक ढंग से रहने की रीति सीखी । वेशभूषा, खानपान, आचार-विचार आदि में भारत का यह परिवर्तन अंग्रेज़ों के प्रभाव के कारण हैं ।

राहुल की राय है कि धार्मिक रूढियाँ, समाज के विकास के लिए हानिकारक हैं। हिन्दु-मुसलमान एक दूसरे के धर्म पर आक्षेप करते हैं । पाखंडी साधु, अंध भक्तों को ठगाते हैं । सामाजिक रूढ़ियों में अंध विश्वास को राहुलजी समाज की उन्नति में घातक मानते हैं । उन्हें आश्चर्य है कि विज्ञान के इस युग में सिक्षित लोग भी

सामाजिक कुरीतियों से मुक्त नहीं । उनका कहना है कि इन आडंबरों पर आश्रित रहने की अपेक्षा मनुष्य को अपनी भुजाओं पर विश्वास रखना चाहिए और समाज को पाखंडी साधुओं से बचाना है । इस बात से राहुल प्रसन्न हैं कि पाश्चात्य-सभ्यता, विज्ञान के आविष्कारों एवं शिक्षा के फलस्वरुप भारतीय समाज से कुरीतियाँ समाप्त होती जा रही हैं । लेकिन अभी प्रयत्नों की ज़रुरत है, विशेषतया ग्रामों में ।

इसकी अधिकतर कहानियों का उद्देश्य स्पष्ट है । उदाहरण के लिए 'लिप्स्टिक' कहानी के उपसंहार में कहानी का उद्देश्य इस प्रकार स्पष्ट किया गया है यथा – "सचमुच ही मधुपुरी जैसी हिमाचल की विलासपुरियों में फैशन का प्रचार जितनी जल्दी और व्यापक रूप से होता है, वैसा मैदानी शहरों में नहीं होता । इसका एक बड़ा कारण यही है कि सीज़न में आए सुन्दरियों के सैलाब में यहाँ की साधारण तरुणियों के पैर उखड़ जाते हैं और वे भी प्रवाह के अनुसार बहने लगती हैं ।[1] 'रुपी' कहानी के अन्त में उद्देश्य स्पष्टीकरण इस प्रकार हुआ है – "मधुपुरी के लिए यह अकेली रुपी नहीं है । यहाँ और भी कितनी ही रुपियाँ अपने जीवन को बर्बाद कर चुकी हैं । जब हम मधुपुरी के मधुर सौन्दर्य की प्रशंसा करते नहीं थकते, उस समय हमें ख्याल आता कि सौन्दर्य को पैदा करने के लिए कितनों को नर्ककुण्ड में पड़ने के लिए मज़बूर होना पड़ा ।"[2] इसी प्रकार 'महाप्रभु' 'पेडबाबा', 'काठ का साहब', 'राउत' कहानियों में भी उद्देश्यव्यंजना अभिधात्मक है, जो कहानीकला के अनुसार अवांछनीय हैं । इसलिए पाठकों के लिए स्वतंत्र चिन्तन का अवसर नहीं ।

सारांश यह है कि शिल्प की सभी दृष्टियों से देखने पर ये कहानियाँ सफल नहीं।

---

1. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 79
2. "बहुरंगी मधुपुरी" – पृ 155

****

पाँचवाँ अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

कनैला की कथा

राहुल सांकृत्यायन

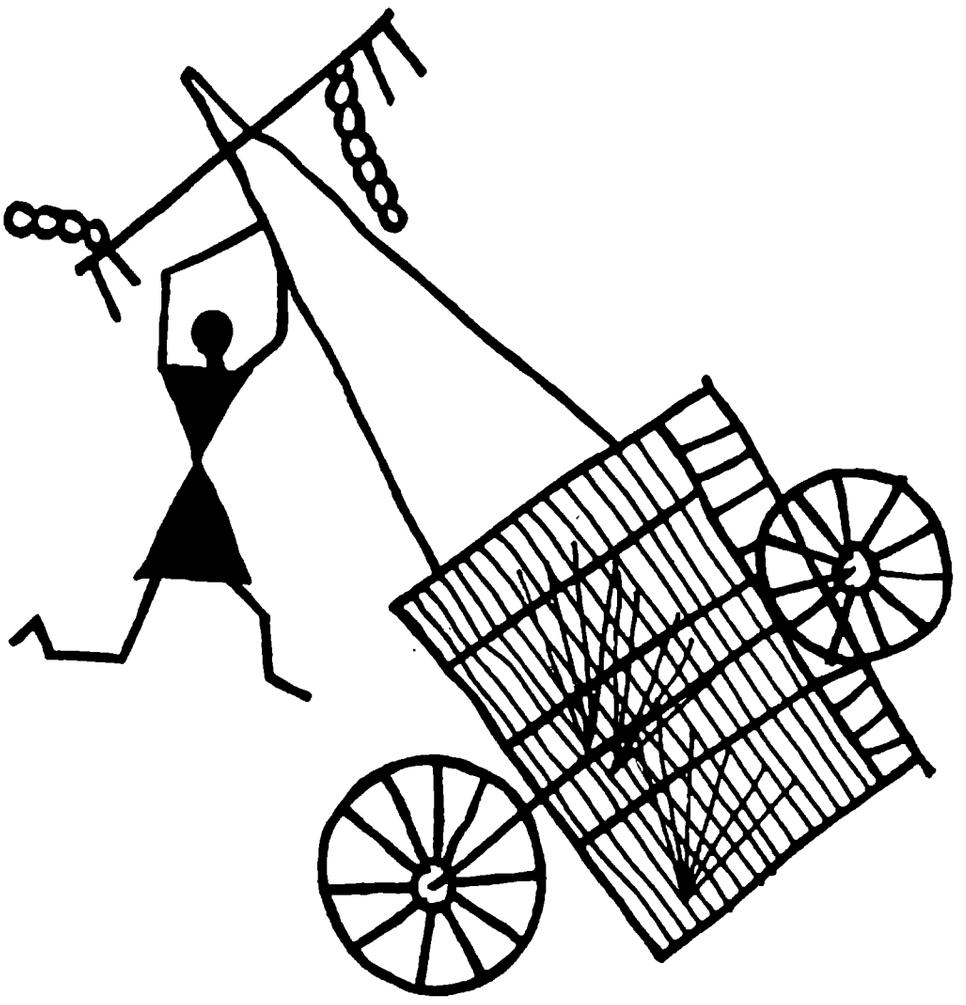

किताब महल

कनैला गांव, आज़मगढ़, उत्तर प्रदेश

सारांश

''कनैला की कथा'' की कहानियाँ राहुलजी की ऐतिहासिक एवं पुरातत्विक दृष्टि को दर्शाती है। इसके पीछे उनका गंभीर अनुसंधाता व्यक्तित्व छिपा पड़ा है। ये तो स्वयं राहुलजी के पितृग्राम से संबन्धित कहानियाँ है। उसमें भी रूढ़िगत शिल्प की ओर उनका ध्यान नहीं गया है।

पाँचवाँ अध्याय

कथ्यगत और शिल्पगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

सन् 1957 ई. में प्रकाशित "कनैला की कथा" में राहुल सांकृत्यायन ने उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ में स्थित कनैला गाँव की पुनर्रचना विभिन्न ऐतिहासिक आयामों में की है । "बहुरंगी मधुपुरी" के समान एक ही मानव बस्ती की पृष्ठभूमि से संबंधित होते हुए भी इसकी कहानियों का विषय एक ही स्थान पर रहनेवाले विभिन्न काल के मनुष्य हैं । इसमें कनैला के ई. पू. 1300 से लेकर सन् 1957 ई. तक के विराट कालखंड के मध्य आए परिवर्तनों को लक्षित किया गया है ।

अपने पितृग्राम कनैला में रहनेवाली जातियों और खुदाई में प्राप्त वस्तुओं को देखकर कनैला का अतीत कहानीकार की कल्पना में भर गया । उन्होंने इसके विषय में प्रचलित कथाओं को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का कथात्मक प्रयास किया । इस संबंध में स्वयं राहुल के वक्तव्य इस प्रकार हैं - "हमारा पितृग्राम कनैला अपने गर्भ में मौर्य - शुंगकालीन अवशेषों को ही छिपाए हुए नहीं है, बल्कि आदिम मुस्लीम काल के भी चिन्ह वहाँ मौजूद हैं । सैयदबाबा की कोट और उसके अत्याचारों की कितनी ही कथाएँ मैंने भी वृद्धों के मुँह से सुनी थीं । हमारे गाँव के सारे चुड़ीहारे और दर्जी, मुसलमान शायद उसी समय के परिचायक हैं । 4 सितंबर को मैंने 'सैयदबाबा' कहानी लिख डाली । ऐसा दिखाई पड़ने लगा, कनैला पर और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी जा सकती हैं । "कनैला की कथा" का बीज मन में पड़ गया ।"[1] इससे स्पष्ट है कि "कनैला की कथा" कनैला के जनजीवन का ऐतिहासिक भौगोलिक चित्रफलक है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन- "मेरी जीवनयात्रा" भाग 5, पृ 393

"कनैला की कथा" के 'प्रकाशकीय' में तत्संबधी उद्धरण है, जो इस प्रकार है - "दरअसल 'कनैला की कथा' के माध्यम से लेखक ने भारत के पूर्व ऐतिहासिक काल और कालानुक्रम से होनेवाले सामाजिक रूपान्तरों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है । आशा है प्रस्तुत पुस्तक विद्वानों और जिज्ञासुओं में पहले की ही तरह समादृत होगी ।"[1] यह सच है कि इसकी कुछ कहानियाँ तो इस जनपद के आदिनिवासियों के पुराने निवास और उनके राजपाट की कथा, उनपर आक्रमण और उनके विस्थापन से संबंध रखती हैं । कुछ कहानियाँ राहुल के पूर्वजों के, सरयू नदी के उत्तर स्थित मलाव (जनपद गोरखपुर) से आकर चक्रपानपुर और कनैला में बसने से लेकर आजाद भारत में होनेवाले आम चुनाव तक जाती है और उस क्षेत्र से चन्द्रजीत यादव (कम्यूनिस्ट) के विधायक बनने तक का इतिहास बताती हैं । इसकी अधिकत्तर कहानियाँ सच्चे संस्मरण के रूप में हैं । आजमगढ़ के लोगों के लिए उन सारी कहानियों के पात्र जाने पहचाने हैं और उनकी सही और सच्ची कथा है "कनैला की कथा" । कहानीकार ने इसका संकेत भी किया है कि यह कहानीसंग्रह सत्य का संग्रह है, कल्पना का नहीं और सचमुच सत्य कल्पना से मोहक होता है ।

"कनैला की कथा" में नौ कहानियाँ हैं, जो क्रमशः 'त्रिवेणी', 'काशीराम', 'बड़ी रानी', 'देवपुत्र', 'कलाकार', 'सैयदबाबा', 'नरमेध', 'सन् 57', और 'स्वराज्य' हैं । 'त्रिवेणी' में किरात, निषाद और दमिल जाति के वर्णन से कनैला के आस-पास के जीवन के चित्र हैं । 'काशीग्राम' में आर्यगृहीत कनैला का चित्र है । 'बड़ी रानी' से ज्ञात इतिहास का आरंभ होता है । इसमें 250 ई. पू स्थित मौर्य शुंगकालीन शिंशपा नगरी की कहानी है । 'देवपुत्र' कहानी 100 ई.पू. की शिंशपा नगरी का चित्र पेश करती है । गुप्तकालीन शिंशपा नगरी का कलात्मक सर्वेक्षण कलाकार में है । 'सैयदबाबा' तुर्कों की क्रूरता का पर्दाफाश करती है, तो 'नरमेध' शेरशाह और मुगल शासकों के काल की स्थिति को अंकित करती है । कनैला गाँव में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव 'सन् 57' कहानी में चित्रित है तो 'स्वराज्य' में राहुल ने परिवर्तित वर्तमान को चित्रित किया है ।

---

1. "कनैला की कथा" के 'प्रकाशकीय' से

खंड कः कथ्यगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

पहले हम इसकी संक्षिप्त कथावस्तु पर प्रकाश डालेंगें ।

1. त्रिवेणी (1300 ई.पू.)

इस कहानी में आर्यों के पूर्व की ओर संक्रमण के पूर्व किरात, निषाद और दमिल जातियों के पारस्परिक युद्ध एवं सम्मिलन की कथा वर्णित है । तीन दृश्यवाली इस कहानी के प्रथम दृश्य में पीतवर्ण, कद में मझोले, बलिष्ठ शरीरवाले किरातों का परिचय एवं जीवन-यापन का सजीव चित्र है । दूसरे दृश्य में काले रंगवाले निषादों की चर्चा एवं किरात निषाद युद्ध का वर्णन है । दोनों का लक्ष्य मंगई तट था । इस युद्ध में निषाद विजयी होते हैं और वे किरातों की सारी चीजों के अधिकारी भी बन जाते हैं । तीसरे में साँवले रंगवाले दमिल जाति का जिक्र है। उनकी आर्थिक स्थिति एवं जिन्दगी का चित्र इसमें है । उनकी जीविका का मुख्य साधन व्यापार था । व्यापार के लिए सिसवा में आए दमिल जाति का, निषादों के साथ रक्तसम्मिश्रण होता है और इस प्रकार सिसवा ग्राम, मिश्रित संस्कृति का केन्द्र बन जाता है । कहानीकार, किरात, निषाद एवं दमिल- इन तीनों जातियों के संगम को "त्रिवेणी संगम" मानते हैं ।

2. काशीग्राम (700 ई.पू)

यह कहानी मूलतः ब्राह्मणों के आर्य पूर्वजों का परिचय देती है । कहानी की परिकल्पना के अनुसार सिसवा (शिंशपा) के आर्य-पूर्वज पश्चिम से आए थे । इसमें आर्यों के आगमन के बाद की घटनाओं का विवरण है । पश्चिम से आए गौरवर्ण और सुनहले बालोंवाले आर्यों के जन का नाम 'काशी' था । काशी जनपद में शिंशपा नामक एक स्थान था, जो आज बिगड़कर 'सिसवा' हो गया । इस शिंशपा का राजन्य अरूणाश्व था । अरूणाश्व के पुत्र का नाम कृशाश्व था, जिसके मन में विद्या ग्रहण करने की बड़ी लालसा थी । अपने पिता अरूणाश्व की मृत्यु के बाद कृशाश्व शिंशपा का राजन्य बना । अजातशत्रु के शिष्यत्व में उन्होंने ब्रह्मज्ञान की शिक्षा

ग्रहण की । अजातशत्रु की मृत्यु के बाद काशी, पड़ोसी राज्य कोशल के अधीन में आ गया । तीसरे में शिंशपा का वैभव एवं उस समय के ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को भी दिखाया गया है ।

3. बड़ी रानी (250 ई.पू.)

इसमें मौर्यकालीन कनैला के राजपरिवार की तीन पीढ़ियों के निर्माण और जीवनचर्या की झांकी मिलती है । इस कहानी में कहानीकार, अवशेषों से मिले बड़ी तालाब की कुछ ईंटों के आधार पर मौर्यकालीन शिंशपा नगरी का वर्णन करते हैं । काशी जनपद का राज्यपाल राजन्य सुबाहु, सम्राट अशोक के एक चतुर सेनापति थे । उनकी जोड़ी का दूसरा यशस्वी सेनापति मद्र (स्यालकोट) के रेवत थे । काशी और मद्र को निकट लाने के उद्देश्य से सुबाहु अपने पुत्र जयंत का विवाह मुद्र के रेवत की कन्या भद्रा से कराने का प्रस्ताव रखता है । कलिंग विजय के चार वर्ष बाद सम्राट अशोक के सहयोग से राजधानी पाटलीपुत्र में विवाह संपन्न होता है । जयंत और भद्रा अब अपने पिताओं के साथ शिंशपापुरी आ रहे है । इसलिए नगर को इन्द्रपुरी के समान सजाया गया है । जब राज्य का चैत्य तैयार हुआ था, उस समय चैत्यमह में सम्मिलित होने के लिए सारे काशी जनपद के नर-नारी टूट पड़े थे । संघ महास्थविर के प्रमुख शिष्य अनेक भिक्षुओं के साथ विशेष तौर से निमंत्रित किए गए थे । अशोक के अनुसार सभी पाखंड या धर्म पूजनीय थे । राजन्य भी इस विचार के अनुकूल थे । भद्रा के अलावा जयंत ने एक दूसरी शादी की । इस कारण भद्रा का नाम 'बड़ी रानी' पड़ा । अशोक के पौत्र दशरथ के शासनकाल में भद्रा का पुत्र कर्ण के नाम पर कर्णहट्ट बसा । यहाँ रानी भद्रा के लिए उद्यान और प्रासाद बने । कर्णहट्ट के उत्तर का गाँव रानी को जेबखर्च के लिए मिला था । उस गाँव का नाम भद्रपुर था । दानपुण्य के लिए बड़ी रानी मुक्तहस्त थीं । भद्रा का बनवाया तड़ाग, उसी के नाम पर (अर्थात् भद्रा, भद्दा, बड़डा, बड़ी) प्रसिद्ध हुआ । छोटी रानी ने लहुरा ताल और भद्रा की बालसखी नहापिका ने भी एक छोटी पुष्करिणी, अपनी स्वामिनी के तडाग के पास बनवाकर अपने जीवन को सार्थक बनाया । यहीं कहानी समाप्त होती है ।

4. देवपुत्र (100 ई.पू)

यह कहानी सन् 70 ई., सन् 85 ई. और सन् 100 ई. के कनैला के इतिहास में अपना कथानक रचती है । तीन दृश्योंवाली इस कहानी में एक सार्थवाह परिवार की गतिविधियों के माध्यम से कनिष्क के शासनकाल और उसके क्षत्रप द्वारा कनैला का अतीत पुनःजीवित किया गया है । सबसे पहले शिंशपा के सार्थवाह के वैभवपूर्ण अतीत और वर्तमान की पतित अवस्था को चित्रित किया गया है । सेठनी उपासिका या सोनकेशी, वाराणसी के एक यवन सार्थवाह की कन्या थी । सोनकेशी का दूसरा नाम 'सुनन्दा' था । शिंशपा नगरी में सोनकेशी का बहुत बड़ा महल था । शिंशपा के क्षय का पूर्वाभास पाकर सोनकेशी के पति बुद्धदा्स ने महल को छोड़कर कर्णहट में रहना शुरु किया । उसके बाद उनका देहान्त भी हुआ । अपने दस वर्षीय बच्चे के साथ सोनकेशी, अमावस्या और पूर्णिया को शिंशपा में अपने पूर्वजों के विहार देखने के लिए जाया करती थी । विहार में आकर वह थेरी धम्मदिन्ना के उपदेशों को सुनती थी । देवपुत्र कनिष्क, अशोक के ही समान बौद्ध धर्म के प्रति सहानुभूति रखते थे । कनिष्क के पूर्वी क्षत्रप (उपराज) ने मिथ्रदात को आदेश भेजा कि वे शिंशपा के शासक बनकर उसका जीर्णोद्धार करें । मिथ्रदात पार्थियन था । इनके पूर्वज मूलभूमि ईरान को छोड़कर तक्षशिला बसे थे । उसका ध्यान शिंशपा के बौद्ध विहारों की ओर खिंचा गया और उन्होंने जिनदास को बुलाकर महाश्रेष्ठी की पदवी दे दी । कुछ दिनों के बाद मिथ्रदात ने अपनी कन्या शेचना से उसका विवाह भी करा दिया । मिथ्रदात और जिनदास दोनों मिलकर शिंशपा के पुराने वैभव को वापस लाए । जीर्णशीर्ण हुए शिंशपा नगरी को पुनः वैभवयुक्त होने का मौका मिला- यह इसमें वर्णित है ।

5. कलाकार (430 ई)

'कलाकार' तीन दृश्योंवाली गुप्ताकालीन कहानी है । इसका पहला दृश्य सन् 400 ई. का है, दूसरा सन् 415 ई. का और तीसरा सन् 430 ई. का है । महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के देहान्त के बाद उनका पुत्र कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य पाटलीपुत्र के शासक बने । शिंशपा नगरी में भी उस समय कुछ परिवर्तन हुआ कि पुराने सामन्त का जामाता 'महाराज' गद्दी पर बैठा । श्रीकर, शिंशपा का एक सर्वतोमुखी प्रतिभावाले कलाकार था । वहां की राजकन्या अनोमा ने श्रीकर से संगीत सीखने की इच्छा प्रकट की और श्रीकर को मजबूर होना

पड़ा । संगीत सीखते-सिखाते दोनों आपस में प्रेम करने लगे । पर अनोमा के माता-पिता इस प्रेम संबंध को कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे । लेकिन दोनों प्रेमियों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने प्रेम को कायम रखना चाहा । दोनों शिंशपा से भाग निकले । पर पकड़ लिए गए । महाराज ने श्रीकर की दोनों आँखे फुड़वा डालीं । अनोमा की शादी एक विदेशी राजकुमार के साथ हो गई । श्रीकर पाटलीपुत्र में कुमारगुप्त के दरबार में रहकर आचार्य 'सुकण्ठ' के नाम से संगीत की शिक्षा देने लगे ।

6. सैयदबाबा (1210 ई)

इस कहानी में तुर्क सिपहसालार सैयद अकरम के अत्याचारों का वर्णन है । तीन दृश्योंवाली इस कहानी का आरंभ भिक्षु तथागतश्री और माहव पंडित की बातचीत से होता है। इससे पता चलता है कि विदेशियों के सामने भारत की स्थिति उनकी चर्चा का विषय है । दोनों शिंशपा नगरी और उसकी उपनगरी कर्नहट पर भारी संकट की संभावना देखते हैं । तुर्क सिपहसालार सैयद अकरम और कर्नहट के लखनदेव के बीच में युद्ध होता है और इसी युद्ध में तुर्कों की विजय और लखनदेव की मृत्यु होती है । सैयद अकरम लखनदेव के कोट में रहने का निश्चय करते हैं । उमर के बीतते-बीतते निश्चिन्तता के जीवन ने उसको विलासी बना दिया। कहीं भी किसी सुन्दरी तरूणी का पता लगता, तो उसे सैयद के पास पहुँचाना था । उन्होंने यह कानून बनाया कि जो भी स्त्री गौने जाए, उसे एक रात के लिए कोट में ले आया जाएं । इस अत्याचारी कानून के कारण अनेक लोग इस रहस्य को छिपाकर स्वयं मूक रहे । कुछ हिम्मती लोगों ने उसको अपनाकर आत्मरक्षा की । इस नियम का पालन करनेवाले को आदर्श व्यक्ति माना जाता था । सैयद मर गया । हिन्दू मुसलमान दोनों अत्याचारी सैयद अकरम को "सैयदबाबा" कहकर पूजा करने लगे ।

7. नरमेध (1550 ई)

मुस्लिम शासनकाल की कहानी 'नरमेध' में चार दृश्य हैं । प्रथम दृश्य में गोरखपुर जिले के मलांव गाँव के पांडे लोगों का परिचय दिया गया है, जो विद्या के साथ ही शक्ति पर भी विश्वास रखते थे । 'नरमेध' शीर्षक के पीछे एक कहानी है । एक दिन डोमिनगढ़ की रानी,

तीर्थयात्रा के लिए वाराणसी जा रही थी । वह निःसंतान थी । किसी ने रानी को बताया कि मलाव के एक कुएं का पानी पीने से बंध्या भी पुत्रवती हो जाती है । रानी ने पानी के लिए अपने आदमियों को भेजा । लेकिन पांडे लोग अपने इस कुएं को परम पवित्र समझते थे । इसके एक बूँद जल को भी किसी दूसरे को देना वे पसन्द नहीं करते थे । इसलिए उन्होंने पानी नहीं लेने दिया । यह भी नहीं, उन्होंने रानी के आदमियों का अपमान भी किया। अपमानित रानी वापस चली और अपने अपमान की कथा राजा को सुनाई । इससे क्रुद्ध होकर राजा ने पांडे लोगों का सर्वनाश कर दिया । इस कहानी को इस प्रकार 'नरमेध' नाम मिला। पर, पांडे लोगों में राजेन्द्रदत्त पांडे की पत्नी बच गई थी, जो नरमेध के समय अपने पीहर में थी । उनके गर्भ में पले अहिरुद्ध, इस वंश की पुनःस्थापना करते हैं । अंत में राहुल कनैला के इतिहास का उल्लेख करते हैं । यह कहानी जातीय दंभ और सत्ता के टकराव की कहानी है।

8. सन् 57' (1857 ई)

यह कहानी सन् 1857 ई. के विद्रोह के समय के दो ग्रामीण जन भोला भर और मंगरू चमार के माध्यम से तत्कालीन अंग्रेज विरोधी मानसिकता का चित्र खींचती है । अंग्रेजों द्वारा आतंकित हिन्दुस्तानियों की अवस्था का जीता-जागता चित्र इसमें प्रस्तुत है । कनैला के ब्राह्मण वंश के स्थापक इच्छपांडे थे । उनका ज्येष्ठपुत्र रामहित था । वहाँ एक प्रथा चल रही थी कि ज्येष्ठसंतान को कुछ जेठंश मिलता था और ज़मीन के चुनने में भी उनको विशेष सुविधा दी जाती थी । सन् 1857 ई में ज्येष्ठतम् परिवार के मुखिया गोपाल पांडे थे । उनके तीन सगे और एक सौतले भाई थे । भोला और मंगरू इनके हलवाहे थे । दोनों की बातचीत का विषय अंग्रेजी शासन था । सन् 1857 ई. की स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए कनैला के जवानों की भी मांग हुई । कनैला के सारे लोग युद्ध की तैयारियाँ करने लगे । वे इस प्रतीक्षा में थे कि किसी भी समय अंग्रेज यहां भी आएंगें ।

9. स्वराज्य (सन् 1957 ई)

इसमें कनैला का अद्यतन इतिहास है । यह कहानी चार दृश्यों में विभक्त है । देश में नवजागरण का प्रभाव सर्वत्र दिखलाई पड़ा । लेकिन कनैला अब भी कूपमंडूक बना हुआ है । सब कहीं, सभी क्षेत्रों में एक बदलाव की स्थिति आई । पर तब भी कनैला के लोग प्राचीन आदर्शों पर ही टड़े रहे । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं का वर्णन करते हुए कहानीकार तत्कालीन परिस्थितियों से कनैला की तुलना करते हैं । लेकिन उस समय भी कनैला में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ । लेकिन कुछ समय बाद कनैला की जनता में थोड़ी जागृति आई। लेकिन यह नाममात्र के लिए थी । भारत की स्वतंत्रता के बाद छोटी जातिवाले बड़ी जातिवालों के जाल को पहचानने लगे और वे बड़ों के इस जाल से मुक्ति चाहने लगे । कहानीकार इस कहानी में कनैला में पंचायती खेती को कायम करने पर बल भी देते हैं ।

कथ्यगत विशेषताएँ

"कनैला की कथा" में राहुल एक विशेष व्यवस्था के पोषक के रूप में हमारे सामने आते हैं । वे इतिहास की सुदूरता में पैठकर ऐसे तत्वों की खोज करने का प्रयास करते हैं, जो उनके विचारों के वाहक हो । ई.पू. 1300 के किरातों और निषादों तक पहुँचकर उन लोगों से ऐसे तत्व निकाल लेते हैं, वे जिनकी तलाश में थे । 'त्रिवेणी' कहानी में कहानीकार ने सिंसवा में आदिम कबायली समाज का वर्णन किया है । इसके साथ ही ताम्रयुग में उन्होंने गणतंत्र की स्थापना इस प्रकार की है - "संपत्ति में अभी 'मेरी और तेरी' का सवाल नहीं आया था । जंगल और उसकी सारी उपज, जाति की सम्मिलित संपत्ति थी । मिलकर वह शिकार करते, मिलकर खाते, संकट पड़ने पर मिलकर शत्रु का मुकाबला करते ।"[1] दूसरा उदाहरण, "काली पीली दोनों जातियाँ जनयुग में थीं । उनका श्रम और संपत्ति सामूहिक थी, व्यक्तिगत नहीं, बल्कि जन या समाज की प्रधानता थी ।"[2] इस कहानी में कहानीकार, निषाद और दमिल जातियों के रक्त सम्मिश्रण की बात कहते हैं ।

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 5
2. "कनैला की कथा" - पृ 7

यथा - "निषाद और दमिल के रंग और मुखाकृति में अन्तर था, पर सिन्धु उपत्यका से बढ़ते-बढ़ते उन्हें इस जगह पहुँचने में हजार से अधिक वर्ष बीते थे । निषादों को उन्होंने अपने अधीन बनाया और निषाद दास-दासियों को भी अपने घरों में स्थान दिया था । इसका अनिवार्य परिणाम रक्त सम्मिश्रण हुआ ।"[1]

राहुल यथार्थ का चित्रण करने में हिचकते नहीं, यद्यपि वह श्लील हो या अश्लील। किरात वर्ग में स्त्री-पुरुष की स्वतंत्रता का जिक्र उन्होंने यों किया है- "उनमें अभी विवाह-प्रथा जैसी कोई चीज नहीं आई थी या उसका आरंभिक रूप ही था । सरदार कई तरूणियों के बीच सोया था । उसी तरह दूसरे नग्न स्त्री-पुरुष नाना मुद्राओं में पड़े थे । कुछ ही घंटे पहले जीवन बड़े वेग से लहरें मार रहा था । अब वहाँ मृत्यु की सी निश्चेष्टता दीख रही थी ।"[2]

'काशीग्राम' कहानी में राहुल का कथन है कि आर्यों का एक विशेष स्वभाव था कि वे ग्रामों, नदियों, भूमि, वृक्ष और वनस्पति सबके नाम बदल डालने के स्वभाववाले थे । यदि किसी पुराने नाम के बदले में अपनी भाषा का नाम नहीं मिला, तो उसके उच्चारण में परिवर्तन कर देते । उदाहरण के लिए 'शिंशपा' या 'शीशम' - जंगलों से भरे गांव होने के कारण इसका नाम शिंशपा पड़ा, जो आज बिगड़कर 'सिसवा' हो गया । काशीग्राम बाद में कोसल के अधीन हो गया । इस कहानी में कहानीकार ने ब्राह्मणों के बढ़ते हुए वर्चस्व का चित्रण इस प्रकार किया है- "ब्राह्मणों की सबसे अधिक प्रतिष्ठा थी । भोग और ऐश्वर्य में यद्यपि राजन्य ऊपर थे, पर ब्राह्मण महाशालों के वैभव से भी देवताओं को ईर्ष्या होती थी । राज्य संचालन का सूत्र उन्हीं के हाथ में था । वही महामंत्री बनते, वही न्यायासन पर बैठते थे । राजदण्ड राजा के हाथ में रहता, पर धर्मदण्ड के स्वामी ब्राह्मण थे ।"[3]

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 9
2. "कनैला की कथा" - पृ 4
3. "कनैला की कथा" - पृ 16

आर्यों के समय शिंशपा नगरी के लोगों की रूढ़ियों की तरफ लेखक संकेत करते हैं- "शिंशपा नगरी के लोगों में ब्राह्मणों के देवताओं में इन्द्र, वैश्रवण, सोम आदि का बहुत मान था । उनके निमित्त हवन-यज्ञ होते थे । पर निषादों और दमिलों के ही नहीं, बल्कि किरातों के कुछ देवता भी स्थानच्युत नहीं हुए । आर्येतर लोगों को उनमें अधिक श्रद्धा थी, क्योंकि मनोकामना पूरा करने में वह अधिक समर्थ थे और उनकी पूजा रीतियां लोगों को अच्छी तरह समझ में आती थीं । देवता यद्यपि मनुष्य या दूसरे प्राणियों के आकारवाले थे, पर उनकी मूर्ति न बना किसी वृक्ष या चबूतरे में रहते माना जाता था । उनके लिए कुछ मढ़ियाँ भी बनी थी । देवता मनुष्यों के सिर पर आकर उनके मुंह से बोलते थे । देवताओं को बुलानेवाले ओझा-सयाने की कदर आर्य ललनाएं भी करने लगी थी ।"[1] इस कहानी में राहुल ने राजप्रसादों में गृहपतियों की सुन्दर कन्याओं के प्रवेश का जिक्र भी किया है । इसके सिवा यज्ञ, पूजा आदि का विरोध भी उन्होंने किया है, यथा - "यह यज्ञ रूपी नौकाएं संसार-सागर पार करने के लिए अदृढ़ है। उनकी जगह उन्होंने विश्व के भीतर निहित अज्ञेय शक्ति का आविष्कार कर उसके बारे में कहना शुरु किया । लोगों का ध्यान इनकी ओर इतना आकृष्ट हुआ कि बड़े-बड़े ब्राह्मण महाशाल भी उनके पास ज्ञान-प्राप्ति के लिए आने लगे ।"[2]

राहुल अपनी पुरातात्विक अभिरूचियों की सहायता से खंडहरों के बीच में दबी पड़ी समृद्ध सांस्कृतिक नगरी का पुनरूद्धार करते हैं । जो बड़ी ईंटें सिसवा की खुदाई में मिली थीं, वे वस्तुतः राजन्य सुबाहु का पुत्र जयंत के चैत्य की ही मौयकालीन ईंटें थीं । जयंत अंतिम दिनों में सम्राट अशोक को अपना आदर्श मानकर बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित होते हैं । चैत्य की स्थापना, मौर्यकालीन बड़ी ईंटों का वर्णन, शिल्पियों के कौशल की पराकाष्ठा को सूचित करनेवाली बंधनियाँ, पट्टिकाओं एवं शीर्ष-पट्टिकाओं का कारुकार्य, दोनों पार्श्वों में लता एवं पुष्प से उत्कीर्ण शीर्ष पट्टिकाएँ, फल, फूल और मूर्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन आदि 'बड़ी रानी' कहानी में मिलता है । राहुल ने सम्राट अशोक के शासनकाल को 'सुवर्णकाल' के रूप में बताया है ।

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 18
2. "कनैला की कथा" - पृ 14

राहुल वर्तमान को सुखी बनाने के इच्छुक थे और वे निरन्तर भविष्य के लिए चिन्तित भी थे । वे कहते हैं- "मनुष्य उच्छिन्न न होनेवाला बहता प्रवाह है । एक पीढ़ी जाती है, दूसरी उसका स्थान लेती है । अगली पीढ़ी पहली से अधिक भव्य हो, यही कामना करनी चाहिए।"[1] धर्म को पाखंड समझनेवाले राहुल सम्राट अशोक के प्रसंग को लेकर अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार प्रकट की है- "कलिंग विजय के बाद प्रियदर्शी ने युद्ध का रास्ता सदा के लिए त्याग दिया, राज्य विजय के स्थान पर धर्म विजय को अपना लक्ष्य बनाया । उनका धर्म संकीर्ण और संकुचित नहीं था । वह अपने-पराए सभी पाखंडों (धर्मों) का सम्मान करते थे ।"[2]

'देवपुत्र' कहानी में शक एवं पल्हव (पार्थियन) संस्कृतियों का शिंशपा पर प्रभाव एवं शिंशपा के नवनिर्माण की कथा भी कहानीकार ने बताई है । जिनदास की वृद्धा दासी काली के द्वारा राहुल ने संपूर्ण मानवता के पंचमांशवाले दास-दासियों पर टिप्पणी की है । दास प्रथा का उल्लेख इस प्रकार हुआ है- "जिन्हें आकार की समानता से ही मनुष्य कहा जाता था, नहीं तो उनमें और पशु में बहुत अंतर नहीं था । पशुओं की तरह ही इन अभागे नर-नारियों, बाल तरूणों का हाट-बाजार या घर में बेचा जाता था । स्वामी खाना-कपड़ा और दवाई का प्रबंध करने के लिए इसलिए भी मजबूर थे कि दास-दासी के रूप में उनकी संपत्ति खड़ी थी, जिसके नष्ट होने का उन्हें डर रहता था ।"[3]

बौद्ध धर्म के प्रति कहानीकार की आस्था का आभास कहानियों में यत्र-तत्र मिलता है। इसका स्पष्ट रूप 'देवपुत्र' कहानी में देखा जा सकता है, यथा - "बौद्ध धर्म ने उसके (कनिष्क) हृदय को सहानुभूति से भर दिया था और भारतीय संस्कृति के भीतर पला होने से यहां के लोगों के प्रति वह विशेष सम्मान रखता था ।"[4]

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 25
2. "कनैला की कथा" - पृ 25
3. "कनैला की कथा" - पृ 41
4. "कनैला की कथा" - पृ 34

'कलाकार' में संगीतकार श्रीकर और राजकुमारी अनोमा की प्रेम कहानी और उसका क्रूर परिणाम अंकित है । मथुरा के राज्यपाल की सहायता से श्रीकर 'सुकण्ठ' नाम धारण करके कुमारगुप्त के दरबार पाटलीपुत्र पहुँचता है । अपनी प्रियतमा की अनन्त स्मृति में बुद्ध के शांत-सौम्य व्यक्तित्व की अपेक्षा, हरगौरी के प्रेम-युगल रूप की ओर वह खिंचा जाता है । यहां बुद्ध को शांत-सौम्य के रूप में चित्रित किया गया है । लेकिन सुकंठ के लिए वह वर्णहीन, विचित्रताहीन लगता था ।

'सैयदबाबा' कहानी में कहानीकार ने बताया है कि हम भारतीय, तुर्कों से हारने का मुख्य कारण यह था कि युद्ध का सारा दायित्व केवल क्षत्रियों पर केन्द्रित होना था, साधारण जनता को उसमें शामिल होने का अवसर नहीं देना चाहिए था । सब लोगों के सारे प्रयासों के बावजूद राजा लखनदेव को तुर्कों से पराजय खाना पड़ा । कहानीकार तुर्कों से पराजित होने का, उत्तरदाई हिन्दुओं को मानते हैं । वे कहते है- "हमने स्वयं अपने को बेबस बना लिया है। हमारे लोगों को अब भी इतना ध्यान नहीं आया कि आपस की दुश्मनी को भूलकर, मिलकर स्वेच्छा से मुकाबला करें । सभी सामन्त और राजा अपनी खानदानी दुश्मनी और स्वार्थ को इतनी जल्दी भूलने के लिए तैयार नहीं है । हमारे इस इलाके में क्षत्रियों का बोलबाला है। हमारे पूर्व और पश्चिम के कितने ही भागों में भूमिहार सामन्त हैं । भूमिहारों और क्षत्रियों में सांप और नेवले का संबंध है । जब तुर्कों के कृपापात्र बनने का सवाल आता है, तो एक दूसरे से आगे बढ़कर सिर झुकाने के लिए तैयार हो जाता है ।"[1]

इस प्रकार हिन्दू अपनी आपसी शत्रुता को भूलने के लिए तैयार नहीं और तुर्कों के कृपापात्र बनने में ही सुरक्षा एवं गौरव मानते हैं । तब के तुर्कों के सेनापति सैयद अकरम, 'सैयदबाबा' बन गए । उनके अत्याचारों को भूलकर हिन्दू-मुसलमान समान रूप से उसे पूजते हैं। राहुल की राय में आज भी ऐसे अत्याचारी लोग पूजा के पात्र बन जाते हैं । यहाँ राहुल की प्रासंगिकता खुले रूप में प्रकट है । ज्योतिष में विश्वास न करनेवाले राहुल ने माहव पंडित द्वारा अपनी अभिव्यक्ति प्रकट की है - "भन्ते तथागत, ज्योतिष को मैंने भी पढ़ा है । ज्योतिषियों की

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 60

भयंकर भविष्यवाणियों पर मैं विश्वास नहीं रखता, न पुराने ग्रंथों में म्लेच्छ राज्य के कायम होने की बात पर ही मेरा विश्वास है ।"[1] इस कहानी में तुर्क शासन में सिपहसालार द्वारा पीड़ित स्त्री की दशा का वर्णन इस प्रकार मिलता है - "उमर के बीतते-बीतते शांति और निश्चिन्तता के जीवन ने सैयद अकरम को विलासी बना दिया । उसके हरम में लखनदेव के रनिवास की सुन्दरियाँ अब उमर में ढल चुकी थीं, फिर सैयद को उतने ही से संतोष कहाँ हो सकता था? वहाँ की एक-एक सुन्दरी पहले ही चुन ली गई थी, लेकिन उनके आगम का रास्ता बंद नहीं था। सालार के दरबारियों में कितनों ही का काम था, सैयद के लिए सुन्दरियाँ जुटाना । कहीं भी किसी सुन्दर तरूणी का पता लगता तो उसे सैयद के पास पहुंचने में देर न होती । लोगों ने डर के मारे तरूणाई से पहले अपनी लड़कियों का ब्याह कराना शुरू कर दिया । लेकिन, सैयद के लिए ब्याहता और अब्याहता का कोई सवाल नहीं था ।"[2]

राहुल का वक्तव्य है कि मुस्लिम काल में सिसवा नगरी छोटे गांव कर्नहट, चकरानपुर, सिसवा आदि में बंट जाती थी । इसी समय में ही गोरखपुर की ओर से सरयूपार से यहां राहुल के पूर्वज बसे थे । मुसलमानों के शासनकाल में भर जातियों का आधिपत्य था । लेकिन 1896-97 ई के अकाल के कारण कनैला से भरों का एक टोल उजड़कर देशांतर चला गया। लेकिन कनैला में आज भी लोग, ब्राह्मण से कम संख्या में नहीं ।

'नरमेध' में गहड़वार वंश द्वारा स्थापित पंक्ति व्यवस्था की ओर भी राहुल ने इशारा किया है । उन्होंने बाबर के शासन को शांतिपूर्ण कहा ।[3] राहुल अपनी बात की पुष्टि के लिए पुराणों से भी प्रमाण लेते हैं । उदाहरण के लिए इस प्रसंग को लें - "महाभारत मे कौरव-पांडव कुल का एक तरह बिल्कुल संहार हो गया था, लेकिन अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ में परीक्षित रूप में एक अंकुर बच रहा था, जिसने पांडव वंश को नष्ट होने से बचाया । ठीक यही बात मलांव में हुई । राजेन्द्रदत्त पांडे की पत्नी नरमेध के समय अपने पीहर (प्रतापगढ़ जिले) में थी। इसलिए उनके प्राण बच गए और उनके गर्भ में अहिरूद्ध मलाव के पुनः वंश संस्थापक बने।"[4]

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 58
2. "कनैला की कथा" - पृ 64
3. "कनैला की कथा" - पृ 69
4. "कनैला की कथा" - पृ 74

राहुल नियति पर विश्वास न करके भुजबल पर विश्वास रखनेवाले साहित्यकार थे, जो एक मार्क्सवादी के लिए अत्यंत आवश्यक तत्व है । भुजबल पर अपने अस्तित्व को कायम रखनेवाले मलांव के पांडे लोगों का जिक्र उन्होंने इसी कारण किया है । कहानीकार ने मलाव के पांडे ब्राह्मणों में मांस भक्षण का संकेत भी इस कहानी में किया है यथा - "गहडवारों ने पंक्ति-मर्यादा बाँधकर ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड को पुनः स्थापित करते हुए उन्हें निरामिष रहने के लिए बाध्य नहीं किया था । यह हो भी नहीं सकता था, क्योंकि सारी ब्राह्मण परंपरा मांस भक्षण के पक्ष में थी । यज्ञों की प्रधानता में हवन के लिए पशुओं के मांस की आवश्यकता पड़ती थी। जब उसका स्थान देवी देवताओं की मूर्तियों और उनकी पूजा ने लिया, तो बलि पशुओं की जरूरत अनिवार्य थी । पंक्ति-ब्राह्मण आज भी अभिमान से कहते हैं - जिसके घर के अगवाडे-पिछवाड़े हड्डी नहीं, वह पंक्ति ब्राह्मण कैसा? मलाव के पांडे जन्मजात योद्धा थे । उनको शिकार का शौक होना स्वाभाविक था ।"[1] 'नरमेध' में राहुल कनैला का इतिहास बताते हुए कहते हैं कि इसका आरंभ अठारहवीं सदी के दूसरे पाद में होता है । लेकिन वहां की धरती के चिन्ह से मालूम होता है कि इससे हजारों वर्ष पहले वहां लोग रहते थे । वे बताते हैं कि 'कर्नहट' पुराना नाम होगा, कनैला के जंगल के कारण इसका नाम कनैला पड़ा ।

'सन् 57' में कहानीकार का कहना है कि नवाबी शासनकाल में यातायात की दृष्टि से सिसवा का महत्व घट गया । लेकिन अंग्रेजी शासन ने नए यातायात के रास्तों को खोज निकालने में सहायता दी । कहानीकार ने जमींदार द्वारा किसानों के शोषण का चित्र इस प्रकार उतारा है - "सन् 57 में अभी गोपाल पांडे या उनके दूसरे बंधुओं की स्थिति साधारण जमींदार-किसान की नहीं थी । भर, चमार और दूसरी जाति के लोग उनकी खेती करते थे और आप बाबू बने रहते थे ।"[2]

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 70-71
2. "कनैला की कथा" - 80

इस कहानी में गोरों के अत्याचारों से पीड़ित स्त्रियों की दयनीय स्थिति का पर्दाफाश भी हुआ है- कितने ही समय बाद बछवल के एक टोले में एक सुन्दरी वहाँ के महन्त की रखैल होकर आई । उसकी आपबीती से पता लगता था कि इन दिनों अंग्रेजों ने कितनी पशुता का परिचय दिया था । वह किसी संभ्रांत परिवार की बहू थी । गोरों ने गांव में आकर कितने ही आदमियों को फांसी पर लटका दिया । वह तीन सुन्दरियों को अपने लिए चुनकर एक्का पर बैठाकर ले चले । रास्ते में नदी का पुल आया । दो ने छलांग मारकर अपने जीवन को समाप्त कर दिया । तीसरी महन्त की रखैल जीवन भर अफसोस करती हुई कहती है - "मैंने अपने प्राणों का लोभ किया । दुनिया में नरक की यातना सहनी पड़ी । मरने के बाद नरक तो निश्चित ही है ।"[1]

यह एक नग्न सत्य है कि यद्यपि भारतीयों को अंग्रेजों से मुक्ति मिली, तो भी हमारी स्थिति पहले की जैसी है । राहुल कहते हैं कि "अंग्रेजों के जाने के बाद आज भी हथियार कानून की इतनी लड़ाई से पाबन्दी क्यों की जाती है? क्या सरकार और जनता के बीच अब भी पुरानी खाई मौजूद है?"[2]

राहुल की इस उक्ति में देशप्रेम का स्वर मिलता है, यथा - "कनैला किसी से पीछे नहीं रहेगा । लेकिन हम लाठी चलाना जानते हैं । तलवार का भी दो-दो हाथ दिखला सकते हैं। पर गोरों के पास तो बन्दूकें हैं । सुनते हैं, उन्होंने एक नए तरह की बन्दूक निकाली है, जिसे ही इस बदमली का कारण बताते हैं ।"[3]

राहुल मानवीय प्रेम में विश्वास रखनेवाले मानवतावादी साहित्यकार हैं । इसलिए वे मानवीय संवेदनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति चाहते हैं । वे मजदूरों की स्थिति का पर्दाफाश इस प्रकार करते हैं- "क्वार-कार्तिक में खरीफ की फसल काटनेवाले मजूर-मजूरिनों को खाने के लिए कुछ बेशी अन्न मिल जाता । धान की कटाई-दँवाई उन्हें पूस तक ही किसी तरह संभाल सकती थी। पूस माघ बड़े कष्ट का समय होता, क्योंकि उस समय मालिकों के भी कोठली-बखार खाली

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 87
2. "कनैला की कथा" - पृ 88
3. "कनैला की कथा" - पृ 82

पड़ जाते । फागुन चैत में जरूर अच्छे दिल लौटते, लेकिन वह भी बैसाख आधे जेठ तक रहते। आषाढ़-सावन तो मरने के पर्व थे । बरसात हो जाती और कुछ हरी घासें उग आती, वह उनके लिए एकमात्र अवलंब होती । कनैला के आधे लोग ऐसी ही जिन्दगी बिताते थे ।"[1] अगले उद्धरण में मार्क्सवादी दर्शन में उनकी आस्था प्रकट हुई है । यथा - "यह देखकर प्रसन्नता हुई कि कम से कम भोजन में वहाँ सब एक वर्ण हैं । श्रीवास्तव, ब्राह्मण, सर्वरिया ब्राह्मण सभी आसन से आसन मिलाए भोजन कर रहे थे । ..... पहले गांव की चार-पांच साझी खेतियां होनी चाहिए और पिछले सौ वर्ष के बंटे हुए खेतों को इकट्ठा कर देना चाहिए ।"[2]

'स्वराज्य' कहानी में राहुल बताते हैं कि अनेक पीढ़ियों से उत्तरप्रदेश और बिहार परदेश में जाकर मजूरी करनेवाले लोगों का देश है । कनैला के श्रमिकों को आधार बनाकर कहानीकार ने श्रमजीवीयों के पलायन के समाजशास्त्रीय कारणों का विश्लेषण किया है । सामाजिक परिवर्तन तथा स्वतंत्रता संग्राम के प्रभाव से कनैला के नौजवानों को अब अपने गांव की धरती छोटी मालूम होने लगी । दरिद्रता के प्रभाव के कारण ब्राह्मणों के रीति-रिवाज़ और सामाजिक व्यवस्था भी बिगड़ गए । सरयू पार से आए पूर्वजों के कारण, पहले तो बेटी का विवाह सरयू पार के ब्राह्मण से किया जाता था । लेकिन कुछ काल के बाद इस नियम में भी बदलाव आ गया। गरीब घरों की संतानों का विवाह होना ही बंद हो गया । धर्म की स्थिति हमेशा हाथी की-सी रही है । विधवा-विवाह से जाति को हानि पहुँचता है । किसी तरुण विधवा का अपने फुफेरे देवर से संबंध हो जाए तो उसका परिणाम भयंकर होनेवाला था, जिसके कारण उसे मेहमानी जाना पड़ता है । उनके लौटने पर स्त्रियाँ उँगली उठाती हैं कि 'गर्भ गिराकर आई है ।'

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद देश में राजनीतिक जागृति आई । लेकिन कनैला अब भी पिछड़ा ही रहा । लेकिन पन्दहा के नौजवानों ने इस नवचेतना को अपने यहाँ फैलाने की कोशिश की। लेकिन कनैला में किसी को विश्वास नहीं था कि अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएंगे । बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही कनैला में भी परिवर्तन का आभास दिखाई पड़ने लगा । आजमगढ़ से

---

1. "कनैला की कथा"- पृ 90
2. "कनैला की कथा" के 'प्राक्कथन' से

एक नई पक्की सड़क कनैला तक पहुँच गई है, जो सिसवा (शिंशपापुरी) में मंगई के पुल को पारकर आगे तक जा रही है । कनैला में रिक्शा और लारी भी आने लगे । यद्यपि यातायात की सुविधा कनैला में आई है, तो भी ऊख के किसी मिल में जाने की सुविधा नहीं । इस कारण लोग अपनी जरूरत के गुड़ और खांड के लिए ऊख बोते हैं, कुछ गुड़ बिक भी जाता है।

आगे का समय बड़ी परीक्षा का समय था । छोटी-बड़ी जातियां संगठित होने लगीं। रामचन्दर पंडित समझ गए कि सारी खुराफातें कम्युन्टि कराते हैं । कम्यूनिष्टों ने ही नान्ह जातिवालों को सिर पर चढ़ा रखा है । कनैलावालों ने कभी किसी कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ता को देखा है, इसमें संदेह है । उन लोगों के लिए सब वामपक्षी कार्य करनेवाले कम्यूनिस्ट हैं । छोटी जातियों में एक चेतना आती है, इसलिए खेती करने में वे तैयार नहीं । सहकारी खेती को भी वे संदेह की दृष्टि से देखते हैं । थोड़ी शिक्षा पाने पर ही बड़ी जाति के युवक गांव से स्वेच्छापूर्वक पलायन करते हैं । स्वयं राहुल के शब्दों में- "हरेक बड़ी जाति के शिक्षित परिवार का झुकाव नौकरी और शहर में जाकर बसने का हो रहा है । उन्होंने असली मालिकों से मिट्टी को अन्यायपूर्वक छीन लिया था । अब क्या कल फिर उसे असली मालिकों के पास लौटाना चाहता है? यह आशा नहीं कि आर्थिक विषमता पर आधारित छोटी-बड़ी जाति का जो वर्गभेद कनैला और दूसरे गांवों में युगों से चला आया है, वह अब कायम रह सकेगा ।"[1] परिवर्तन पर राहुल का विश्वास यहां दर्शनीय है । कनैला में अपने पूर्वजों के बारे में लिखते समय भी उनका विश्वास है कि भेदभाव पर आधारित यह दुनिया एक दिन बदलेगी । वे इस दुनिया से दौड़ भागना नहीं चाहते, इस दुनिया को बदलना चाहते हैं ।

'स्वराज्य' कहानी में भारत की आजादी के पहले और बाद की दशा, दिशा, आर्थिक परिस्थितियाँ, जन-जीवन की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों तथा भारतीय समाज में व्याप्त कूपमंडूकता, अतीतप्रियता, रूढ़िवादिता, यहां तक कि प्रथम विश्वयुद्धकालीन अंतर्राष्ट्रीय परिवेश में संदर्भित कर "कनैला की कथा" के माध्यम से भारतीय आम आदमी के पिछड़ेपन को देखा और दिखाया गया है ।

---

1. "कनैला की कथा"- पृ 103

इस विश्लेषण से पता चलता है कि "कनैला की कथा" कहानीकार के विचारों का खजाना ही है ।

खंड खः शिल्पगत दृष्टि से "कनैला की कथा" का विश्लेषण

1. कथाशिल्प

"कनैला की कथा" में कथासूत्र का चयन जीवन के व्यापक क्षेत्र से किया गया है। प्राचीन आर्यों से लेकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम तक के चित्र को कहानीकार ने सतर्कता से खींचा है । पुस्तक के प्राक्कथन में पुरातत्व संबंधी साम्रगी की गंभीर चर्चा है । इसमें कथा का अभाव है । ये कहानियाँ काल्पनिक कम, तथ्यात्मक अधिक हैं। घटनाओं में कार्यकारण श्रृंखला का अभाव है ।

"कनैला की कथा" की प्रत्येक कहानी के आरंभ में उसकी ऐतिहासिकता को प्रस्तुत किया गया है । 'त्रिवेणी' में पृष्ठभूमि के रूप में ई. पू. तेरहवीं शताब्दी के कनैला ग्राम का परिचय है । 'बड़ी रानी' की भूमिका कनैला का लंबा इतिहास प्रस्तुत करती है । 'देवपुत्र' में पृष्ठभूमि के रूप में यवनों के शिंशपा पर आक्रमण का वर्णन है । 'सैयदबाबा' में 'कनैला' को वह नाम कैसे मिला - इसके बारे में बताया गया है । इस प्रकार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ आरंभ होने के कारण पाठकों को सुविधा मिलती है। पर कुछ कहानियों की पृष्ठभूमि लंबी होने के कारण नीरस बन पड़ी है ।

"कनैला की कथा" में कहानी कहने के लिए कुछ नहीं । इसका इतिहास पक्ष अत्यंत संपुष्ट है । लेखक अपने ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक ज्ञान का परिचय देते जाते हैं । इसलिए निबन्ध जैसा आभास मिलता है । 'सन् 57' और 'स्वराज्य' कहानियों में निबन्धात्मकता का तत्व अधिक मिलता है । वे सिर्फ ऐतिहासिक सत्य अपने एक विशेष दृष्टिकोण के आधार पर बताते हैं । कथावस्तु चयन में उनकी प्रगतिशील रचनात्मकता देखी जा सकती है । 'त्रिवेणी' में तीनों जातियों का आगमन, आपस में मेल आदि के बारे में केवल चर्चा ही है । 'कलाकार' तो दुःखांत कहानी है । श्रीकर का जीवन अंत में दुःखपूर्ण हो जाता है। राहुल ने बीच-बीच में

कहानी के प्रवाह को रोककर अपने इतिहास संबंधी विशेष ज्ञान को हमारे सामने रखने का प्रयास किया है । उदाहरण के लिए 'नरमेध' में मलाव गांव के पांड़े लोगों का परिचय, भर जाति का विवरण, कनैला नाम के पीछे का इतिहास, राहुल के पूर्वजों का विवरण आदि । इसी प्रकार शिंशवापुरी में बने चैत्य के निर्माण का विवरण है, जो नीरस एवं कथा प्रवाह में बाधा डालनेवाला है। 'कलाकार' कहानी के प्रथम दृश्य में भी तीन पृष्ठों में शिंशपा नगरी का विवरण है, जो अरोचक है । भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास के साथ अपने प्रिय सिद्धांत साम्यवादी विचारों की व्याख्या करने में भी राहुल नहीं भूलते हैं ।

'नरमेध' कहानी में राहुल ने पूर्व सूचना भी दी है यथा - "हम सोलहवीं सदी के मध्य की घटना बताने जा रहे हैं, जबकि आजमगढ़-गोरखपुर के जिले, शेरशाह या उसके पुत्र सलीमशाह के शासन में थे ।"[1]

राहुल अपनी बात के समर्थन के लिए एक दूसरी कहानी भी बताते हैं । एक दो स्थान पर ऐसा एक प्रयोग भी आया है ।

"कनैला की कथा" की कहानियां आरंभ, विकास एवं चरमसीमा की दृष्टि से असफल हैं। किसी भी कहानी में कुतूहलता या नाट्कीयता नहीं ।

2. पात्र और चरित्र चित्रण

"कनैला की कथा" में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है । पुरुष पात्रों की संख्या, नारी पात्रों की अपेक्षा अधिक है । 'बड़ी रानी' और 'देवपुत्र' कहानियों में स्त्री चरित्रों की भूमिका प्रमुख है। 'त्रिवेणी' कहानी में केन्द्र के रूप में पात्र नहीं, एक विशेष जाति है । प्रमुख नारी पात्र सोनकेशी और भद्रा हैं । "वोल्गा से गंगा" की तरह इसमें भी प्रागैतिहासिक युग के पात्र, ऐतिहासिक युग के पात्र एवं आधुनिक युग के पात्र भी मिलते हैं । प्रागैतिहासिक पात्र अरूणाश्व, कृशाश्व, कपिला, अजातशत्रु आदि हैं । ऐतिहासिक पात्र सुबाहु, जयन्त, भद्रा, कनिष्क,

---

1. "कनैला की कथा" पृ 69

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त, सैयद अकरम, लखनदेव आदि। आधुनिक काल के पात्र भोला, मंगरू, श्यामलाल एवं रामचन्द्र पंडित हैं । इसमें पात्रों का उतना महत्व नहीं। कहानीकार स्वयं तथ्यों का उद्‌घाटन करते जाते हैं । पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ा है ।

"कनैला की कथा" में पात्रों का चरित्र चित्रण बाह्य रूप तक सीमित है । आंतरिक चित्रण कहीं भी नहीं । उदाहरण के लिए किरातों के सरदार का चित्रण देखें - "एक लंबे डील-डौल का असाधारण बलिष्ठ प्रौढ़ पुरूष मछलियों के ढेर के पास बैठा था। उसके जटावाले बालों में मोर और दूसरे पक्षियों के सुन्दर पंख लगे हुए थे, गले में भी हड्डियों की मालाएं पड़ी थीं, हाथ में छह हाथ का तांबे के फलवाला भाला था ।"[1] यहां एक व्यक्ति के चित्रण द्वारा पूरे किरात वंश के लोगों की आकृति का चित्रण है । अर्थात् एक व्यक्ति द्वारा एक युग का चित्रण ।

'बड़ी रानी' में भद्रा का शरीर वर्णन भी इस प्रकार है - "उसके शरीर पर काशिकाओं की विनीत सज्जा थी । पैरों में सोने के मोटे कड़े थे । अंतर्वास के ऊपर कई लड़ियोंवाली शिंजनी लटक रही थी । नाभि से ऊपर दोनों कन्धों पर से आए सुवर्ण-सूत्र एक दूसरे को काटते शिंजिनी से मिल गए थे । कई लड़ियोंवाले मोतियों और महार्घ रत्नों के हार वक्षस्थल को टांगे हुए थे । उसके स्वर्णिम केशों को मोतियों के साथ गूंथकर पीठ की ओर बड़ी सुन्दर रीति से लटका दिया गया था । उसके स्वभावशः अरूण अधरों के लिए अधर राग की जरूरत नहीं थी और न आरक्त शंख-श्वेत छवि-वर्ण के लिए कृत्रिम चूर्ण की । उसकी विशाल आंखे मानों नीलम की थीं ।"[2]

सम्राट समुद्रगप्त का चित्रण भी उल्लेखनीय बन पड़ा है, यथा - "भरा गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें और लंबी उठी मूंछें बतलाती थीं कि उसमें भी बाप के पराक्रम का कुछ अशं अवश्य मौजूद है । मणिजड़ित सुवर्ण मुकुट के नीचे उसके लंबे केशों का कुछ अंश दिखलाई पड़

---

1. "कनैला की कथा" पृ 2
2. "कनैला की कथा" पृ 24

रहा था । कानों में एक-एक मरकतवाले कुंडल लटकते थे । अंगरखे के ऊपर मोती-माणिक्य की कितनी ही मालाएं थीं। हस्तिस्कन्द के दोनों तरफ लटकते पैरों में कामदार जूतों के ऊपर जरी का पायजामा था ।"[1]

आकृति, वेशभूषा एवं क्रियाकलापों में राहुल की रूचि का प्रमुख कारण उनका अगाध सांस्कृतिक ऐतिहासिक ज्ञान है । अपर्युक्त उदाहरण में पात्र के विवरण में सांस्कृतिक संदर्भ भी यथेष्ट हैं ।

प्रागैतिहासिक युग की कहानी 'त्रिवेणी' में पात्र के बदले विशेष जातियों जैसे किरात, निषाद एवं दमिल के चित्र हैं । इनका चरित्र-चित्रण युग का आभास देनेवाला है। सभी कहानियों में पात्रों के युगानुकूल क्रमिक विकास का चित्रण हुआ है ।

राहुल ने पात्रों का सौन्दर्याकन ही नहीं, वीरता का चित्र भी खींचा है । यथा - "राजन्य सुबाहु का पुत्र जयन्त ऐसा ही था। वह अपने पिता के सारे सद्‌गुणों का उत्तराधिकारी था । प्रजा उससे परम संतुष्ट थी। तारूण्य सुलभ आमोद-प्रमोद से वंचित रहने की आवश्यकता नहीं थी, पर नए राजन्य-दंपति व्यसनी नहीं थे । जयन्त के खून में वीरता और रणकौशल मौजूद था।"[2]

"कनैला की कथा" की इन पुरातत्वप्रधान, विचारधारात्मक कहानियों में पात्र-परिचय, चरित्र-चित्रण चातुर्य तथा व्यक्तित्व द्‌वन्द्व का अनुरंजन नहीं । पात्र कहानीकार की दार्शनिक निष्पत्तियों के संवाहक हैं ।

3. संवाद

"कनैला की कथा" में संवादों का प्रायः अभाव है । जहां कुछ संवाद है तो वह थोड़ी मात्रा में । 'देवपुत्र', 'कलाकार', 'सैयदबाबा, 'सन् 57', 'स्वराज्य' कहानियों में संवादों का प्रयोग हुआ है । 'देवपुत्र' कहानी का आरंभ संवाद से होता है। इस कहानी में सेठनी उपासिका

---

1. "कनैला की कथा" पृ 46
2. "कनैला की कथा" पृ 25

एवं भिक्षुणी धम्मदिन्ना के वार्तालाप का विषय शिंशपा की वर्तमान जीर्ण स्थिति है । ऐसे वार्तालाप संक्षिप्त हैं । गंभीर विषय का है । इस कहानी में मिश्रदात और जिनदास के वार्तालाप से पता चलता है कि दोनों मिलकर सिंसपा के वैभव को लौटाना चाहते हैं । "सैयदबाबा" में माहव पंडित एवं तयागत की बातचीत में शिंशपा नगरी और उसकी उपनगरी कर्नहट पर भारी संकट आने की सूचना है। यह संवाद अन्य कहानियों की तुलना में प्रायः लंबा है ।

'सन् 57' कहानी में भोला और मंगरू अंग्रेजी शासन के बारे में बातचीत करते हैं -

- "सुना हूँ, मँगरू, गोरे हमारा देश छोड़कर भाग गए।"

- "शहर में जरूर होंगे। कैसे भाग गए?"- संदेह करते हुए मंगरू ने पूछा ।

- कनैला में गोरे अफसरों के जाने की क्या जरूरत थी? बनारस, गाजीपुर, जौनपुर या फैजाबाद की ओर जानेवाली कोई भी सड़क उसके आस-पास नहीं जाती थी, इससे कभी गोरे सिपाही वहां कूच करते भी नहीं जाते। आजमगढ़ मंगरू जैसे आदमियों के लिए विलायत जैसा ही था। वह बस सुनी-सुनाई बातों के बल पर ही गोरों के राज्य और उनके बारे में जानते थे।

भोला कभी-कभी अपनी नातेदारी के किसी दूसरे दूर के गांवों में भी जाते, इसलिए उन्हें ज्यादा पता था। उन्होंने निश्चय दिलाते हुए कहा -

"नहीं, पक्की खबर है। आजमगढ़ से गोरे भाग गए। अब वहां हिन्दूस्तानियों का राज है।" ..... हाँ, इसलिए तो हिन्दू-मुसलमान सब बिगड़ गए हैं ।"[1]

जहां किसी समस्या पर प्रकाश डालने के लिए वार्तालाप का प्रयोग हुआ है, वहां संक्षिप्तता है। उदाहरण के लिए 'सैयदबाबा' में एक वार्तालाप आया है -

"और केवल क्षत्रिय ही, क्षत्राणियां नहीं, उन्हें अपनी लाज बचाने के लिए केवल आग में जल मरने की शिक्षा दी गई है । क्षमा करें, अपनी जाति-व्यवस्था के ऊपर कुछ कड़े शब्द कहने के लिए।

क्षमा की कोई आवश्यकता नहीं ।

---

1. "कनैला की कथा" पृ 81

देश के रक्षक क्षत्रियों की संख्या 30 में से एक भी अधिक नहीं है और उस एक में भी आधी स्त्रियां केवल जीती चिता पर जल सकती हैं, अर्थात् 60 में से 1 क्षत्रिय पुरूष है। उनमें भी बच्चों-बूढ़ों को हटा दिया जाए तो सारी जनता में सौ में से एक ही योद्धा रह जाता है, अर्थात् 99 भेडें हैं ।"[1]

इसमें संवादों का उपयोग कथानक के विकास के लिए एवं विचारधारा के प्रतिपादन के लिए किया गया है। संवादों की भाषा पात्रानुकूल है ।

4. वातावरण

"कनैला की कथा" की कहानियों को परिवेश-देश चित्रण के लिए विशिष्ट मान्यता प्राप्त है। मूलतः ऐतिहासिक रचनाकार होने के कारण उनके संपूर्ण ज्ञान का प्रयोग वातावरण निर्माण के लिए किया है । इसके देशकाल का चित्रफलक विशाल है। इस पुस्तक में राहुल ने 3300 वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डाली है । इसमें प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक युग और आधुनिककाल की कहानियां आती हैं । पात्र और घटनाएं इतिहास सम्मत हैं । "वोल्गा से गंगा" की अपेक्षा इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता असंदिग्ध है ।

इसकी कहानियों में रचनात्मक कालान्तरण उपस्थित किया गया है। प्रत्येक कहानी के आरंभ में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को व्यक्त किया गया भी है । इसमें कनैला गांव की विभिन्न युगों के ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विकास को चित्रित किया गया है एवं राजनीतिक स्थिति का विकास अत्यंत स्पष्ट रूप में दिखाया गया है । 'बड़ी रानी' कहानी का परिवेश नियोजन अत्यंत सफल बनाया गया है ।

इन कहानियों का केन्द्र कनैला या कर्नहट नामक छोटा सा गांव है । कुछ कहानियों में स्वातंत्रयोत्तर काल का वर्णन है । इसकी 'त्रिवेणी कहानी' 1300 ई. पू. की है । 'काशीग्राम' आर्यों के आगमन के बाद की कहानी है। 'बड़ी रानी', मौर्य-शुंगकालीन शिंशपा नगरी का जिक्र करती है । 'देवपुत्र' शकों के भारत आगमन के समय की कहानी है । 'कलाकार' गुप्तकाल की

---

1. "कनैला की कथा" पृ 58-59

कथा है । 'सैयदबाबा' में तुर्को के समय का चित्र है तो 'नरमेध' शेरशाह के समय की कहानी है। 'सन् 57' स्वतंत्रता संग्राम के समय की है तो 'स्वराज्य' स्वतंत्र भारत की कहानी है ।

कहानीकार ने पात्रों की वेशभूषा, खानपान आदि पर भी ध्यान दिया है । उदाहरण के लिए 'त्रिवेणी' में किरात, निषाद तथा दमिल जातियों के परिचय देने के साथ उनकी वेशभूषा, खानपान, वस्त्राभूषण तथा आयुधों का परिचय भी दिया गया है ।

राहुल ने उत्सवों का वर्णन भी अनेक स्थानों पर किया है, एक उदाहरण - "सावन के महीने में बहुत से त्योहार होते हैं। नागपूजा के अवशेष के रूप में अनन्त चतुर्दशी भी उन्हीं में से एक है । यद्यपि आजकल नागपंचमी का संबध नागपूजा से और अनन्तचतुर्दशी का संबंध विष्णु से जोड़ा जाता है, पर दाहिनी बांह पर जो सूत्र या चांदी सोने की अनन्त पहनी जाती है, उसी आकृति नाग सी ही रहती है और शेषनाग का नाम भी अनन्त है । मलांव के ब्राह्मण भी दूसरे लोगों की तरह अनन्त का व्रत रखते धूम-धाम से पूजा करते थे । बल्कि कहना चाहिए, अनन्तचतुर्दशी के प्रति उनका अधिक पक्षपात था । उस दिन सारे हथियार साफ करके सजाए जाते, उनकी पूजा होती। पूजा के पहले मध्याह्न में सारे गांव के लोग राप्ती में स्नान करने जाते।"[1]

कहानीकार की नाच-गान आदि पर अत्यन्त आस्था थी । 'बड़ी रानी' कहानी के नृत्य वर्णन में पाश्चात्य नृत्य का आभास मिलता है, जो इस प्रकार है - "प्रांगण के बीच में नृत्य हो रहा है । सात सुंदरियां नृत्य में तन्मय हैं । उनके पास चार पुरूष वाद्य बजा रहे हैं । एक मृदंग पर ताल दे रहा है । दूसरा वीणा को बाईं बगल में दबाए उसके तारों को बाएं हाथों से छेड़ रहा है । यह वीणा नहीं, कोई और वाद्य होगा, पर है तारोंवाला वाद्य ही। एक कांस्य (झाल) बजा रहा है । जोश में आ एक पुरूष अपने को भूल, नृत्यांगनाओं के बीच में खड़ा झूमता वीणा के तारों को झंकृत कर रहा है ।"[2]

---

1. "कनैला की कथा" पृ 72-73
2. "कनैला की कथा" पृ 21

प्रकृति के प्रति अनुरागी राहुल अपनी रचनाओं में प्रकृति को अंकित करने में अत्यंत समर्थ थे । उन्होंने "कनैला की कथा" में भी प्रकृति को छोड़ा नहीं देखिए - "काशी की भूमि अधिकतर हरे जंगलों से ढंकी थी । ग्रीष्म की झंझा और आतप के समय भी शाम को वनों की हरीतिमा धूमिल नहीं पड़ती थी । पतझड़ के समय अवश्य कुछ दिनों के लिए वनस्पति नग्न हो जाते थे, पर उसके बाद ही दूने सौन्दर्य के साथ उपस्थित होते थे"[1] कहानीकार ने इसमें सावन, आषाढ़, जेठ, फागुन, चैत, बैशाख जैसी ऋतुओं का जिक्र किया है ।

सौंदर्य के प्रति आसक्त राहुल सुंदरियों के सौन्दर्य वर्णन में सबसे आगे हैं । इसका मसलन यह चित्र है - "सुंदरियों के वक्ष और नितंब निसर्गतः गुरु होते हैं और कटि क्षीण। अंग सांचे में ढले जैसे मालूम होते हैं । उनके ऊपरी शरीर पर अतिसूक्ष्म वस्त्र पड़ा है, जिसे दिव्य दृष्टि से ही देखा जा सकता है । सुघड़ वर्तुल स्तनों के बीच एक दुलड़ा हार उनकी सीमा तक लटक रहा है, जिसके ऊपर एक के नीचे एक तीन सुवर्ण की कंठमालाएं । फूलों और आभूषणों के बीच सिर के केशों का पता लगाना मुश्किल है । जूड़ा कपोल के ऊपरी भाग से ज़रा सा पीछे हटकर है जो जाती के श्वेत पुष्पों से संवारा हुआ है । सामने ललाट की सीमा को भी थोड़ा उल्लंघित करती मोतियों और कनकपुष्पों से गुंथी अलकों की चार पांतियां कानों को आधा ढंकती पीठ पर पड़ी हैं ।"[2]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "कनैला की कथा" में बड़े विशाल समय को समेटकर परिवेश का यथार्थ अंकन करने में कहानीकार को सफलता मिली है ।

---

1. "कनैला की कथा"- पृ 26
2. "कनैला की कथा"- पृ 21, 22

5. भाषा

भाषा पक्ष पर विचार करें तो भाषा पात्रानुकूल, परिवेशानुकूल, भावानुकूल तथा वर्णानुकूल है। अधिकतर कहानियों में सरल हिन्दी का प्रयोग हुआ है । प्रगतिशील लेखक राहुल का लक्ष्य जन समाज में जागृति लाना था । यह तभी संभव है जबकि वे सरल हिन्दी में अपने विचार प्रकट करें ।

उदाहरण -

"इसे शांति की तरफ मनुष्य का बढ़ना कहिए, पर आदमी तभी शांति का रास्ता पकड़ता है, जब उसके स्वार्थ के लिए खतरा न हो । शांति से अपनी स्वार्थपूर्ति का अधिक अवसर मिले, तभी मनुष्य उसे अपनाता है ।"[1]

भाषा का युगानुकूल प्रयोग इसमें मिलता है । प्रागैतिहासिक युग में भाषा, प्रागैतिहासिक संस्कृति के अनुकूल थी । वैदिक काल में तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है। मुस्लिम काल में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग है । आधुनिक काल में सुधरी हुई भाषा का प्रयोग है ।

ग्रामीण पात्रों की भाषा में स्थानीय बोली का प्रयोग भी राहुल ने किया है यथा-

"हूँ, फिरंगी बड़ा अक्कलवाला है ।

- अक्कलवाला न होता, तो बिल्लाइत से आके यहां राज कैसे करता? पर अबकी बड़े वीर बांकों से पाला पड़ा है । हमारे भाई ही तिलंगे होकर उनकी तरफ से लड़कर दुनिया जहान फतह करते रहे, वही अब गोरों के खिलाफ लड़ रहे हैं ।

-तिलंगे क्यों खिलाफ हो गए? कहते हैं, अंग्रेज उन्हें अच्छी तनख्वाह देते थे ।

- अंग्रेजों की नियत बहुत खराब हो गई थी । वह हमारा धर्म लेना चाहते हैं । बन्दूक के टोटे में उन्होंने गाय और सूअर की चर्बी डाल रखी है, जिसे बन्दूक में भरने के लिए दांत से काटना पड़ता है ।

---

1. "कनैला की कथा"- पृ 7

- तो सबको क्रिस्तान बनाना चाहते हैं?

- हाँ, इसलिए तो हिन्दू-मुसलमान सब बिगड़ गए हैं ।"[1]

राहुल ने "कनैला की कथा" में अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है, जैसे चुल्लू भर पानी में मरना[2], बत्तीसी उज्जवल होना[3], प्राणों की बाजी लगाना[4], और ईंट से ईंट बजाना[5], बत्तीसी उज्जवल होना[6]

इसमें लोकोक्तियों का प्रयोग भी मिलता है । उदाहरण - धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का[7], भैंसा जोतै लोहिया खाय, कहें घाघ लछिमी चलि जाय[8], अर्ध तजहिं बुध सरबस जाए[9], जिसकी लाठी उसकी भैंस ।[10] सूक्तियों का प्रयोग भी राहुल ने इसमें किया है, जैसे 'सत्य कल्पना से भी सुन्दर होता है ।'[11]

'भद्रा के सामने चांद के सम्मुख ताराओं सीं'[12] - इस वाक्य में उपमालंकार का प्रयोग मिलता है ।

"कनैला की कथा" में प्रयुक्त 'दयामया'[13] शब्द असाधारण है । 'दस्तरखान'[14] शब्द राहुल द्वारा निर्मित शब्द है ।

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 82-83
2. "कनैला की कथा" - पृ 72
3. "कनैला की कथा" - पृ 22
4. "कनैला की कथा" - पृ 51
5. "कनैला की कथा" - पृ 22
6. "कनैला की कथा" - पृ 17
7. "कनैला की कथा" - पृ 101
8. "कनैला की कथा" - पृ 100
9. "कनैला की कथा" - पृ 101
10. "कनैला की कथा" - पृ 76
11. "कनैला की कथा" - भूमिका से
12. "कनैला की कथा" - पृ 24
13. "कनैला की कथा" - पृ 30
14. "कनैला की कथा" - पृ 62

"कनैला की कथा" में अनेक उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे इफरात[1], मनसूबा[2], खैरियत[3], फुरसत[4], दीवाल[5], उफ्फार[6], कत्लेआम[7], खुराफत[8], फरमां बरदार[9] आदि ।

कहीं-कहीं तो कठिन तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिससे भाषा में दुरूहता आ गई है । उदाहरणः आविष्टित[10], उत्कीर्ण[11], कुण्डलित[12], आदि। फिर भी आम तौर पर कहें तो इसमें सरल हिन्दी का प्रयोग ही राहुल ने किया है ।

---

1. "कनैला की कथा" - पृ 70
2. "कनैला की कथा" - पृ 15
3. "कनैला की कथा" - पृ 78
4. "कनैला की कथा" - पृ 62
5. "कनैला की कथा" - पृ 73
6. "कनैला की कथा" - पृ 101
7. "कनैला की कथा" - पृ 64
8. "कनैला की कथा" - पृ 100
9. "कनैला की कथा" - पृ 63
10. "कनैला की कथा" - पृ 21
11. "कनैला की कथा" - पृ 28
12. "कनैला की कथा" - पृ 28

6. उद्देश्य

साम्यवादी रचनाकार होने के नाते राहुल अपने मंतव्य को मूर्तिमान करने हेतु आदि से अंत तक जाग्रत रहते हैं । धर्म से उत्पन्न सांप्रदायिकता पर कठोर प्रहार करना उनका लक्ष्य था। सामाजिक वैषम्य एंव पूंजीवाद ने साम्यवाद की अनिवार्यता सिद्ध की । वे प्रजातंत्र को साम्यवाद का आधार मानते हैं । स्वराज्य की वे यही विशेषता मानते हैं । वे भारतीय जनता का सर्वांगीण विकास चाहते हैं ।

सन् 1857 ई. के स्वाधीनता आंदोलन के पराभाव की पीड़ा राहुल के मन में बहुत ही गहरे अंकित रही है । 'सन् 57' कहानी में कनैला में स्वतंत्रता संग्राम की असफलता की पीड़ा का प्रभाव चित्रित किया गया है । एक अत्यंत साधारण से अपरिचित गांव के ऐतिहासिक महत्व को स्थापित करके भारत के अतीत के गौरव की ओर उन्होंने संकेत किया है । इन कहानियों में राहुल का आशावादी स्वर बुलंद हो उठा है। पीड़ित जनता के बीच में खड़े होकर वे कहते हैं कि हमें न्याय चाहिए । हमारी स्वतंत्रता को हानि पहुंचानेवाला, हमारे अधिकारों को हड़पनेवाला, हमारी आत्मा को बंधी बनानेवाला तुम कौन हो? हमें धर्म नहीं चाहिए, स्वतंत्र आत्मा चाहिए, हमें राज्य नहीं चाहिए, रोटी चाहिए, हमें बंधन नहीं, मुक्ति चाहिए ।

इन कहानियों द्वारा अपने ही मूल ब्राह्मण समाज में हो रहे कठोर परिवर्तन को दर्शाना भी राहुल का लक्ष्य रहा । इसमें मार्क्सवाद एवं बौद्धधर्म के सामंजस्य का आभास भी मिलता है। यही इसका मूल स्वर है। कहानियों में राहुल अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते आगे बढ़ते हैं ।

सारांश यह है कि "कनैला की कथा" का शिल्प पक्ष कथ्यपक्ष की अपेक्षा निर्जीव है ।

उपसंहार

सारांश

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने समकालीन कहानिकारों के शिल्प से भिन्न होकर नए आयाम को स्वीकार किया। उन्होंने शिल्प केलिए कहानियाँ नहीं लिखीं। वर्तमान के चित्रण केलिए उन्होंने अतीत का सहारा लिया है। उन्होंने ऐसे शिल्प की उद्भावना की, जो अपने विचारों की अभिव्यक्ति के अनुकूल हो। उनकी कहानियाँ एक विशिष्ट कोटि में आनेवाली हैं। उन्होंने, इतिहास, समाज आदि से संबन्धित एक विशेष दृष्टिकोण को अपनाया।ये कहानियाँ देशकाल, भूगोल एवं समाज की परिधि का उल्लंखन करके बाहर जाती हैं। ये कहानियाँ भारत में जाति-प्रथा का वर्णन करती हैं, मानव समाज के विकास को दर्शती हैं एवं भेद भाव, जातीय-असमानता, अर्थिक-समाजिक शोषण, पाखंडता, आदि पर चोट करते हुए आशा करती हैं कि एक-न-एक दिन इन समस्याओं से मुक्त एक नए समाज का निर्माण ज़रूर होगा।

उपसंहार

राहुल सांकृत्यायन ने कहानियों को साहित्य के दायरे से बाहर निकालकर औसत मनुष्य की जिन्दगी के साथ सीधे जोड़ दिया। उन्होंने अपनी कहानियों में निम्नवर्ग के मनोभावों एवं विचारों को वाणी दी, जबकि उनके समकालीन कहानीकारों ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अपना केन्द्र बनाया। राहुल की कहानियाँ कहानीकला की दृष्टि से कम एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। उनकी कहानियाँ समाज के नग्न यथार्थ को चित्रित करनेवाली हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में मनुष्य जीवन के बीजवपन काल से लेकर भारत के स्वाधीन काल तक का सहेजा है। इनमें मनुष्य के विकासेतिहास के विभिन्न प्राचीन सांस्कृतिक युगों का चित्रण मिलता है। मनुष्य की उत्पत्ति और विकास को भी उन्होंने विज्ञान की नई उपलब्धियों के आधार पर समझा। उन्होंने वैज्ञानिक निष्कर्षों को ही सत्य माना।

"वोल्गा से गंगा" और "कनैला की कथा" में ऐसी कहानियाँ हैं, जो रोचक ढंग से लिखे इतिहास को व्यक्त करती हैं। ये कहानियाँ राहुल के इतिहास ज्ञान एवं भाषा विषयक पांडित्य का सच्चा निदर्शन है। उनकी सबसे प्रतिष्ठित रचना "वोल्गा से गंगा" है। शिल्प की दृष्टि से परखने से मालूम होता है कि इनका निश्चित कथानक नहीं, कहानीकार द्वारा अपने आदर्शों को प्रतिपादित करने के कारण बीच-बीच में कथा की गति रुक गई है। नाटकीयता का भी इनमें अभाव है। कहानियाँ लंबी भूमिका के साथ आरंभ होती हैं। इसके अधिकतर पात्र कहानीकार के विचारों के वाहक हैं। कहानियों में पात्रों के केवल बाह्यरूप का वर्णन मिलता है, जो विवरणात्मक शैली में है। इसमें कथोपकथनों का प्रयोग अधिक हुआ है। विचार प्रतिपादन के लिए कथोपकथनों ही मुख्य साधन बन गया है। कुछ स्थलों में यह दीर्घ और नीरस हो गया है। राहुल के घुमक्कड़ी व्यक्तित्व ने कहानियों में वातावरण चित्रण को सफल एंव आकर्षक बनाने में मदद दी। "वोल्गा से गंगा" में भाषा का युगानुकूल एवं पात्रानुकूल प्रयोग मिलता है। इस तरह कहानीकार ने साहित्य में 'समय और दूरी' के संकल्प का सार्थक निर्वाह किया है। परंपरागत शिल्प की दृष्टि से ये कहानियाँ सफल नहीं बन पाई हैं। पर साहित्य को केवल शिल्प की दृष्टि से परखना उचित नहीं। प्रयोगधर्मी कहानीकार होने के नाते राहुल ने कहानियों में अपने एक

मौलिक शिल्प की उद्‌भावना की। इन कहानियों की विशेषता वस्तु और विचारत भूमिका है। इस बात से सहमत होना पड़ेगा कि व्यक्गित रूचि, सैद्धांतिक एकपक्षता के कारण कहानियों की प्रामाणिकता में संदिग्धता आ गई है। पर केवल इस तथ्य से इस कृति का महत्व नहीं घटता। इसमें कहानीकार के विचारों ने उग्ररूप धारण कर लिया है। प्रगतिशील मानव-जीवन की कथा कहनेवाली इन कहानियों में नारी के विविध रूपों का युगानुरूप चित्रण मिलता है। "वोल्गा से गंगा" में कहानीकार एक विशेष दृष्टिकोण से अपनी बात का विवेचन करके आगे बढ़ते हैं। विश्व के इतिहास के संबंध में राहुल का अपना एक दृष्टिकोण था। इतिहास के कुछ प्रसंगों को लेकर उन्होंने कहानियों का निर्माण किया। इसकी कहानियाँ मनुष्य की लंबी यात्रा का इतिहास और मनुष्य के गहरे अन्तर्द्वन्द्व की कहानियाँ हैं। भारतीय समाज की ऐतिहासिक व्याख्या एवं सही परिप्रेक्ष्य में इतिहास की प्रस्तुति इन कहानियों का मूल स्वर है। मानव के क्रमिक विकास को, उसके जटिलतापूर्ण जीवन के ज्ञान को कलात्मक रूप देना उतना आसान कार्य नहीं। राहुल ने उस चुनौती को स्वीकार करके पहली बार ऐसी कहानियों का परिचय दिया जो ऐतिहासिक कहानियों को एक नया मोड़ देनेवाली हैं। इन कहानियों के पीछे राहुल का मुख्य उद्‌देश्य ऐतिहासिक घटनाओं का यथातथ्य वर्णन नहीं, पर युग की सूक्ष्म एवं प्रामाणिक प्रवृत्तियों के आधार पर ऐतिहासिक पात्रों का चरित्र रचना था। इन कहानियों में इतिहास का सार्थक एवं प्रगतिशील उपयोग एवं वर्तमान के लिए सतत् प्रासंगिकता के तत्व हैं। इन कहानियों में देशकाल, भूगोल तथा समाज की अनेक सीमाओं को तोड़कर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की स्थापना की गई है। संसार की पन्द्रह भाषाओं में अनूदित यह कृति युगान्तरकारी है।

"वोल्गा से गंगा" की अपेक्षा "कनैला की कथा" की ऐतिहासिक प्रामाणिकता असंदिग्ध है। इसमें कहानी के तत्वों की अपेक्षा संस्मरण के तत्व अधिक हैं। शिल्प की दृष्टि से देखें तो कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ तथ्यों पर आधारित हैं। कहानियों का आरंभ लंबी भूमिका के साथ है। इसके भी कथासूत्र का आयाम विशाल है। इसमें पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व का उल्लेख नहीं, अपितु कहानीकार स्वयं सूत्रधार बनकर तथ्यों का उद्‌घाटन करके आगे बढ़ते हैं। पात्रों का आंतरिक चित्रण तो नहीं और संवाद भी नहीं के बराबर है। पर इसका वातावरण अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। युगानुकूल भाषा का प्रयोग कहानीकार ने किया है। कहानी कहने के साथ ही कहानीकार अपने उद्‌देश्य को स्पष्ट करते जाते हैं। लेकिन "कनैला की कथा" का विचारपक्ष

अत्यंत सशक्त है। इसमें राहुल ने एक छोटे से गाँव में छिपी छोटी छोटी घटनाओं से व्यापक समय साक्ष्य जुटाए हैं। कहानीकार ने अज्ञात प्रसंगों को कल्पना के रंग में डुबोकर सुन्दर ढंग से यहां प्रस्तुत किया है। यह कृति कनैला गाँव की विभिन्न ऐतिहासिक आयामों में कथात्मक पुनर्रचना है। ये कहानियाँ एककालिक नहीं। कनैला की कथा कहने के लिए राहुल ने एक ही स्थान पर रहनेवाले विभिन्न युगों के मनुष्यों को केन्द्र में रखा है। "कनैला की कथा" में लेखक की ऐतिहासिक समझ, पुरातत्वज्ञान एवं कल्पनाशक्ति का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है। इन कहानियों को पढ़ने पर इतिहासात्मक निबन्ध का आभास हमें जरूर मिलता है। इतिहास शैली में लिखी होने के बावजूद उसका अधिकांश हिस्सा कल्पना पर आधारित है। इसलिए इसे कहानीसंग्रह ही कहा जा सकता है। स्वयं राहुल ने भी इसे कहानीसंग्रह कहा। अपने व्यापक अध्ययन और ज्ञान को कहानियों में ठूँसना उनकी रचनात्मक आकांक्षा थी। इसलिए कहानियों को रूढ़िगत शिल्प के दायरे में खड़ा करना वे नहीं चाहते थे। इसके द्वारा राहुल ने सांमती युग के इतिहास को अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसमें कहानीकार ने प्रथम विश्वयुद्धकालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में भी कनैला के पिछड़ेपन को दर्शाया है, साथ ही साथ स्वतंत्रता के बाद ऊँची एवं निचली जातियों में आए अलगाव एवं उनकी एकजुट्टा की ओर भी संकेत किया है। यह तो हिन्दी में ही नहीं, अन्य भाषाओं में भी, किसी एक गाँव को लेकर इतने विशाल समय के मानवीय विकास का रेखांकन दुर्लभ है।

"सतीम के बच्चे" और "बहुरंगी मधुपुरी" में समस्याएँ ही समस्याएँ हैं। इसमें मुख्यतः व्यक्ति का पाखंड, संस्कृति का उत्थान-पतन, समाज के जड-संस्कार, आदि का पर्दाफाश किया गया है। "सतीम के बच्चे" में कथावस्तु का संगठन इस प्रकार हुआ है कि आरंभ, विकास एवं चरमसीमा का आभास नहीं, रहस्योद्‌घाटन भी नहीं। पर यथार्थ घटनाओं की भावुकतापूर्ण प्रस्तुति के कारण इसे कहानी का रूप मिला। कहानियों के पारंपरिक शिल्प की कसौटी पर कसने से ये कहानियाँ कमजोर दिखाई पड़ती हैं। इसके अधिकतर पात्र शोषित वर्ग के हैं, जो राहुल के जीवन के अंग हैं। इसमें संवादतत्व कुछ स्थानों में मिलता है। पर वातावरण चित्रण गंभीर हो उठा है। कहानियों में उद्‌देश्यकथन अभिधात्मक है। परन्तु इस संग्रह की अन्य कहानियों की अपेक्षा "सतमी के बच्चे" नाम की पहली कहानी में कहानी की रोचकता मिलती है। इन कहानियों में कल्पना का अभाव है। वातावरण चित्रण एवं घटनाएँ भी यथार्थ हैं। "सतमी के बच्चे" की

कहानियाँ उस समय की थीं, जब भारत अंग्रेजी दासता से कराह रहा था। दूसरी ओर भारतीय समाज में सामंती शोषण और दमन के नीचे पिस रही जनता को अंग्रेजों के खिलाफ लड़ना पड़ा। ऐसी स्थिति में गरीबी रेखा से नीचे गुजरनेवाले लोगों के बीच से कुछ ऐसे पात्रों को चुनकर कहानियों की रचना करना महत्वपूर्ण काम है। राहुल इसमें तत्कालीन समाज की दयनीयता, करूणा और उपेक्षा के साथ-साथ आर्थिक विवशता, अशिक्षा और अंधविश्वास के परिणामों को झेलता है। इसकी कहानियाँ सस्ती करूणापूर्ण न होकर संघर्ष व जिजीविषा का समानान्तर चित्रण करनेवाली भावप्रधान कहानियाँ हैं। कहानीकार ने आर्थिक विषमताओं से आबद्ध जनसमूह के प्रतीक चरित्रों को केन्द्र में रखकर उनका सहानुभूतिपूर्वक चित्रण किया है। इसकी शैली आत्मसंस्मरणात्मक है। इन कहानियों के चरित्र, कहानीकार के जीवन से घनिष्ठ संबंध रखनेवाले हैं, जिनका उल्लेख उनकी आत्मकथा में मिलता है। इसमें ग्रामीण जीवन के उद्धार का सन्देश है।

"बहुरंगी मधुपुरी" की कहानियाँ संस्मरणात्मक शिल्प में लिखी गई हैं। सवा सौ वर्ष पहले अंग्रेजों द्वारा बसाई गई मसूरी, इस पहाड़ी नगर के बसने, विकसित होने एवं अंग्रेजों के भारत छोड़कर चले जाने के पश्चात् उसके वैभव एवं आर्थिक अवस्था में आये हुए उतार-चढ़ाव तथा वहाँ के विभिन्न वर्ग के निवासियों की आर्थिक सामाजिक जीवन की वैज्ञानिक प्रक्रिया का चित्र इसमें है। यथार्थ जीवन पर आधारित इसकी अधिकतर कहानियों में समाज के निर्धन वर्ग की आर्थिक समस्याओं का अंकन है। इसमें भी क्रमबद्ध कथानक का अभाव है। घटनाओं के स्थूलवर्णन के कारण कहानियाँ जिज्ञासामूलक नहीं। पात्र चित्रण शैली भी प्रत्यक्ष है। इसमें उद्देश्य का संकेत नहीं, स्पष्टीकरण है। सभी कहानियों की भूमिका भी लंबी है। इन कहानियों में निबन्ध, यात्रावृत्त और रेखाचित्र के तत्व मिलते हैं। इसकी हर कहानी के पात्र दूसरी कहानी के पात्रों से पूर्ण अपरिचित एवं स्वतंत्र रूप से रचे गए हैं। पर वे सब एक ही इतिहास, भूगोल, समाज एवं परिवेश के भिन्न-भिन्न स्तरों से गुजर रहे हैं। इसलिए इन कहानियों में एक औपन्यासिक एकसूत्रता है। एक ही पहाड़ी शहर से संबंधित होने के कारण इसमें आंचलिकता के तत्व भी मिलते हैं। ऐसा प्रयास हिन्दी में अत्यपूर्व ही है।

राहुल की कहानियों में मुंशी प्रेमचन्द की सामाजिक राजनीतिक प्रतिबद्धता तथा जयशंकर प्रसाद की सांस्कृतिक-ऐतिहासिक जागरूकता का सम्मिलन है। कहानीक्षेत्र में राहुल की महत्वपूर्ण

उपलब्धि वस्तु तथा विचारपक्ष की संपन्नता है। राहुल की कहानियों का यथार्थवाद उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का सूचक है। शिल्प पक्ष की अपेक्षा वस्तुपक्ष के प्रति उनकी निष्ठा का कारण, प्रगतिवादी दर्शन के प्रति उनकी आस्था है। इन कहानियों का वस्तुगत वैशिष्ट्य समाज की शोषित, उपेक्षित जनता के पक्ष में है। उनकी कहानियों का लक्ष्य सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी चेतना और भरतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्रगतिशील मूल्यों का प्रचार है। राहुल अपने युग संदर्भों एवं घटनाओं को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते थे। फलस्वरूप उनकी कहानियाँ प्रगतिशील अवधारणा की दृष्टि से अपने समय की रूढ़ियों पर चोट करते हुए वैचारिक दृष्टि से आनेवाले समय को प्रगतिशील एवं मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत करती हैं। उन्होंने अपनी ऐतिहासिक कहानियों में पौराणिक चरित्रों और घटनाओं को पुनरूत्थानवादी कहानीकारों की भांति कथारस में डुबोकर प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि कथात्मक पुनर्रचना को नए अर्थ देते हुए वर्तमान परिस्थितियों के लिए दोषी अपराधियों को अतीत के अपराधियों के रूप में देखा। उन्होंने अंधविश्वास एवं सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों पर चोट करके वैज्ञानिक दृष्टि के आधार पर इतिहास की पुनर्व्याख्या की । उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि को ध्यान में रखकर दास और सामंतवादी समाज की अर्थ व्यवस्था और विषम परिस्थितियों की जटिलता का जीवन्त चित्रण किया तथा जन साधारण को शोषण से मुक्त करने के लिए आवाज बुलन्द की।

राहुल की यथार्थवादी कहानियाँ मार्क्स की तरह दुनिया को बदल डालने का आग्रह करती हैं एवं गरीबों के दुःख-दर्द से पाठ्कों को अवगत कराती हैं। इनका मूल स्वर पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध है। राहुल की कहानियाँ इतिहास के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन जन जीवन को आँकने की कोशिश करती हैं। अतः ये ऐतिहासिक यथार्थवाद पर आधारित कहानियाँ हैं। इन कहानियों में ऐसे समाज या व्यक्ति का चित्रण है, जो हमेशा के लिए विलुप्त हो चुका है। अधिकतर कहानियों में देशकाल तथा पीढ़ी का उल्लेख है, जिससे इन कहानियों को विशेष कोटि में रखा जा सकता है। राहुल स्वस्थ सौन्दर्य के प्रशंसक और उसमें रस लेकर रमनेवाले कहानीकार हैं। इसलिए वे मांसल सौन्दर्य के चित्रण से हिचकते नहीं। इन कहानियों द्वारा कहानीकार पुराने खंडहरों को गिराकर एक नई दुनिया बसाना चाहते हैं। इनमें श्रम, साहस, जीवन-संघर्ष एवं जिजीविषा की महत्ता है। इन कहानियों के द्वारा राहुल ने अनेक जातियों, जनजातियों के अस्तित्व, सांस्कृतिक रीति-रिवाजों और उनके समाज वैज्ञानिक स्वरूप से शेष

विश्व को परिचित कराया। उनका ऐतिहासिक लेखन आधुनिकतावादी पुनर्लेखन है। ये कहानियाँ प्रागैतिहासिक मानव का जीवन, संस्कृति और सभ्यता के बारे में पहली बार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करती हैं। भिन्न-भिन्न सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आनेवाली इन कहानियों द्वारा कहानीकार ने परंपराओं एवं रूढ़ियों की खोज की। इन कहानियों में प्रयुक्त व्यंग्य चिढ़ानेवाला व्यंग्य है। राहुल ने इन कहानियों द्वारा न सिर्फ भारत में जाति प्रथा के निर्माण और विकास प्रक्रिया को समझाया, बल्कि मानवजीवन, भेदभाव, जातीय असमानता, ऊँच-नीच, आर्थिक शोषण आदि अमानवीय प्रवृत्तियों एवं समस्याओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए सजग किया।

राहुल की कहानियों में साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक आदि सभी स्तरों में प्रगतिशीलता का आभास मिलता है। ये कहानियाँ अपने समय की रूढ़िगत मान्यताओं पर चोट करते हुए वैचारिक दृष्टि से आनेवाले समय को प्रगतिशील एवं मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत नई रोशनी देती हैं। ये कहानियाँ व्यक्ति की कहानियाँ नहीं, जातियों और युगों की कहानियाँ हैं। वास्तव में कहानी कहना राहुल का लक्ष्य नहीं था, उस शैली में इतिहास, समाज एवं संस्कृति की कहानी कहना, वर्गभेद की खाई का उन्मूलन कर, स्त्री-पुरुष भेद को मिटाकर, धार्मिक रूढ़ियों का निष्कासन कर, सर्वांगीण समता, आर्थिक स्वतंत्रता एवं बौद्धिकता पर आधारित एक आदर्श समाज की स्थापना करना वे चाहते थे। अपनी कहानियों में राहुल ने प्राचीन इतिहास के साथ वर्तमान जीवन के उन अंगों को भी स्पर्श किया है, जिनकी ओर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया था। विभिन्न संस्कृतियों को समेटनेवाली इन कहानियों में राहुल का गवेषक व्यक्तित्व झलकता है। यही नहीं राहुल की सभी कहानियों पर उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कहानीकार के पास एक निश्चित जीवनदृष्टि होनी चाहिए और यथार्थ को पहचानने की क्षमता चाहिए। राहुल में यह क्षमता थी। वे एक सुनिश्चित विचारधारा के साथ कहानी लेखन में प्रवृत्त हुए। साम्यवादी दृष्टि के कारण कहानियों में श्रम की संस्कृति को उजागर किया गया है। ये कहानियाँ अर्थ-शोषित, समाज-शोषित, राज्य-शोषित तथा लिंग-शोषित समुदाय की मुक्ति के लिए एक साथ प्रतिबद्ध हैं अर्थात् ये शोषित जनता के जीवन, भविष्य, न्याय एवं संघर्ष के प्रति प्रतिबद्ध हैं। भारतीय समाज के किसानों, मजदूरों और उपेक्षितों के जीवन को निकट से देखने

का अवसर राहुल को मिला था इसलिए इन कहानियों से गुजरते वक्त ऐसा अुनभव होता है कि इनके पात्र आस-पास के ही हैं। शोषित किसान-मजदूरों की समस्याओं के बुनियादी कारणों की खोज करके उनके भविष्य के लिए खतरनाक सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक शक्तियों का उद्‌घाटन इन कहानियों में किया गया है। उन्होंने इन कहानियों के द्वारा हमें भारत के बाहर आमंत्रित किया, कहानी की रचना के आधारफलक को विस्तृत किया, भारतीय ग्रामीण जीवन के अज्ञात तथ्यों से अवगत कराया, पर्वतीय विलासपुरियाँ के विडंबनापूर्ण जीवन को दर्शाया एवं हमारे सामने मानवता के विकासक्रम को रोचकढंग से प्रस्तुत किया।

संक्षेप में कहें तो राहुल सांकृत्यायन की कहानियों में बुद्ध की करूणा, डारविन का विकासवाद, मार्क्सवादी समाज व्यवस्था का समर्थन, मानवतावादी दृष्टि, नारी मुक्ति भावना, लोकतंत्र एवं गणतंत्र का राजनीतिक आदर्श, निम्नवर्ग की समस्याओं के प्रति आजीवन समर्पण आदि भावनाएं पाई जा सकती हैं। इन कहानियों में साधारण मनुष्य के हितों पर ध्यान रखा गया है। ये शोषणमुक्त मानवता की पक्षधरता को प्रसारित करनेवाली सार्थक कहानियाँ हैं। राहुल अतीतजीवी रचनाकार या चिन्तक ही नहीं, बल्कि भविष्योन्मुख यथार्थ के सफल चितेरे भी थे। अतः आनेवाले समय में उनकी कहानियों में व्यक्त विचार, चिन्तन एवं उनका महत्व ज्यादा उल्लेखनीय तथा प्रासंगिक होंगे - इसमें कोई सन्देह नहीं । राहुल सांकृत्यायन के संपूर्ण साहित्य का विशद अध्ययन संभव है, विशेषकर उनके कथासाहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक चेतना जैसे सूक्ष्म पहलुओं का गहन और व्यापक अध्ययन किया जा सकता है ।

****

परिशिष्ट

परिशिष्ट-एक

राहुल सांकृत्यायन की रचनाओं की सूची

(अ) सर्जनात्मक साहित्य

पुस्तक का नाम	प्रथम संस्करण	प्रकाशक
उपन्यास		
बाईसवीं सदी	1923	किनाबमहल, इलाहाबाद
जीने के लिए	1940	" "
सिंह सेनापति	1944	" "
जय यौधेय	"	" "
मधुरस्वप्न	1949	आधुनिक पुस्तक भवन कलकत्ता
राजस्थानी रनिवास	1953	राहुल प्रकाशन, मसूरी
विस्मृत यात्री	1954	किनाबमहल, इलाहाबाद
दिवोदास	1960	" "
निराले हीरे की खोज	1965	" "
कहानियाँ		
सतमी के बच्चे	1935	किताब महल, इलाहाबाद
वोल्गा से गंगा	1942	" "
बहुरंगी मधुपुरी	1954	राहुल प्रकाशन, मसूरी
कनैला की कथा	1957	किताब महल, इलाहाबाद

नाटक

तीन नाटक	1944	किताब महल, इलाहाबाद
पाँच नाटक	1956	" "

(आ) ज्ञान साहित्य

आत्मकथा

मेरी जीवनयात्रा भाग- 1	1944	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
मेरी जीवनयात्रा भाग- 2	1968	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मेरी जीवनयात्रा भाग- 3	1968	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मेरी जीवनयात्रा भाग- 4	1968	" "
मेरी जीवनयात्रा भाग- 5	1968	" "

जीवनी

अतीत से वर्तमान (खंड तीन)	1956	विद्यामंदिर प्रेस, वाराणसी
नए भारत के नए नेता (दो खंड)	1943	न्यू बुक सिंडिकेट, इलाहाबाद
बचपन की स्मृतियां	1956	किताबमहल, इलाहाबाद
स्तालिन	1954	" "
लेनिन	"	" "
कार्ल मार्क्स	1956	" "

माओ-त्से-तुंग	1956	किताब महल, इलाहाबाद
सरदार पृथ्वी सिंह	लेखन 1944	ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
घुमक्कड़ स्वामी	1956	किताबमहल, इलाहाबाद
मेरे असहयोग के साथी	1956	" "
जिनका मैं कृतज्ञ	1956	" "
वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली	1957	" "
सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन	1960	राजपाल एंड सन्स, दिल्ली
सिंहल के वीर	1961	किताब महल
कप्तान लाल	1961	राजपाल एंड सन्स, दिल्ली

यात्रा वृतांत

दार्जीलिंग परिचय	1950	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
कुमाऊँ	1956	ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
किन्नरदेश में	1956	इंडियन पब्लिशर्स, इलाहाबाद
गढ़वाल	1953	ला जर्नल प्रेस इलाहाबाद
नेपाल	अप्रकाशित	
जौनसार देहरादून	1955	विद्यार्थी ग्रंथागार, इलाहाबाद

हिमाचल प्रदेश	रचना 1954	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
मेरी लद्दाख यात्रा	1926	किताबमहल, इलाहाबाद
लंका यात्रा	1927-1928	" "
तिब्बत में सवा वर्ष	1933	शारदा मंदिर, नई दिल्ली
मेरी यूरोप यात्रा	1932	किताब महल, इलाहाबाद
मेरी तिब्बत यात्रा	1932	" "
जापान	1935	ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
ईरान (खंड 1, 2)	1937	इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
यात्रा के पन्ने	1952	साहित्य सदन, देहरादून
एशिया के दुर्गम भूखंडों में	1956	नवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
लंका यात्रा	1927 – 28	किताबमहल, इलाहाबाद
चीन में कम्यून	1959	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
चीन में क्या देखा	1959	" "
सोवियत भूमि	1939	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
सोवियत मध्य एशिया	1947	साहित्य निकेतन, इलाहाबाद
घुमक्कड़शास्त्र	1949	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

रूस में पच्चीस मास	1956	हिन्दी प्रचारक वाराणसी
यात्रा निबन्ध संग्रह	पुस्तकाकार अप्रकाशित	

साहित्य

साहित्य निबन्धावली	1949	किताबमहल, इलाहाबाद
राहुल निबन्धावली	1970	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
विविध प्रसंग	1986	" "
हिन्दी काव्यधारा	1954	" "
आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत	1950	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना
दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा	1954	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
सरहपाद दोहाकोश	1957	" "
हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास 16 वाँ भाग (संपादन)	1957	नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
पालि साहित्य का इतिहास	1963	सूचना विभाग, हिन्दी समिति, लखनऊ
तुलसी रामायण (संक्षेप)	अप्रकाशित	
भाषण संग्रह	अप्रकाशित	
उर्दू भाषा निबन्ध संग्रह	अप्रकाशित	
भोजपुरी लेख संग्रह	पुस्तकाकार अप्रकाशित	

लिपि तथा टंकण लिपि ”

राजनीति और साम्यवाद

साम्यवाद ही क्यों	1935	युगांतर पुस्तकमाला, पटना
दिमागी गुलामी	1937	किताबमहल, इलाहाबाद
क्या करें	1937	” ”
सोवियत न्याय	1940 अप्राप्य	
तुम्हारी क्षय	1939	किताबमहल, इलाहाबाद
आज की समस्याएँ	1944	” ”
आज की राजनीति	द्वितीय सं- 1951	राजकमल, नई दिल्ली
भागो नहीं (दुनिया को) बदलो	रचना 1944	किताबमहल, इलाहाबाद
कम्युनिष्ट क्या चाहते हैं	1953	राहुल प्रकाशन, मसूरी
रामराज्य और मार्क्सवाद	1956	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
राहुलजी का अपराध	1939	” ”
सोवियत कम्युनिष्ट पार्टी का इतिहास	1939 अप्राप्य	
राजनीति निबन्ध संग्रह	अप्रकाशित	
सोवियत विधान	1954	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

इतिहास-पुरातत्व

मध्य एशिया का इतिहास (दो भाग)	1952	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक	1950	करेंट बुक डिपो, कानपुर
ऋग्वैदिक आर्य	1956	किताबमहल, इलाहाबाद
अकबर	1956	
पुरातत्व निबन्धावली	1937	इंडियनप्रेस, इलाहाबाद
आजमगढ़ की पुराकथा	1957	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
प्रगति पुरातत्वांक		प्रबुद्ध भारती प्रकाशन ग्वालियर
गंगा पुरातत्वांक (सं)	1933	सुल्तानगंज
इतिहास निबन्ध संग्रह	अप्रकाशित	

धर्म और संस्कृति

बुद्धचर्या	लेखन 1926	महाबोधि सभा, सारनाथ
धम्मपद	1933	बुद्धविहार, लखनऊ
मज्झिम निकाय	1933	महाबोधि सोसाइटी, लखनऊ
विनय पिटक	"	" "
दीर्घ निकाय	1939	महाबोधि सोसायटी, सारनाथ
बौद्ध संस्कृति	1952	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
बौद्ध दर्शन	1942	किताबमहल, इलाहाबाद
महामानव बुद्ध	1956	बुद्धविहार, लखनऊ

तिब्बत में बौद्ध धर्म	1933	हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
इस्लाम धर्म की रूपरेखा	1943	किताबमहल, इलाहाबाद
पाँच बौद्ध दार्शनिक	1957	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
श्रावस्ती जेतवन	1956	बुद्धविहार, लखनऊ
संस्कृति निबन्ध संग्रह	पुस्तकाकार अप्रकाशित	
सिंहल भाषा	"	
धर्म निबन्ध संग्रह	"	
बौद्ध सिद्ध साहित्य	"	

<u>विज्ञान, दर्शन और भाषा</u>

विश्व की रूपरेखा	1942	किताबमहल, इलाहाबाद
मानव-समाज	1951	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
मानव की कहानी	लेखन 1962	राजपाल एंड सन्स, दिल्ली
दर्शन-दिग्दर्शन	1942	किताबमहल, इलाहाबाद
वैज्ञानिक भौतिकवाद	1942	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
भाषा निबन्ध संग्रह	पुस्तकाकार अप्रकाशित	
दर्शन विषयक निबन्ध संग्रह	"	

<u>अनुवाद</u>

शैतान की आँख	लेखन 1923	किताबमहल, इलाहाबाद

विस्मृति के गर्भ में	"	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
जादू का मुल्क	लेखन 1923	" "
सोने की ढाल	लेखन 1923	किताबमहल, इलाहाबाद
दाखुंदा	रचना 1947	" "
जो दास थे	"	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान
अनाय	1948	इंडियन पब्लिशर्स, प्रयाग
अदीना	"	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना
सूदखोर की मौत	1957	"
शादी	1952	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पत्र

राहुल के पत्र	अप्रकाशित	
पिता के पत्र पुत्र-पुत्री के नाम	"	
राहुल पत्रावली	"	

कोश

शासन शब्द कोश	1948	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
राष्ट्रभाषा कोश (संपादित)	1951	राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
तिब्बती हिन्दी कोश	"	साहित्यप्रचार समिति,वर्धा
तिब्बती संस्कृत कोश	अप्रकाशित	

तिब्बती

तिब्बती बालशिक्षा	1933	महाबोधि, सारनाथ
तिब्बती पाठावली (भाग 1,2,3)	1933	यंगमैन एसोसिएशन हाउस, लद्दाख
तिब्बती व्याकरण	1933	महाबोधि सभा, सारनाथ

संस्कृत-पालि (संकलन, अनुवाद, संपादन)

संस्कृत पाठमाला (पाँच भाग)	1928	चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
संस्कृत काव्यधारा	1958	किताबमहल,इलाहाबाद
पालि काव्यधारा	अप्रकाशित	
अभिधर्म कोश	1931	काशी विद्यापीठ, बनारस
वादन्याय	1935	बिहार रिसर्च सोसायटी जर्नल, पटना
प्रमाणवार्तिक	1935	किताबमहल, इलाहाबाद
अध्यर्द्धशतक	"	बिहार रिसर्च सोसायटी जर्नल, पटना
विग्रहव्यावर्तनी	1936	"
प्रमाणवार्तिक भाष्य	1935	किताबमहल, इलाहाबाद
प्रमाणवार्तिक वृत्ति	1936	"
प्रमाणवार्तिक स्ववृति	"	"
प्रमाणवार्तिक स्ववृति टीका	1937	"

हेतुबिंदु सूद्वयम	1944	बिहार रिसर्च सोसाइटी
विज्ञप्तिमात्रता	1934	"
विनयसूत्र	"	बुद्ध विद्याभवन, बंबई
संबन्ध परीक्षा	1944	बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना
निदान सूत्र	1951	"
सूत्र कृतांगम	1961	जैन साहित्य प्रकाशन, हरियाणा
महापरिनिर्वाण सूत्र	1951	बुद्ध बिहार, लखनऊ
संस्कृत निबन्ध संग्रह	पुस्तकाकार अप्रकाशित	

<u>अंग्रेजी</u>

Selected Essays of Rahul- Sankrityayan	1988	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
English Essays	पुस्तकाकार अप्रकाशित	

****

परिशिष्ट-दो

(क) महापंडित राहुल सांकृत्यायन की धर्म पत्नी श्रीमती डा. कमला सांकृत्यायन से 25 अप्रैल 2002 में हुई मुलाकात के आधार पर

प्रश्नः अब आप क्या करती हैं? आपकी शिक्षा, नौकरी, पारिवारिक स्थिति आदि के बारे में बताइए।

उत्तरः मैं तो अब इकहत्तर की हूँ। दार्जीलिंग के इस 'राहुल निवास' में अकेली हूँ। इसी मकान के बगल में जो लोग रहते हैं, वे मेरे रिश्तेदार हैं। वे मुझ पर ध्यान रखते हैं। आस-पास के लोग भी अच्छे हैं। मेरा पुत्र जेता सांकृत्यायन दार्जीलिंग जिले में ही है। इसके सिवा मेरी छेटी बहन गंगा और भाई हरिप्रसाद कल्म्पोंड में रहनेवाले हैं। वे भी यहाँ आया करते हैं। बेटी जया सांकृत्यायन, जो दिल्ली में है, निरन्तर फोन पर बातें करती है। शिक्षा के बारे में कहें तो जब राहुलजी से मुलाकात हुई थी, तब मेरी योग्यता सिर्फ मैट्रिक्युलेशन थी। वे मुझे पढ़ाकर पी.एच.डी. तक ले गए। सन् 1959 ई. में मुझे पी.एच.डी. की उपाधि मिली। पहले मैंने राहुलजी के निजी सेक्रेटरी के रूप में काम किया। फिर लोराटो कालिज, दार्जीलिंग में प्राध्यापिका के रूप में मेरी नियुक्ति हुई और वहाँ से हिन्दी विभागाध्यक्षा के रूप में मैं रिटायर हुई। इसके बाद नेशनल कमीशन फोर माइनारिटीज़ (केन्द्रीय सरकार) में बौद्ध सदस्य के रूप में सन् 1997 ई. से सन् 1999 ई. तक काम किया। उस समय मैं दिल्ली में थी। तब मैं इतनी व्यस्त थी कि अनेक यात्राएँ करनी पड़ीं और संगोष्ठियों में भाग लेना पड़ा। अब भी सम्मेलनों एवं संगोष्ठियों में भाग लेती हूँ मुख्यतः महिलाओं से संबंधित।

प्रश्नः राहुलजी से आपकी पहली मुलाकात के संबंध में बताइए। उम्र में सैंतीस वर्ष की फासला होने पर भी आपने उनको पति के रूप में स्वीकार किया। इसका कोई विशेष कारण है?

उत्तरः सन् 1949ई. में कलिंगपोंङ् ग्रामवासियों का जीवन, उनकी समस्याएँ, यहाँ की प्रकृति आदि को पढ़कर लिखने के लिए राहुलजी यहाँ आए। वे इतने व्यस्त रहते थे कि उनको एक सहायक की आवश्यकता पड़ी। मेरी अंग्रेजी-हिन्दी लिखावट तो बहुत अच्छी थी।

इसलिए उन्होंने मुझे उनकी सेक्रेटरी एवं टंकक के रूप में नियुक्त किया। गरीबों के प्रति करूणा उनकी एक विशेषता थी। मेरा परिवार तो बहुत गरीब था। हमें देखकर उनमें सहानुभूति आयी। पढ़ाई में मेरी तत्परता देखकर उन्होंने मुझे पढ़ाया। वे मधुमेह रोग से पीड़ित थे। उन्हें एक सहायक की जरूरत थी। उन्होंने मुझे हमेशा के लिए सहधर्मिणी बनाने की इच्छा प्रकट की। इस महान विभूति की सेवा करना मैंने भी अपना परम कर्त्तव्य समझा। उस समय समाज से अनेक बाधाएँ आईं। राहुलजी ने मसूरी में एक मकान खरीद लिया। सन् 1950 ई. से हम दोनों वहाँ रहने लगे। तब मैं राहुलजी के सभी कार्यों को संभाल करनेवाली एक विश्वस्त सेविका, संरक्षिका आदि सबकुछ बन गई। मैंने राहुलजी को घर के सभी कर्त्तव्यों से इसलिए मुक्त किया ताकि वे साहित्य-सामाजिक सेवा से जुड़ सके। राहुल का देखभाल, बच्चों का संरक्षण, घर को संभालना सभी काम मेरे कंधों पर पड़े। मुझे एक साथ अनेक भूमिकाएँ निभानी पड़ीं। मेरे उन सभी त्यागों का जिक्र "मेरी जीवनयात्रा" भाग - 6 में बताया गया है। उसे पढ़िए।

प्रश्नः कमलाजी, एक व्यक्ति के रूप में अपने पति का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तरः मेरे स्वामी अत्यंत सरल प्रकृति के थे। उनको मानव स्वभाव का एक ही पक्ष स्वीकार था, वह था मानवीय गुण। वे सभी मानव में गुण ही देखते थे। वे लोगों को परखने में कभी-कभी धोखा खा जाते थे। प्रकाशकों एवं मित्रों से उन्हें धोखा खाना पड़ा। उनको अपने लेखन-कार्य के प्रति असीम निष्ठा थी। कैसा ही वातावरण हो, वे मन को एकाग्र करके लिखने में जुट जाते थे। यद्यपि उनके लिए समय बहुमूल्य था और एक मिनट को भी व्यर्थ में खर्च न करते, तो भी यदि कोइ उनसे मिलने आते वे उनसे मिलते, बातें करते, उनका कुशलक्षेम इत्यादि पूछते थे। वे प्रश्नकर्त्ताओं की जिज्ञासापूर्ति भली-भांति कर देते थे। उनके विरोधी व्यक्ति भी घर आया करते थे और सामने ही बैठकर उनकी आलोचना करते थे। तो भी महापंडितजी किसी की प्रत्यालोचना नहीं करते। मेरे पति अत्यंत उदार एवं दानशील थे। वे धन के पीछे कभी नहीं दौड़े। मानव जीवन में धन की भी आवश्यकता पड़ती है, इस दायित्व का बोध महापंडितजी को अपने अंतिम दिनों में ही हुआ। वे विनोदी प्रकृतिवाले तथा क्षमाशील थे। इसी गुण के कारण विरोधी भी उनके

सामने नतमस्तक हो जाते थे। डा. रामविलास शर्मा ने पहले उनकी कटु आलोचना की थी। लेकिन बाद में शर्मा जी और उनका पुत्र राहुलजी के हितैषी बने। वे स्नेही पति, वात्सल्यमई पिता एवं अच्छे गुरू थे।

प्रश्नः एक साहित्यकार के रूप में महापंडितजी का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तरः राहुलजी बंद कमरे में बैठकर लिखनेवाले साहित्यकार नहीं थे। वे साधारण मानव के बीच रहे और उनके सुख-दुःख के भागीदार बने। उन्होंने मनुष्य को जाना पहचाना और उसी अनुभव को साहित्य का रूप दिया। साहित्य में जिस आदमी का, जिस प्रकृति का या जिस घटना का वर्णन उन्होंने किया है, वह उनके द्वारा सूँघा एवं स्पर्श किया हुआ है। वे घुमक्कड़ साहित्यकार थे तथा हिन्दी के पाठकों के लिए अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक थे। एक मिनट को भी व्यर्थ करना वे पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था- "मुझे पुनर्जन्म में विश्वास नहीं है। जो कुछ करना है, इसी जन्म में करना चाहता हूँ। कोई भी कार्य अधूरा न रह जाए। इसलिए परिश्रम कर रहा हूँ।" उनकी इच्छा रहती थी कि हिन्दी जगत को ऐसी चीजें प्रस्तुत करें जो अपूर्व हों, जिनसे पाठक लाभ उठाएँ। वे अपने देश के बारे में अपने समाज के बारे में ही सोचते और देश तथा समाज के लिए लिखते थे। वे भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक भी थे।

प्रश्नः रूसी पत्नी लोला सांकृत्यायन की मृत्यु कब हुई? ईगोर के साथ अब कोई संबंध है क्या? क्या वे भारत आए थे?

उत्तरः लोलाजी की मृत्यु सन् 1979 ई. में हुई थी। वे तो रूस के लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के लाइब्रेरियन थीं। राहुलजी के अंतिम दिनों में उनसे मिलने वे रूस के अस्पताल में तीन बार आयीं। पुत्र ईगोर अब 64 साल के हैं। वे भी राहुलजी से मिलने पाँच बार अस्पताल आए थे। उस समय राहुलजी उन्हें पहचान नहीं सके। अब तो ईगोर लेनिनग्राद यूनिवर्सिटी के लाइब्रेरियन हैं। उनकी दो शादियाँ हुईं। पहली शादी में कोई बच्चा नहीं। दूसरी पत्नी का नाम 'जाना पेत्रोब्ना' है। पुत्र 'निकोलाई'। ईगोर सन् 1996 ई. में पत्नी के साथ राहुल के जन्मशताब्दी के अवसर पर भारत आए। उस समय जया और जेता उसे राहुलजी के पितृग्राम कनैला और जन्मग्राम पन्दहा ले गए। ईगोर अपने पिता की

जन्मभूमि को देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। अब तो चिट्ठियों द्वारा उनसे संबंध रखती हूँ। यहाँ से जेता सांस्कृतयायन भी रूस गए थे।

प्रश्नः आपकी राय में राहुलजी के घनिष्ठ व्यक्ति कौन-कौन हैं?

उत्तरः मैं केवल भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी एवं महादेव साहाजी को राहुल के घनिष्ठ मानती हूँ। मैं घनिष्ठ उसे मानती हूँ, जो हमारे दुःख में भी हमारे पास रहता है और कुशलता पर ध्यान रखता है। बाकी सब 'आत्मीय' के नाम पर धोखा देनेवाले हैं।

प्रश्नः मैं तो सांकृत्यायन की कहानियों की ओर जाना चाहती हूँ। उनकी कहानियों में मुझे 'प्रभा' कहानी सबसे अच्छी लगी। आपकी राय क्या है?

उत्तरः हम सभी की राय में 'प्रभा' कहानी ही अच्छी है। राहुलजी भी इसे बहुत अधिक पसन्द करते थे। मैंने 'प्रभा' कहानी का नाट्यांतर किया। हमारे कालिज में मेरे निदेशन में इस नाटक का मंचन हुआ, तो अनेक दर्शकों ने इसकी प्रशंसा की।

प्रश्नः हमने सुना है कि "वोल्गा से गंगा" को फिल्म बनाने का प्रस्ताव आया था। ठीक है?

उत्तरः ठीक है। लेकिन मैं और पुत्र जेता इसलिए इंकार किया कि वे लोग उस कृति को तोड़ मरोड़कर एक दूसरा रूप देंगे।

प्रश्नः राहुल स्मृति को कायम रखने के लिए क्या-क्या किए गए?

उत्तरः मिनिस्ट्री आफ टूरिज्म और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने 'राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' का आयोजन किया है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का पहला 'राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' सन् 1994 ई. में मुझे मिला। इसके अलावा 'राहुल स्मृति ट्रस्ट' की स्थापना हुई है। यू.पी. मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में आजमगढ़ में राहुल की प्रतिमा की स्थापना हुई। कनैला, लखनऊ और दार्जीलिंग में भी राहुलजी की प्रतिमाएँ हैं। चक्रपानपुर, मसूरी और दार्जीलिंग के सड़कों को 'राहुल सांकृत्यायन मार्ग' नाम दिया गया है। आजमगढ़ में 'राहुल नगर' है। पन्दहा एवं कनैला में 'राहुल मेमोरियल स्कूल' हैं। आजमगढ़ में राहुल चिकित्सालय है, जो स्त्रियों के लिए है। राहुल बहुआयामी शोध संस्थान दिल्ली, राहुल शोधपीठ गोरखपुर विश्वविद्यालय आदि उल्लेखनीय हैं। राहुलजी की जन्मशताब्दी 1993-94, 1994-95 में मनाई गई। पन्दहा गाँव वाले राहुल का जन्मदिन हर वर्ष मनाते हैं।

प्रश्नः क्या आपने कुछ लिखा है?

उत्तरः उसकी बात छोड़ो। मैंने केवल राहुल पर लिखा है। मैं उनकी अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करने की कोशिश में हूँ।

प्रश्नः अब आपका मुख्य कार्य एवं जीवनलक्ष्य क्या है?

उत्तरः अब तो मैं अपने स्वामीजी की अंतिम अभिलाषा को पूरी करने के काम में व्यस्त रहती हूँ। अंतिम समय में उन्होंने मुझे आर्शीवाद देकर कहा था- "कमलाजी आप सन् 2010 ई. तक जीवित रहेगी और आप इस दुनिया को मेरा परिचय दें। मैं अपने राहुलजी की इस अंतिम अभिलाषा को अपना पवित्र कर्त्तव्य समझकर, उसे पूरा करने के व्रत में हूँ।

****

(ख) महापंडित राहुल सांकृत्यायन की बेटी श्रीमती जया सांकृत्यायन से 17 अप्रैल 2002 में हुई मुलाकात के आधार पर

प्रश्नः जी, अब आप क्या कर रही हैं? घर-परिवार के संबन्ध में बताइए।

उत्तरः अब तो मैं नई दिल्ली के 'अनन्दग्राम' में स्थित 'संस्कृति केन्द्रा' की सह संचालिका के रूप में काम करती हूँ। मेरा घर गुड़गाँव में है, जो अनन्दग्राम में ही है। मेरी शादी सन् 1977 ई. में हुई थी। पति का नाम योगेश्वर है, जो व्यापार करते हैं। एक बेटा है 'मानव' ।

प्रश्नः पुत्री के रूप में आप अपने पिता का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तरः जब मेरे पापा की मृत्यु हुई थी, तब हम केवल आठ-नौ साल के थे। थोड़े दिनों के संबंध के आधार पर मैं कहती हूँ कि हमारे पापा अत्यंत वात्सल्यमई पापा थे। वे हमको साथ लेकर हमेशा घूमने जाते थे, कहानियाँ सुनाते थे और हर तरह से हमें खुश रखते थे।

प्रश्नः राहुल जी के परिवार में कौन-कौन जीवित हैं?

उत्तरः उनके कनैला के परिवार में भतीजे, उनके बेटे, बहू एवं बच्चे रहते हैं। पन्दहा में भी उनके रिश्तेदार रहते हैं।

प्रश्नः अपने भाई जेता सांकृत्यायन के बारे में बताइए।

उत्तरः जेता की शादी सन् 1980 ई. में हुई। उनकी आयु अब 47 साल की है। शादी हुई है। एक बेटा भी है। जिसका नाम 'शास्ता' है। वह जेता नार्थ बंगाल यूनिवर्सिटी, दार्जीलिंग के प्राध्यापक हैं।

प्रश्नः स्मृति के रूप में ऐसी कोई चीज़ आपके पास है, जिसे राहुलजी ने भेंट की थी?

उत्तरः मेरे पास बौद्ध भिक्षुओं की एक जपमाला है, उसे मैं ने अपने पापा की स्मृति में सुरक्षित रखा है।

प्रश्नः साहित्यकार के रूप में अपने पिता में आप क्या विशेषतया देखती हैं?

उत्तरः परिस्थितियों से समझौता एवं अनीतियों का खुल्लमखुल्ला विरोध उनकी विशेषताएं थीं।

प्रश्नः राहुल की रचनाओं का संकलन 'राहुल वांड्मय' नाम से प्रकाशित है न? मुझे सूचना मिली कि इसके ग्यारह खंड हैं। लेकिन केवल दो खंड ही प्रकाशित हैं। बाकी प्रकाशित करने की योजना है क्या?

उत्तरः राहुल का साहित्य इतना अस्त-व्यस्त पड़ा है कि उनके संपादन एवं संकलन के लिए कठिनाई महसूस होती है।

प्रश्नः इतने बड़े साहित्यकार की बेटी होने के नाते समाज से आपको अपेक्षित आदर मिला है या नहीं?

उत्तरः मैं महापंडित राहुल सांकृत्यायन की पुत्री के रूप में किसी से अपना परिचय न देना चाहती हूँ। इसलिए कि इतने बड़े साहित्यकार की बेटी कहने में मुझे संकोच है क्योंकि साहित्य में मेरी कुछ भी रूचि नहीं।

****

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

मौलिक ग्रंथ

कनैला की कथा : राहुल सांकृत्यायन, प्र,सं. १९५७, किताबमहल, इलाहाबाद

बहुरंगी मधुपुरी : राहुल सांकृत्यायन, प्र,सं. १९५४, राहुल प्रकाशन, मसूरी

वोल्गा से गंगा : राहुल सांकृत्यायन, प्र,सं. १९४२, किताबमहल, इलाहाबाद

सतमी के बच्चे : राहुल सांकृत्यायन, प्र,सं. १९३५, किताबमहल, इलाहाबाद

आलोचनात्मक एवं सामान्य ग्रंथ

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा. नामवर सिंह, प्र.सं. १९९०

आर्यो का आदि निवास; मध्यहिमालय : भजन सिंह, प्र.सं. १९६८, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ : डा. देवेश कुमार, प्र.सं. १९७४ मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

ऋग्वैदिक आर्य : राहुल सांकृत्यायन, किताबमहल, इलहाबाद

कहानीकला, विकास और इतिहास : डा. श्रीपतिशर्मा त्रिपाठी, प्र. सं १९६२, नन्द किशोर एंड सन्स, वारणासी

कहानीकला और कलाकार : व्यथित हृदय, प्र.सं १९५३, रमनारायण लाल, प्राकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद

घुमक्कड़ स्वामी : राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. १९५८, किवाबमहल, इलाहाबाद

दर्शन दिग्दर्शन : राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. १९४२, किताबमहल, इलहाबाद

दृश्यालेख : नन्द किशोर नवल, प्र.सं. १९९५, भारतीय ज्ञानपीठ

नया साहित्य नए प्रश्न	:	नन्ददुलारे वाजपेई, प्र.सं. 1955, रामजी वाजपेई विद्यामंदिर वाराणसी
परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति	:	फ्रैडरिक एंगेल्स, द्वि सं. 1978, पी. पी.एस, नई दिल्ली
पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास	:	गुलाबराय, द्वि.सं.- सं 2016 वि, नागरीप्रचारिणी सभी, वाराणसी
प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ	:	डा. रामविलास शर्मा, द्वि. सं 1957 विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
फ्रायड मनोविश्लेषण	:	ए. जनरल इट्रोडक्शन टु साइको एनैलिसिस का हिन्दी अनुवाद प्र.सं 1996, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
बचपन की स्मृतियाँ	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1955ए किताबमहल, इलाहाबाद
बाईसवीं सदी	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं 1924, किताबमहल, इलाहाबाद
बौद्ध धर्म के आधार स्तंभ	:	जयप्रकाश 'कर्दम', प्र.सं. 1997 अतिश प्रकाशन,
बौद्ध दर्शन	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1948, किताबमहल, इलाहाबाद
भारतीय दर्शन	:	आचार्य पं बलदेव उपाध्याय, प्र.सं. 1971 शारदा मंदिर, वाराणसी
भारतीय विचारधारा	:	मधुकर प्रथम सं 1943, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस
भारतीय चिंतनधारा	:	के.दामोदरन, द्वि.सं. 1982.

भाषा और समाज	:	पी.पी.एस, नई दिल्ली, डा. रामविलास शर्मा, प्र.सं. 1973, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
मानव सभ्यता का विकास	:	डा. रामविलास शर्मा, द्वि.सं. 1983 वाणी प्रकाशन, दरियागंज
मार्क्स और पिछड़े हुए समाज	:	डा. रामविलास शर्मा, प्र.सं. 1986 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मेरी जीवन यात्रा (भाग 1)	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1944 किताबमहल, इलाहाबाद
मेरी जीवन यात्रा (भाग 2)	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1950 किताबमहल, इलाहाबाद
मेरी जीवन यात्रा (भाग 3)	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1967 राजकमल, नई दिल्ली
मेरी जीवन यात्रा (भाग 4)	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1967 राजकमल, नई दिल्ली
मेरी जीवन यात्रा (भाग 5)	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं 1967 राजकमल, नई दिल्ली
रामराज्य और मार्क्सवाद	:	राहुल सांकृत्यायन, दूसरा सं. 1964 पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
राहुल स्मृति	:	सं- रामशरण मुंशी और पुष्पलता जैन प्र.सं. 1988, महापंडित राहुल सांकृत्यायन ट्रस्ट-18, प्रीतम रोड, देहरादून
राहुल निबन्धावली	:	राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1970 पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
राहुल सांकृत्यायन - सृजन और संघर्ष	:	उर्मिलेश, प्र.सं 1991

राहुल सांकृत्यायन-

व्यक्तित्व और कृतित्व : डा. राजेश्वरी शांडित्य, प्र.सं.- 1995
अलका प्रकाशन, कानपुर

राहुल वाङ्मय (पहला खंड) : कापीराइटः श्रीमती कमला सांकृत्यायन प्र.सं 1994,
राधाकृष्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

राहुल वाङ्मय (दूसरा खंड) : " "

रेखाचित्र : बनारसीदास चतुर्वेदी, द्वितीय 1963, भारतीय ज्ञानपीठ,
काशी

वानर से नर बनने की प्रक्रिया में
श्रम की भूमिका : एंगेल्स, पहला सं. 1976, प्रगति प्रकाशन, मास्को

विस्मृति के गर्भ में : राहुल सांकृत्यायन, प्र. सं 1956
किताबमहल, इलाहाबाद

वैदिक साहित्य : रामगोविन्द त्रिवेदी, प्र.सं. 1950
इंडियन प्रेस, प्रयाग

वैश्णवधर्म एवं दर्शन : पं. रघुवीरसिंह शर्मा, प्र.सं. 1962
आभा प्रकाशन, दिल्ली

वैज्ञानिक भौतिकवाद : राहुल सांकृत्यायन, द्वि.सं 1945
किताबमहल, इलाहाबाद

समीक्षा के संदर्भ : डा. भगवतशरण उपाध्याय, प्र.सं 1969,
राजकमल, दिल्ली

समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ : डा. कृष्णा राजवाडे, प्र.सं. 1996
सुनीता प्रकाशन, इन्दौर

समय-साम्यवादी : विष्णुचन्द्र शर्मा, प्र.सं 1997
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

सवेरा संघर्ष गर्जन : भगवतशरण उपाध्याय, प्र.सं. 1944
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

साहित्यालोचन : श्यामसुन्दरदास, नवीं आवृत्ति सं 2006वि
इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

साम्यवाद ही क्यों ? : राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1935
युगान्तर पुस्तकमाला, पटना

साहित्य निबन्धावली : राहुल सांकृत्यायन, प्र.सं. 1961
किताबमहल, इलाहाबाद

हिन्दी ऋग्वेद : पं रामगोविन्द त्रिवेदी, प्र.सं 1954
इंडियन प्रेस, प्रयाग

हिन्दू धर्म की विशेषताएँ : सत्यदेव परिव्राजक, तेरहवाँ 1961
राजपाल एंड सन्स, दिल्ली

हिन्दी कहानियों की शिल्पाविधि
का विकास : डा. लक्ष्मीनारायण लाल, प्र.सं. 1953
साहित्य भवन, इलाहाबाद

हिन्दी कहानी- प्रक्रिया और पाठ : सुरेन्द्र चौधरी, प्र.सं 1995
राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड,
दरियागंज, नई दिल्ली

अंग्रेजी ग्रंथ

लिटरेचर एंड रियालिटी : डावर्ड फास्ट, प्र.सं. 1955, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ल्ली

दि क्राफ्ट आफ फिक्शन : लुबोक पेरसी, जोनत्ताम केप लिमिटेड, लंदन

ए हिस्टरी आफ सांस्कृट लिटरेचर : ए.ए. माकडोनल, प्र.सं. 1958
मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली

वैदिक इंडक्स : मेकडोनल तथा कीथ अनुवादकः रामकुमारराय,
प्र.सं 1963, चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी

एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया : आर.सी. मजूमदार, प्र.सं. 1960,
मैकमिलन एंउ कंपनी लिमिटेड, लन्दन

ऋग्वैदिक इंडिया (भाग 1) : अबिनाशचन्द्र दास, प्र.सं 1921
यूनिवर्सिटी आफ कलकत्ता

हिस्ट्री एंड क्लास कंसस्नेस : जार्ज लूकाच, प्र.सं 1967
मेर्लिन प्रेस, लन्दन

मलयालम ग्रंथ

लोक नागरिकतयुटे चरित्रम : मूल लेखकः जेम्स एडगार स्वेइन
अनुः चेव्गान्नूर शंकरवारियर
प्र.सं 1975, केरल भाषा
इंस्टीच्यूट, तिरूवनन्तपुरम्

मानव चरित्रम (वाल्यम 1) : मूल लेखकः जाक्वट्टा हाक्स आदि
अनुः चंगारप्पल्ली नारायणन
पोट्टी आदि, प्र.सं 1986
केरल भाषा इंस्टीच्यूट, तिरूवनन्तपुरम्

मानवचरित्रम (वाल्यम् 2) : मूल लेखकः लूइगी पारट्टी
अनुः आर.वी. उण्णित्तान आदि
प्र.सं 1989, केरल भाषा इंस्टीच्यूट

लोक चरित्रम (1914-1968) : मूल लेखकः डेविड तोंसन
अनुः एम. दिवाकरन, प्र.सं 1972
केरल भाषा इंस्टीच्यूट, तिरूवनन्तपुरम्

कोश

हिन्दी साहित्यकोश (भाग 1)	:	धीरेन्द्रवर्मा, पहला संः सं 2015 वि, ज्ञानमंडल, वाराणसी
हिन्दी अंग्रेजी मुहावरा- लोकोक्ति कोश	:	कैलाशचन्द्र भाटिया, प्र.सं 1997, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली
लोकोक्ति कोश	:	अशोक कौशिक आदि, प्र.सं 1992, दिल्ली पुस्तक भवन, दिल्ली
सूक्ति संदर्भ कोश	:	महोपाध्याय, प्र.सं 1992 चन्द्रप्रभा सागर, जोधपुर
संस्कृत हिन्दी कोश	:	वामन शिवराय आप्टे, प्र.सं 1966 मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली
उर्दू हिन्दी कोश	:	संग्रहकर्त्ताः नारायणप्रसाद जैन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकार कार्यालय, बंबई
दि. एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स	:	जेम्स हे स्टिप्ज, प्र.सं 1957 टी.एंड.टी. क्लर्क, एडिनवर्ग
डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेटी टेम्सः		सं. जोजेफ टी शिप्ले

पत्रिकाएँ

साप्ताहिक हिन्दुस्तान	:	राहुल स्मृति विशेषांक, 1992 सितंबर
दिनमान	:	पर्यटन विशेषांक, 21 अक्टूबर 1966
समर्चना	:	संयुक्तांक, 1990
दावेदार	:	राहुलसांकृत्यायन अंक, 1991
सहचर	:	अंक 3, 1993
हंस	:	जनवरी 1936, 1948, अक्टूबर 1942, अप्रैल 1947, जून 1948

धर्मयुग (साप्ताहिक)	:	12 मई, 26 मई 1963, 1 अगस्त 1965
जनशक्ति	:	राहुल स्मृति विशेषांक, अप्रैल 1965
उपमा	:	राहुल स्मृति विशेषांक, अगस्त 1963
संग्रथन	:	अप्रैल 1993
आजकल	:	नवंबर 1996

****

शोधछात्रा की प्रकाशित रचनाएँ

नं	विषय	पत्रिका	वर्ष	अंक
१.	''वोल्गा से गंगा'' और ''महायात्रा गाथा'' तुलनात्मक अध्ययन	भाषा (द्वैमासिक)	४० नवंबर-दिसंबर २०००	२
२.	पंत की प्रगतिवादी दृष्टि पंत की प्रगतिवादी दृष्टि (पुनःप्रकाशन)	भाषा (द्वैमासिक) दक्षिण भारत	४० जुलाई-आगस्त अप्रैल-जून-२००१ २७	६ १०३
३.	''उग्रतारा'' सामाजिक पारदर्शिता का प्रलेख	अनुशीलन	नागार्जून विशेषांक़	
४.	''चोटें'' श्री प्रभावर्मा की मलयालन कविता ''मुरिवुकल'' का हिन्दी अनुवाद	युगस्पन्दन (समकालीन मलयालम कविता विशेषांक)	संयुक्तांक अप्रैल-सितंबर २०००	

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जीवन से संबद्ध स्थलों की यात्रा का मानचित्र

शोधछात्रा ने राहुलजी के जीवन से संबध्द भारत के प्रायः सभी स्थलों की यात्रा की और सामग्री एकत्र की। नई दिल्ली से उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बगाल के संबद्ध स्थलों में पहुँचने की मार्ग रेखा.

Details in next page

१. दिल्ली

२. लखनऊ

३. आज़मगढ़-(पन्दहा और कनैला)

मार्ग-आज़मगढ़ से वारणासी में जानेवाली सडक से १५ कि.मी. यात्रा करने पर "रानी की सराय" पहुँचेंगे। वहाँ से उत्तर-पश्चिम की ओर ३ कि. मी. जाने पर पन्दहा गाँव है। "रानी की सराय" से २० कि.मी. दक्षिण-पूर्व की ओर जाएँ तो कनैला गाँव पहुँचेंगे। कनैला से २० कि.मी. उत्तर-पूर्व की ओर जाने पर अज़मगढ़ पहुँच सकते हैं।

४. वारणासी

५. पटना (पटना संग्रहालय, जो कोतवाली पुलीस स्टेशन के पास है)

६. न्यू जल्पैगुरी

७. सिलिगुरी

८. दार्जीलिंग-('राहुल निवास' बस स्टेशन से ५०० मीटर दूरी पर

G 8534